भारतीय
संविधान और शासन

प्रो० विमला प्रसाद एम०

संकोट से प्राप्त

४. ६. ५६

आदर्श मित्र विद्यालय

निवलीकलाँ (भोपाल)

२.३५

भारतीय
संविधान और शासन

(ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन)

लेखक
प्रो० विमला प्रसाद, एम० ए०
इतिहास-विभाग
पटना कालेज, पटना

प्रकाशक
श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड
नयाटोला :: पटना

मूल्य ६॥)

पूज्य भइया

स्वर्गीय श्री सत्यनारायणलालजी

की पावन स्मृति में
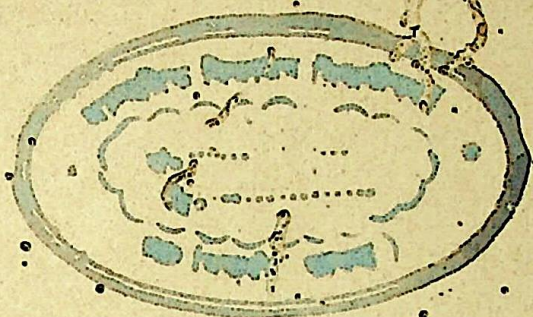
भूमिका

भारतीय संविधान का अध्ययन प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए कितना आवश्यक है, इस पर कुछ कहने की जरूरत नहीं जान पड़ती। यह अवश्य विचारणीय है कि यह अध्ययन किस तरह करना चाहिए। मेरी राय में इस संविधान को ठीक ठीक समझने के लिए यह जरूरी है कि भारत की सांविधानिक प्रगति और राष्ट्रीय आन्दोलन के पिछले इतिहास से भी प्रत्येक व्यक्ति अच्छी तरह परिचित हो। अन्य प्रमुख देशों में कैसी व्यवस्था है यह जानना भी उतना ही आवश्यक है। किसी देश के संविधान का अध्ययन करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह उस देश के नागरिकों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति का एक साधन है। इसलिए इस देश के नागरिकों और विशेष कर संविधान के विद्यार्थियों को यह भी देखना है कि हमारा संविधान हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने में कहाँ तक उपयोगी सिद्ध होगा। इस दृष्टि से इसमें जो गुण दिखाई पड़ें, उसके लिए जहाँ प्रत्येक भारतीय का गौरवान्वित अनुभव करना उचित होगा, वहाँ यह भी उतना ही आवश्यक है कि इसमें जो दोष हैं, उन्हें जल्द-से-जल्द हटाकर इसे सामाजिक और आर्थिक नवनिर्माण का एक आदर्श साधन बनाने के लिए प्रयत्न किये जायँ। इसके लिए संविधान का अध्ययन आलोचनात्मक होना चाहिए। हाँ, आलोचनात्मक अध्ययन करते समय इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि संविधान के पक्ष या विपक्ष में सिर्फ प्रचार के लिए जो बातें कही गई हों, उनसे हम प्रभावित नहीं हों और निष्पक्ष होकर अपने निर्णय पर पहुँचने की कोशिश करें।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर इस पुस्तक की रचना की गई है। शुरू में १७५७ से १९४७ तक की सांविधानिक प्रगति का संक्षिप्त सिंहावलोकन

किया गया है। इसके साथ-ही-साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास का संक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है। रियासतों की समस्या और उसके समाधान का संक्षिप्त विवरण भी आवश्यक मालूम पड़ा। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का ज्ञान भी आवश्यक है। इसलिए इसपर भी एक अध्याय दिया गया है। ग्राम-पंचायतों का महत्त्व देखते हुए उनपर एक अलग अध्याय में विचार किया गया है। ये दोनों अध्याय विहार की अवस्था को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं और उनमें जो उदाहरण दिये गये हैं, वे विहार से ही हैं। पुस्तक के अन्त में सहायक ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं की संक्षिप्त सूची दे दी गई है, जिससे भारतीय संविधान के और आगे अध्ययन में सहायता मिल सके।

मेरे लिए यह पुस्तक लिखना उचित था या अनुचित अथवा मैं इस काम के लिए आवश्यक योग्यता रखता हूँ या नहीं, इस पर कुछ कहना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। इस प्रश्न पर विचार करने पर तो चारों तरफ मुझे मेरी अयोग्यताएँ और कमियाँ ही दिखाई पड़ने लगती हैं। लेकिन जब से भारतीय संविधान का निर्माण हुआ तभी से इस पर एक आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की अभिलाषा मन में जाग्रत् हुई। आज यह अभिलाषा पूरी हो गई, यह देखकर मुझे बहुत सन्तोष है। इसमें मुझे कहाँ तक सफलता मिल सकी है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे। इस पुस्तक से कोई बहुत बड़ी कमी पूरी हो जायेगी, यह दावा करना मेरे बूते से बाहर की बात है। अगर इससे लोगों को भारतीय संविधान और शासन के विविध अंगों के अध्ययन में कुछ भी सहायता मिल सकी और उनका ध्यान इसके गुण-दोष-विवेचन की ओर गया, तो मैं अपना परिश्रम सफल मानूँगा। पुस्तक में बहुत-सी त्रुटियाँ हो सकती हैं। अगर ऐसी किसी त्रुटि की ओर किसी पाठक का ध्यान जाय, तो उनसे मेरी यही प्रार्थना होगी कि वे मुझे उसकी सूचना देने का कष्ट करें, ताकि मैं आवश्यक सुधार कर सकूँ। इस पुस्तक में प्रयुक्त भाषा के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना ठीक होगा। भाषा को जहाँ तक सम्भव हो सका है सरल रखने की कोशिश की गई है। संविधान में जो पारिभाषिक शब्द आये हैं, इन्हें भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित 'भारत का संविधान' नामक पुस्तक से लिया गया है। कुछ आवश्यक पारिभाषिक शब्द और उनके अंग्रेजी रूप भी पुस्तक के अन्त में दे दिये गये हैं।

जिन लोगों से मुझे पुस्तक लिखने में सहायता मिली है, उन्हें धन्यवाद देना अभी बाकी है। ऐसे लोगों में पटना-कालेज के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर कालिकिंकर दत्त का नाम सबसे आगे आता है। विद्यार्थी

जीवन में और उसके बाद भी उन्हीं की देखरेख में मेरा अध्ययन होता रहा है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में भी मुझे जब-जब उनके परामर्श की आवश्यकता पड़ी, तब-तब उन्होंने बहुत खुशी से इसके लिए समय निकालने का कष्ट किया। पटना-कालेज के राजनीति-विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर ताराभूषण मुखर्जी, तथा इतिहास-विभाग के हमारे ऊपर के सहकर्मी श्री रामशरण शर्मा और श्री योगेन्द्र मिश्र से भी मुझे आवश्यकतानुसार सभी तरह के परामर्श मिले। कुछ अध्यायों के बारे में पटना-कालेज के राजनीति-विज्ञान-विभाग के प्रोफ़ेसर श्री चेतकर झा से परामर्श करने का भी मुझे मौका मिला। पुस्तक लिखने के लिए सामग्री जुटाने में मुझे श्रीरामजी ठाकुर, श्री रामकृष्ण देव और श्री रामनारायण मिश्र से बहुत सहायता मिली। मेरी पत्नी और मेरे दोनों भाइयों ने प्रूफ संशोधन इत्यादि में मुझे बहुत मदद दी है। मैं इन सभी व्यक्तियों का हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ।

छपाई कुछ जल्दी में हुई। इसलिए प्रूफ की कुछ गलतियाँ रह गई हैं। लेकिन अब छप चुकने के बाद क्या किया जाय? अगर पुस्तक के दूसरे संस्करण का निकलना कभी सम्भव हुआ, तो इनमें आवश्यक सुधार कर दिया जायगा।

इतिहास-विभाग
पटना कालेज
सितम्बर ६, १९५१

विमला प्रसाद

विषय-सूची

अध्याय १

अंग्रेजी राज की स्थापना
और
भारतीय शासन का विकास

(१७५७-१८५८)

२६ जनवरी, १९५० से जो संविधान हमारे देश में लागू है, उसे भारतीय संविधान सभा ने तैयार किया है। लेकिन यह समझना गलत होगा कि यह संविधान सभा के साल दो साल के परिश्रम का ही परिणाम है। यथार्थ में पिछले करीब दो सौ साल से धीरे-धीरे इसका विकास होता चला आ रहा था। इसलिए इसके स्वरूप को ठीक-ठीक समझने के लिए इसके पिछले विकास के इतिहास को भी जान लेना चाहिए।

यह विकास भारत में अंग्रेजी राज कायम करने की कोशिश के साथ ही साथ हुआ। यह तो सभी जानते हैं कि यहाँ पर ईस्टइंडिया कम्पनी ने ही अंग्रेजी राज की स्थापना की। यह ईस्टइंडिया कम्पनी सन् १६०० ई० में एलिजाबेथ के चार्टर के अनुसार पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए कायम की गई थी। शुरू में व्यापार ही इसका एकमात्र उद्देश्य था। भारत में उस समय मुगल सम्राटों का शासन चल रहा था और मुगल साम्राज्य अपनी शक्ति और समृद्धि की पराकाष्ठा की ओर अग्रसर था। ऐसी परिस्थिति में व्यापार के सिवाय और कुछ करना कम्पनी के लिए सम्भव भी नहीं था। धीरे-धीरे कम्पनी ने व्यापार के लिए भारत के कई स्थानों में कोठियाँ भी कायम कर लीं, जिनमें कलकत्ता, बम्बई और मद्रास सबसे मुख्य थे। लेकिन सत्रहवीं शताब्दी तक इसका उद्देश्य सिर्फ व्यापार ही था। आम तौर पर व्यापारी कम्पनियों का जिस तरह प्रबन्ध रहता है, उसी तरह इस कम्पनी का भी था। भारत के भीतर

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में कोठियों का कारबार चलाने के लिए गवर्नर या प्रेसिडेंट रहते थे। गवर्नर के साथ-साथ प्रत्येक जगह के लिए एक-एक कौंसिल भी रहती थी और सभी काम उसकी सलाह से ही होते थे। इनके ऊपर इंगलैंड में कम्पनी के हिस्सेदारों की जमात थी, जिसे कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स कहते थे। लेकिन हिस्सेदारों की संख्या काफी बड़ी थी। इसलिए कम्पनी के रोजमर्रे के शासन के लिए एक छोटी कमिटी थी, जिसका नाम था, कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स। इसके अलावा कम्पनी के एक गवर्नर और डेप्यूटी गवर्नर भी रहते थे, लेकिन कम्पनी के शासन पर असल अधिकार कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स का ही था। ब्रिटिश पार्लियामेंट की तरफ से कम्पनी के काम में कोई खास हस्तक्षेप नहीं होता था।

लेकिन अठारहवीं शताब्दी में परिस्थिति बदलने लगी। १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हुई। उसके बाद मुगल साम्राज्य का पतन होने लगा। भारत में मुगलों की जगह लेने लायक कोई दूसरी ताकत भी नहीं पैदा हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत राजनीतिक गुटबन्दियों और लड़ाइयों का अखाड़ा बन गया। कई छोटे-छोटे राज्य कायम हो गए और आपस में लड़ने लगे। अब ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत की राजनीति में दखल देने का अच्छा अवसर मिला और इसने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया। कम्पनी को सबसे पहले कर्नाटक में भारतीय राजनीति में दखल देने का मौका मिला। दक्षिण भारत में फ्रांसीसी भी अपनी ताकत बढ़ा रहे थे। अब अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में युद्ध छिड़ गया। अन्त में चलकर इस युद्ध में अंग्रेजों की विजय हुई। कर्नाटक की लड़ाइयों से यह स्पष्ट हो गया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी का उद्देश्य यहाँ पर अब सिर्फ व्यापार करना नहीं रहा, बल्कि यह अब भारत में अंग्रेजी राज कायम करने का सपना देखने लगी। इसी समय बंगाल में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं, जिनके चलते यहाँ पर अंग्रेजी राज कायम हो गया। १७५७ ई० में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच पलासी का युद्ध हुआ। इसमें अंग्रेज विजयी हुए। बंगाल का नवाब अब अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गया और अंग्रेजों के लिए बंगाल पर कब्जा करने का रास्ता खुल गया। १७६४ में बक्सर की लड़ाई हुई और इसने वह काम पूरा कर दिया जिसे पलासी ने शुरू किया था।

इस युद्ध में, मुगल बादशाह शाहआलम, अवध और बंगाल के नवाब, तीनों की हार हुई। बक्सर की जीत के बाद अंग्रेज बंगाल के पूरे तरह मालिक हो गए। १७६५ में शाहआलम ने कम्पनी को बंगाल की दीवानी देकर उसके अधिकार पर कानूनी मुहर भी लगा दी। इस तरह बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबों पर कम्पनी का पूरा अधिकार हो गया। उत्तरी भारत में अब कोई ऐसी ताकत नहीं बची जो अंग्रेजों को हरा सके। धीरे-धीरे कम्पनी अपना राज्य बढ़ाने लगी। क्लाइव के बाद वारेन् हेस्टिंग्स, कार्नवालिस और वेलेस्ली गवर्नर या गवर्नर जेनरल होकर आए और इन्होंने अंग्रेजी राज्य के विस्तार का काम जारी रखा। वेलेस्ली ने जो काम शुरू किया, उसे लार्ड हेस्टिंग्स ने पूरा कर दिया। १८१८ में मराठों की हार के बाद करीब-करीब समूचा भारत अंग्रेजों के कब्जे में आ गया। सिर्फ सीमा-पर के कुछ प्रान्त बचे रहे। हार्डिञ्ज और डलहौसी ने इन्हें भी जीत लिया। इस तरह १८५७ के भारतीय विद्रोह के पहले भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना पूरी तरह हो चुकी थी।

इस बदली हुई परिस्थिति में ब्रिटिश पार्लियामेंट चुप नहीं रह सकी। उसने भारतीय शासन का भार अकेले एक व्यापारी कम्पनी के हाथ में छोड़ना ठीक नहीं समझा और वह इसको सुचारु रूप से चलाने के लिए समय-समय पर नियम बनाने लगी। इस तरह आवश्यकतानुसार पार्लियामेंट के कई ऐक्ट पास हुए। भारतीय शासन का निर्माण इन्हीं ऐक्टों के आधार पर हुआ।

(१) रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (१७७३)

१७६५ में कम्पनी को बंगाल की दीवानी मिली। इसके बाद कम्पनी की दशा शोचनीय हो गई। एक तरफ कम्पनी के नौकर खूब धन इकट्ठा करने लगे और मालोमाल हो गए। वे भ्रष्टाचार और भारतीय प्रजा पर अत्याचार के जरिये ही यह धन पा सके। दूसरी तरफ कम्पनी की आर्थिक दशा दिनों-दिन बिगड़ने लगी। इससे ब्रिटिश पार्लियामेंट में, भारतीय शासन में हस्तक्षेप करने की चर्चा जोरों से चल पड़ी। १७६७ ई० में पार्लियामेंट ने कम्पनी के सम्बन्ध में पाँच ऐक्ट पास किए। इनके मुताबिक कम्पनी को ब्रिटिश सरकार को कर के रूप में अपनी आमदनी का एक हिस्सा देना पड़ा। लेकिन भारतीय

शासन-सम्बन्धी पार्लियामेंट का पहला महत्वपूर्ण ऐक्ट सन् १७७३ का रेग्यू-लेटिंग ऐक्ट था।

इस ऐक्ट के मुताबिक बंगाल का गवर्नर गवर्नर जेनरल कहलाने लगा। बम्बई और मद्रास के गवर्नर बंगाल के गवर्नर जेनरल के अधीन कर दिए गए और यह नियम बना दिया गया कि वे बिना गवर्नर जेनरल की सहमति के कोई युद्ध या सन्धि नहीं कर सकते थे। बंगाल के शासन का भार गवर्नर जेनरल और चार मेम्बरों की एक कौंसिल को दिया गया। इसके सभी फैसले बहुमत से होते थे और गवर्नर जेनरल को इन्हें मानना पड़ता था। कलकत्ते में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई। इसमें एक चीफ जस्टिस और तीन और जज रहते थे। गवर्नर जेनरल और कौंसिल को कम्पनी के इलाकों के लिए नियम इत्यादि बनाने का अधिकार दिया गया। लेकिन सुप्रीम कोर्ट में इन नियमों की रजिस्ट्री कराना जरूरी था। भारतीय शासन में गवर्नर जेनरल और कौंसिल को कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की आज्ञाओं को मान कर चलने का और उसे भारत-सम्बन्धी सभी खबरों की जानकारी कराते रहने का आदेश दिया गया। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के लिए भारतीय शासन-सम्बन्धी सभी बातों की खबर ब्रिटिश सरकार के पास भेजते रहना अनिवार्य कर दिया गया।

कई बातों में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट द्वारा की गई व्यवस्था प्रशंसनीय थी। बंगाल के गवर्नर जेनरल को बम्बई और मद्रास के गवर्नरों के ऊपर देख-रेख रखने का अधिकार देने से कम्पनी के भारतीय प्रदेशों में केन्द्रीय शासन की नींव पड़ी। भारत सरकार के कानून बनाने के अधिकार का आरम्भ भी इसी ऐक्ट से हुआ। सुप्रीम कोर्ट का कायम किया जाना न्याय की दृष्टि से हितकर था। इसके अलावा अब ब्रिटिश सरकार को भारतीय शासन के सम्बन्ध में सभी बातों की खबर रहने लगी। लेकिन इस ऐक्ट में कई बड़े दोष भी थे। गवर्नर जेनरल के लिए कौंसिल का फैसला मानना अनिवार्य कर दिया गया था। इससे प्रथम गवर्नर जेनरल वारेन् हेस्टिंग्स को बड़ी असुविधा हुई और कई अवसरों पर उसे अपने विरोधियों की नीति को कार्यान्वित करने के लिए बाध्य होना पड़ा। बम्बई और मद्रास के गवर्नरों पर बंगाल के गवर्नर जेनरल का आधिपत्य भी पूरी तरह से नहीं स्थापित किया गया और वे बराबर अपनी स्वतंत्र नीति पर चलने

की कोशिश करते रहे। सुप्रीम कोर्ट के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें अस्पष्ट रह गई थीं और इसके और गवर्नर जेनरल की कौंसिल के बीच बहुत झगड़े पैदा हुए। ब्रिटिश सरकार और पार्लियामेंट को भारतीय शासन के सम्बन्ध में जानकारी रखने का अवसर तो मिल गया, लेकिन भारतीय शासन पर इनके निर्देश और आधिपत्य की कोई व्यवस्था नहीं बनी। इसलिए इन त्रुटियों को दूर करने के लिए पार्लियामेंट को फिर दूसरे एक्ट पास करने पड़े।

(२) पिट का इंडिया ऐक्ट (१७८४)

सन् १७८१ में पार्लियामेंट ने एक ऐक्ट पास किया जिसके मुताबिक न्यायविभाग की गड़बड़ी दूर की गई और सुप्रीम कोर्ट का अधिकार-क्षेत्र निश्चित किया गया। १७८४ में भारतीय शासन सम्बन्धी पार्लियामेंट का दूसरा ऐक्ट पास हुआ, जिसे 'पिट का इंडिया ऐक्ट' कहते हैं। इसके मुताबिक भारतीय शासन-सम्बन्धी सभी बातों की देखभाल करने के लिए एक बोर्ड आफ कंट्रोल बनाया गया। इसमें छः मेम्बर रहते थे—दो मंत्री और चार प्रिवी कौंसिल के सदस्य। इनकी बहाली ब्रिटिश सम्राट् द्वारा होती थी। ये कम्पनी के सभी कागजों को देख सकते थे। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के लिए जरूरी कर दिया गया कि यह भारत से आए हुए सभी कागजों को बोर्ड आफ कंट्रोल के पास भेजे और भारत में कोई आज्ञा भेजते समय उस पर बोर्ड की सहमति ले ले। बोर्ड को डाइरेक्टरों की किसी आज्ञा में परिवर्तन करने का अधिकार भी दिया गया। बोर्ड आफ कंट्रोल अपनी तरफ से भी आज्ञा निकाल सकता था और उस पर डाइरेक्टरों की सहमति आवश्यक नहीं थी। तीन डाइरेक्टरों की एक गुप्त समिति संगठित की गई और बोर्ड के गुप्त आदेश बिना और डाइरेक्टरों की जानकारी के इसी समिति द्वारा भारत भेज दिए जाते थे। इस तरह पार्लियामेंट का भारतीय शासन पर पूरा अधिकार हो गया। गवर्नर जेनरल को यह आदेश दिया गया कि बिना कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की आज्ञा के भारत में कोई युद्ध नहीं किया जाय। बम्बई और मद्रास के गवर्नर पूरी तरह से बंगाल के गवर्नर जेनरल की मातहती में रख दिए गए। गवर्नर जेनरल और गवर्नरों की कौंसिल के मेम्बरों की संख्या चार से घटाकर तीन कर दी गई।

आगे चलकर कार्नवालिस के गवर्नर जेनरल होने के बाद उसे आवश्यकता पड़ने पर कौंसिल के फैसले को रद्द करने का भी अधिकार दे दिया गया।

(३) १७९३ का चार्टर ऐक्ट

१७९३ में कम्पनी की सनद को नया करने का समय आ गया। इसलिए पार्लियामेंट ने एक चार्टर ऐक्ट पास कर बीस साल के लिए कम्पनी के व्यापार सम्बन्धी अधिकारों को बढ़ा दिया। इसके साथ-साथ और भी परिवर्तन हुए। बोर्ड आफ कंट्रोल का खर्च कम्पनी के जिम्मे कर दिया गया। यह नियम बना दिया गया कि बोर्ड के दो मेम्बर प्रिवी कौंसिल के बाहर से भी बहाल किए जा सकते हैं। अब से सब से पहला मेम्बर बोर्ड आफ कंट्रोल का सभापति कहलाने लगा और बोर्ड का करीब-करीब सभी काम वही करने लगा। वह ब्रिटिश मंत्रि-मंडल का भी सदस्य रहता था। इससे उसका प्रभाव और भी बढ़ गया। भारत में बंगाल के गवर्नर जेनरल का दूसरे प्रान्तों के गवर्नरों के ऊपर अधिकार और भी व्यापक बना दिया गया। गवर्नर जेनरल के कौंसिल के फैसले के खिलाफ काम करने के अधिकार को फिर से दुहराया गया और गवर्नरों को भी यह अधिकार दिया गया।

(४) १८१३ का चार्टर ऐक्ट

बीस साल के बाद पार्लियामेंट द्वारा बहुत जाँच-पड़ताल के बाद १८१३ का चार्टर ऐक्ट पास किया गया। इसके मुताबिक अगले बीस बरस तक के लिए भारत में जीते हुए इलाकों पर कम्पनी का अधिकार कायम रखा गया। लेकिन इसके साथ ही साथ उन इलाकों पर ब्रिटिश सम्राट् की प्रभुता की घोषणा स्पष्ट रूप से कर दी गई। कम्पनी के व्यापार सम्बन्धी अधिकार भी कम कर दिए गए। चीन के साथ व्यापार पर और चाय के व्यापार पर तो कम्पनी का एकाधिपत्य कायम रहा, लेकिन और सभी तरह के व्यापार के लिए भारत का दरवाजा कम्पनी के बाहर के अंग्रेजों के लिए भी खोल दिया गया। कम्पनी को व्यापार और शासन सम्बन्धी हिसाब अलग-अलग रखने का आदेश दिया गया। इस ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक साल एक लाख रुपया भारत में शिक्षा और साहित्य के प्रचार के लिए खर्च करने की भी व्यवस्था की गई।

(५) १८३३ का चार्टर ऐक्ट

१८३३ के चार्टर ऐक्ट से भारतीय शासन में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कम्पनी को अपने व्यापार-सम्बन्धी सभी कामों को जल्द से जल्द बन्द कर देने की आज्ञा दी गई। अब इसका काम सिर्फ भारतीय साम्राज्य का शासन करना रह गया। यह काम इसे और बीस साल के लिए दिया गया, लेकिन यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारतीय साम्राज्य पर इसका अधिकार ब्रिटिश सम्राट् की थाती के रूप में था। बंगाल का गवर्नर जेनरल अब भारत का गवर्नर जेनरल कहलाने लगा और उसके ऊपर समूचे देश के शासन की जिम्मेदारी दी गई। गवर्नर जेनरल की कौंसिल में एक चौथा मेम्बर, कानून बनाने के सम्बन्ध के कामों के लिए, जोड़ दिया गया। लेकिन वह कौंसिल के दूसरे कामों में भाग नहीं ले सकता था। गवर्नर जेनरल और कौंसिल को समूचे देश के लिए कानून या ऐक्ट बनाने का अधिकार दिया गया। अलग-अलग प्रांतों के कानून बनाने के अधिकार ले लिये गए। हाँ, वे अपनी आवश्यकतानुसार गवर्नर जेनरल और कौंसिल को कानूनों के मसविदे भेज सकते थे। भारतीय कानूनों के कोड तैयार करने के लिए एक समिति संगठित की गई, जिसका नाम इंडियन ला कमीशन पड़ा। भारत के भीतर सभी नौकरियों की बहाली का आधार योग्यता कर दिया गया। अब किसी भारतीय के किसी पद पर बहाल होने में उसके जन्म, वंश या रंग के आधार पर कोई रुकावट नहीं हो सकती थी।

(६) १८५३ का चार्टर ऐक्ट

बीस साल के बाद १८५३ में फिर एक चार्टर ऐक्ट पास हुआ। इसके मुताबिक कम्पनी कायम रही और भारतीय शासन उसी के जिम्मे रहा। लेकिन पहले की तरह उसे यह अधिकार बीस साल के लिए न देकर उतने ही समय तक के लिए दिया गया जब तक पार्लियामेंट कोई दूसरा प्रबन्ध नहीं करे। डाइरेक्टरों की संख्या घटा कर अट्ठारह कर दी गई। इसमें से छः की बहाली सम्राट् द्वारा होने लगी। बोर्ड आफ कंट्रोल के प्रधान का वेतन ब्रिटिश सरकार के एक मंत्री के बराबर करके इस पद का स्थान ऊँचा कर दिया गया। भारत में बड़े-बड़े पदों पर बहाली करने का अधिकार कम्पनी से ले लिया गया। अब बोर्ड आफ कंट्रोल द्वारा बनाए गए

नियमों के अनुसार परीक्षा में प्रतियोगिता के आधार पर नियुक्ति होने लगी। गवर्नर जेनरल को, समूचे देश के शासन पर पूरा ध्यान देने के लिए, बंगाल के शासनकार्य से अवकाश देना जरूरी समझा गया और बंगाल के लिए एक पृथक् गवर्नर या लेफ्टिनेंट गवर्नर बहाल करने की व्यवस्था की गई। १८३३ में स्थापित इंडियन ला कमीशन के सुझावों पर विचार करने के लिए अंग्रेज कमिश्नर बहाल किए गए। १८३३ में कानून बनाने के काम के लिए गवर्नर जेनरल की कौंसिल में जो चौथा मेम्बर जोड़ा गया था, उसे कौंसिल का साधारण मेम्बर बना दिया गया और वह अब कौंसिल के सभी कामों में भाग लेने लगा। कानून बनाने के काम के समय कौंसिल में छः और सदस्य भाग लेने लगे—बंगाल का मुख्य जज, एक और जज और चार अलग-अलग प्रान्तों के प्रतिनिधि। इस तरह कौंसिल के कार्य-कारिणी और व्यवस्थापिका सम्बन्धी काम अलग-अलग हो गए। इस व्यवस्थापिका परिषद् या लेजिस्लेटिव कौंसिल में सब मिलाकर बारह सदस्य हुए—गवर्नर जेनरल, सेनापति या कमांडर-इन-चीफ, चार साधारण सदस्य और छः अतिरिक्त सदस्य। लेजिस्लेटिव कौंसिल की बैठकें अब गुप्त नहीं रहीं और उनकी कार्यवाही का विवरण भी सरकारी तौर पर प्रकाशित किया जाने लगा।

(७) १८५८ का ऐक्ट

पहले ही से इंगलैंड में कम्पनी के शासन के अन्त करने की चर्चा चल रही थी। ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही थी जिनका खयाल था कि व्यापार के लिए कायम की गई एक कम्पनी के हाथ में इतने बड़े देश का शासन छोड़ना उचित नहीं है। १७८४ से एक तरह से द्वैध शासन कायम था और भारतीय शासन सम्बन्धी अधिकार कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स और बोर्ड आफ कंट्रोल में बँटा हुआ था। धीरे-धीरे बोर्ड आफ कंट्रोल की शक्ति बढ़ती जा रही थी और उसी परि-माण में डाइरेक्टरों की शक्ति घट रही थी। यहाँ तक कि १८५३ के चार्टर ऐक्ट के मुताबिक कम्पनी के अधिकारों को पहले की तरह बीस साल की निश्चित अवधि के लिए नहीं बढ़ाया गया था। १८५७ के भारतीय विद्रोह ने कम्पनी का अन्त एकदम निकट ला दिया।

पार्लियामेंट ने १८५८ में जो ऐक्ट पास किया उसके मुताबिक द्वैध शासन

का अन्त कर दिया गया और भारतीय शासन अब ब्रिटिश सम्राट् के नाम पर और उसी के द्वारा होने लगा। बोर्ड आफ कंट्रोल का अन्त कर दिया गया और इसके और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के सभी कामों को करने के लिए ब्रिटेन में एक और मंत्री की बहाली होने लगी। आगे चलकर यह सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया या भारत मंत्री कहलाने लगा। भारत मंत्री की सहायता के लिए एक कौंसिल की स्थापना की गई। इस कौंसिल में पन्द्रह सदस्य रहने लगे—आठ सम्राट् द्वारा नामजद और सात डाइरेक्टरों द्वारा चुने हुए। भारत मंत्री इस कौंसिल का सभापति होता था और मतभेद होने पर, उसे कुछ बातों को छोड़कर, इसके फैसलों को नहीं मानने का भी अधिकार था। कम्पनी की सभी सम्पत्ति और सेनाओं पर अब सम्राट् का अधिकार हो गया। सम्राट् और भारत मंत्री को बड़े-बड़े पदों पर बहाली करने का अधिकार दिया गया। गवर्नर जेनरल लेफ्टिनेंट गवर्नरों की बहाली कर सकता था। इंडियन सिविल सर्विस परीक्षा के लिए नये नियम बनाए गए।

(८) महारानी विक्टोरिया की घोषणा (१८५८)

सरकारी तौर पर ये सभी परिवर्तन १ नवम्बर, १८५८ को महारानी विक्टोरिया की घोषणा में प्रकाशित किये गए। साथ ही साथ इस घोषणा में और भी कई बातों के सम्बन्ध में ब्रिटिश नीति का स्पष्टीकरण किया गया। भारतीय नरेशों को यह आश्वासन दिया गया कि उनके साथ कम्पनी द्वारा की गई सन्धियों को माना जायगा और उनके अधिकार और मान-मर्यादा की रक्षा की जायगी। सबको धार्मिक स्वाधीनता देने और भारत में किसी भी नौकरी के लिए बहाली करते समय जाति या धर्म के आधार पर भेद-भाव नहीं करने का वचन दिया गया। यह भी कहा गया कि भारतीयों के पुराने रस्मरिवाजों का आदर किया जायगा, उनके साथ कोई छेड़-छाड़ नहीं की जायगी और भारतीय शासन में भारत की जनता के हितों का ख्याल रखा जायगा।

अध्याय २

भारत में राष्ट्रीय जागरण
और
प्रतिनिधि संस्थाओं का जन्म
(१८५८-१९०९)

पिछले अध्याय में यह देखा जा चुका है कि १८५८ तक भारत में पूरी तरह अंग्रेजी राज कायम हो चुका था। इसके साथ ही साथ भारतीय शासन की स्थापना भी हो चुकी थी और अब ब्रिटिश सरकार ने स्वयं प्रत्यक्ष रूप से इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। लेकिन अभी तक पार्लियामेंट के किसी ऐक्ट में भारतीयों को शासन में किसी तरह के अधिकार देने की कोई चर्चा नहीं थी। शासन के सभी काम अंग्रेज अफसर करते थे और भारतीय इस लायक नहीं समझे जाते थे कि उनके प्रतिनिधियों से इस विषय पर परामर्श भी लिया जाय।

लेकिन यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं कायम रह सकी। १८५७ का विद्रोह तो अवश्य दबाया जा चुका था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि भारतीयों ने अपने अधिकारों की सभी चिन्ता ही छोड़ दी थी। धीरे-धीरे एक नये भारत का जन्म हो रहा था। १८५८ के पहले से ही भारत में ऐसे-ऐसे परिवर्तन हो रहे थे, जिनसे नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ और राष्ट्रीय जागरण की नींव पड़ी। यहाँ पर संक्षेप में उनसे अवगत हो लेना अच्छा होगा। सबसे पहली बात तो यह थी कि अंग्रेजी राज की स्थापना के चलते भारत में एकता की भावना का जन्म हो रहा था। समूचे देश पर अब एक ही शासन कायम था। इसके अलावा नये आवागमन के साधनों ने देश के दूर-दूर हिस्सों में रहने वाले लोगों का मिलना-जुलना आसान बना दिया था। समूचे देश में सरकारी काम के लिए और शिक्षा-संस्थाओं में माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा

का ही व्यवहार होता था। इससे भारतीयों को एक ऐसी भाषा मिल गई जिसके जरिये भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान कर सकते थे। इसी समय अंग्रेजी शिक्षा का भी प्रचार हुआ। इससे भारतीय पाश्चात्य देशों क लेखकों के विचारों से अवगत होने लगे। बर्क, मिल, मेकाले, स्पेन्सर इत्यादि की पुस्तकों को भारतीय पढ़ने और उनसे प्रभावित होने लगे। अब शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्क में स्वतंत्रता, समानता इत्यादि के विचार चक्कर काटने लगे और वे भारत में भी उनकी स्थापना का स्वप्न देखने लगे। बहुत से भारतीय यूरप के विश्वविद्यालयों में भी अध्ययन के लिए गए। जब वे लोग अपनी मातृभूमि में वापस आते थे, तब अपने साथ एक नया दृष्टिकोण लिये हुए रहते थे और उनके हृदय में भारत को भी यूरप के देशों की तरह उन्नत करने की भावना रहती थी। इसी समय मैक्समूलर, कोलब्रुक, मोनियर विलियम्स, राजेन्द्रलाल मित्र, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर इत्यादि विद्वानों ने भारतीय इतिहास और संस्कृति का अध्ययन किया और इस विषय पर नई नई पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों से भारतीयों को अपने प्राचीन गौरव का भान हुआ और अब इन्हें अपने को अंग्रेजों के सामने 'हेय' समझने का कोई कारण नहीं रहा। इसी समय भारत में नये-नये धर्म-सुधारक पैदा हुए। इन सुधारकों में राजा राममोहन राय; स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहँस, स्वामी विवेकानन्द और महादेव गोविन्द रानाडे मुख्य थे। इनके लेखों, भाषणों और कामों से भारतीयों के हृदय में देश-प्रेम का जन्म हुआ और उनमें एकता की भावना दृढ़ हुई। वे अब समझने लगे कि अपने देश और समाज की सेवा करना उनका एक बहुत बड़ा कर्तव्य है। श्रीमती एनी बेसेंट और उनकी थियोसोफिकल सोसाइटी ने भी भारतीय जागरण लाने में बहुत योग दिया। भारतीय साहित्य और समाचार पत्रों से भी राष्ट्रीयता की भावना के प्रचार में बहुत मदद मिली। उस समय के ऐसे भारतीय पत्रों में इंडियन मिरर, हिन्दू पैट्रियट, अमृत-बाजार-पत्रिका, बम्बई समाचार, सोम प्रकाश इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। इसी तरह दीनबन्धु मित्र के 'नील दर्पण', बंकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारत-दुर्दशा नाटक' इत्यादि पुस्तकों ने भी राष्ट्रीय-भावना का सृजन किया।

इस जमाने में अंग्रेजों की तरफ से भी ऐसे कई काम हुए, जिनसे भारतीयों के हृदय में उनके प्रति असन्तोष की भावना बढ़ी और राष्ट्रीय भावना दृढ़ होती गई। १८५७ के विद्रोह के बाद अंग्रेज भारतीयों को अविश्वास और घृणा की दृष्टि से देखने लगे और उन्हें उत्तरदायित्व के सभी स्थानों से हटाने लगे। महारानी विक्टोरिया की घोषणा में तो कहा गया था कि नौकरियों पर बहाली करते समय किसी के धर्म, जाति या वंश पर कोई ख्याल नहीं किया जायगा। लेकिन यह सिर्फ कहने के लिए था। असल में भारतीयों को सभी ऊँची नौकरियों से अलग रखा जाता था। इससे पढ़े-लिखे भारतीयों को बड़ी निराशा होती थी। आर्थिक क्षेत्र में भी भारत का शोषण किया जा रहा था। भारतीय उद्योग-धंधे खतम हो रहे थे और उनकी जगह पर इंगलैंड की बनी हुई चीजें भारतीय बाजारों में बिक रही थीं। ऊँची-ऊँची नौकरियों पर अत्यधिक वेतन देकर अंग्रेजों को रखा जाता था। इससे हरसाल देश के धन का एक बहुत बड़ा भाग देश के बाहर चला जाता था। इधर कृषि की हालत भी अच्छी नहीं थी और बार-बार अकाल पड़ जाता था, जिसमें असंख्य लोग मरते थे। लॉर्ड लिटन जब भारत का वाइसराय था, तब सरकार की तरफ से बहुत से ऐसे काम हुए जिनसे अंग्रेजी शासन से लोग क्षुब्ध होने लगे। उस समय जब भारत में एक भयंकर अकाल पड़ा हुआ था, दिल्ली में दरबार किया गया और उसमें पानी की तरह रुपया बहाया गया; लंकाशायर के मिल-मालिकों के लाभ के लिए बाहर से आनेवाले कपास या सूत पर से चुंगी उठा ली गई; भारतीय समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाये गए और बिना सरकार से लाइसेन्स लिये भारतीयों को हथियार रखने की मनाही कर दी गई। लिटन के उत्तराधिकारी रिपन के जमाने में इलबर्ट बिल के सम्बन्ध में जो कुछ हुआ, उससे भी भारतीय राष्ट्रीय भावना के उदय में योग मिला। उस समय के सरकार के कानूनी सदस्य सर सी० पी० इलबर्ट ने इस आशय का एक बिल बनाया जिससे भारतीय जजों को युरोपियनों के मुकदमों के फैसले का भी अधिकार मिल जाय। लेकिन भारत में रहने वाले अंग्रेजों ने इसे अपना अपमान समझा और इस बिल के खिलाफ बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा किया। आखिर में सरकार को यह बिल वापस लेना पड़ा। सरकार के इन सब कामों से अंग्रेजों और भारतीयों में कटुता बढ़ती गई। भारतीयों को

अपनी गिरी हुई अवस्था खलने लगी और राष्ट्रीय भावना का प्रचार हुआ।

अब भारतीय एक ऐसी संस्था की जरूरत महसूस करने लगे जो राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ा सके और भारतीयों की शिकायतों को दूर कराने की कोशिश करे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश के भिन्न-भिन्न भागों में ऐसी कई संस्थाएँ कायम हो गईं। इनमें सबसे प्रसिद्ध कलकत्ते का 'इंडियन एसोसिएशन' था जिसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने १८७६ ई० में कायम किया था। आगे चल कर भारतीयों के मन में एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था स्थापित करने का विचार उठा जिसकी शाखाएँ देश के सभी भागों में फैली रहें और जिसमें समूचे देश के लोग भाग लें। कुछ अंग्रेज भी ऐसे थे, जो इस तरह की संस्था के पक्ष में थे। ऐसे लोगों में ए० ओ० ह्यूम सबसे आगे थे और उन्हें कांग्रेस का पिता कहा जाता है। उस समय के वाइसराय लार्ड डफरिन ने भी इस विचार का स्वागत किया। आखिर में दिसम्बर, १८८५ में बम्बई में भारत के करीब-करीब सभी भागों से आये हुए लोगों की एक सभा हुई। यही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पहला अधिवेशन था। इस तरह उस संस्था का जन्म हुआ जिसके नेतृत्व में चल कर भारतीयों ने पूर्ण स्वतंत्रता हासिल की।

शुरू में कांग्रेस का रुख सरकार के बहुत अधिक खिलाफ नहीं था। साल में एक बार इसका वार्षिक अधिवेशन होता था। इसमें देश के कोने-कोने से प्रतिनिधि जुटते थे और सरकार के उन कामों के खिलाफ आवाज उठाते थे जो देशवासियों के जायज हकों के विरुद्ध समझे जाते थे। कांग्रेस के प्रस्ताव बड़ी ही नरम भाषा में लिखे हुए रहते थे और उनसे अंग्रेजों में विश्वास की झलक निकलती थी। शुरू में सरकार का रुख भी कांग्रेस के खिलाफ नहीं था। सरकारी अफसर कांग्रेस के जलसों में शामिल होते थे और बहस में भी हिस्सा लेते थे। लेकिन यह हालत बहुत दिनों तक नहीं कायम रह सकी। धीरे-धीरे सरकार कांग्रेस को अंग्रेजी शासन के लिए एक खतरा समझने लगी और इसे कमजोर बनाने की कोशिश करने लगी। मुसलमानों को भी कांग्रेस से अलग रहने के लिए भड़काया गया।

अब कांग्रेस के प्रस्तावों का प्रभाव भी सरकार पर कम होने लगा। सरकार की तरफ से इस तरह के कई काम भी हुए जिनसे भारतीयों में सरकार के खिलाफ

उग्र भावना का उदय हुआ। लार्ड कर्जन का शासन काल ऐसे कामों के लिए प्रसिद्ध है। उसके कामों में सबसे अधिक अलोकप्रिय, बंगाल का बँटवारा था। उस समय बंगाल राष्ट्रीय जागरण का केन्द्र था। भारतीयों का यह ख्याल हुआ कि बंगाल का बँटवारा इस जागरण को कमजोर करने के लिए किया जा रहा था। समूचे देश में इसके खिलाफ एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसी समय देश में प्लेग और अकाल भी फैला और बहुत लोगों की जानें गईं। इन सबका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय आन्दोलन अब उग्र होने लगा। इंगलैंड को बनी हुई चीजों का बहिष्कार शुरू हुआ। स्वदेशी आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। बहुत से भारतीयों ने गुप्त सभाएँ कायम कीं और अंग्रेज अफसरों की हत्या करने लगे। साथ ही साथ कांग्रेस में भी बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और विपिनचन्द्र पाल के नेतृत्व में एक गरम दल पैदा हुआ जिसका अंग्रेजों में तनिक भी विश्वास नहीं था। ये लोग सिर्फ प्रस्ताव पास कर चुप बैठना उचित नहीं समझते थे, बल्कि अंग्रेजों को यहाँ से हटाने के लिए कुछ और करना चाहते थे। अभी इस दल का कांग्रेस में बहुमत नहीं हुआ था, लेकिन इसका प्रभाव बढ़ रहा था। १९०६ ई० में दादा भाई नौरोजी ने कांग्रेस के सभापति-पद से स्पष्ट रूप में घोषणा की कि स्वराज भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे हासिल करना ही कांग्रेस का उद्देश्य है।

राष्ट्रीय भावना के इस उदय का अंग्रेजी सरकार पर भी असर पड़ा। उग्र विचार के आन्दोलनकारियों को तो दबाने की कोशिश की गई; लेकिन सरकार जानती थी कि सिर्फ दमन नीति से ही काम नहीं चलेगा। इसलिए नरम विचार के भारतीयों को मिलाने की कोशिश की गई। अभी शासन में भारतीयों को कोई महत्त्वपूर्ण अधिकार देना तो सरकार को अभीष्ट नहीं था, लेकिन व्यवस्थापिका सभाओं या लेजिस्लेटिव कौंसिलों में भारतीयों को कुछ स्थान देने के लिए सरकार तैयार थी। इससे सरकारको लाभ भी था। व्यवस्थापिका सभाओं में भारतीयों के रहने से सरकार को यह मालूम हो जाता कि भारतीयों की माँगें क्या हैं। भारतीय जनमत से अवगत होने का यह अच्छा तरीका था। साथ ही साथ इससे अंग्रेजी शासन की अलोकप्रियता के घटने की भी सम्भावना थी। इसी विचार से प्रेरित होकर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने १८६१, १८९२ और १९०९ में अलग-

अलग ऐक्ट पास किए जिनसे भारत में लेजिस्लेटिव कौंसिलों का विकास हुआ और उनमें भारतीयों को भी जगह मिली। इन्हीं ऐक्टों के फलस्वरूप भारत में पहले-पहल प्रतिनिधि-संस्थाओं का जन्म हुआ।

(१) १८६१ का इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट

१८६१ के इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट के मुताबिक गवर्नर जेनरल की एक्जिक्युटिव कौंसिल में एक पाँचवाँ मेम्बर जोड़ दिया गया। गवर्नर जेनरल को अपनी अनुपस्थिति में एक्जिक्युटिव कौंसिल का सभापतित्व करने के लिए एक सभापति बहाल करने का अधिकार दिया गया। कानून बनाने के काम के लिए इसमें और अतिरिक्त सदस्य जोड़ दिये गए। इन अतिरिक्त सदस्यों की संख्या कम से कम छः और अधिक से अधिक बारह हो सकती थी। ये गवर्नर जेनरल द्वारा नामजद होते और दो बरस तक अपने पदों पर रह सकते थे। इनमें से कम से कम आधे सदस्यों का गैर-सरकारी होना जरूरी था। इस लेजिस्लेटिव कौंसिल को भारत के भीतर रहनेवाले सभी के लिए कानून बनाने का अधिकार दिया गया। कौंसिल के पास किये हुए सभी ऐक्ट पर गवर्नर जेनरल की स्वीकृति का होना आवश्यक था। यह स्पष्ट कर दिया गया कि कौंसिल का काम सिर्फ कानून बनाना था। प्रश्न पूछने, प्रस्ताव पेश करने, सरकार के कामों पर बहस करने इत्यादि की पूरी मनाही कर दी गई। विशेष परिस्थिति में गवर्नर जेनरल को बिना कौंसिल की राय लिये हुए आर्डिनेन्स निकालने का अधिकार दिया गया। लेकिन ये आर्डिनेन्स छः महीने तक ही जायज रह सकते थे। बम्बई और मद्रास से १८३३ के चार्टर ऐक्ट के मुताबिक कानून बनाने का जो अधिकार ले लिया गया था, वह उन्हें फिर वापस दे दिया गया। इस काम के लिए इन प्रान्तों की कौंसिलों में एडवोकेट जेनरल और दूसरे अतिरिक्त सदस्य जोड़ दिये गए। ये अतिरिक्त सदस्य गवर्नर द्वारा नामज़द रहते थे। इनकी संख्या कम से कम चार और अधिक से अधिक आठ हो सकती थी। गवर्नर जेनरल की कौंसिल की तरह इन अतिरिक्त सदस्यों में कम से कम आधे का गैर-सरकारी होना जरूरी था। गवर्नर जेनरल को बंगाल में भी एक लेजिस्लेटिव कौंसिल की स्थापना करने का आदेश दिया गया। साथ ही साथ उसे उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त और पंजाब में भी इसी तरह की संस्थाएँ स्थापित

करने का अधिकार दिया गया। केन्द्रीय कौंसिल की तरह इन प्रान्तीय कौंसिलों को भी सिर्फ कानून बनाने के काम तक ही सीमिति रखा गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिल के अधिकार-क्षेत्र का कोई स्पष्ट विभाजन नहीं किया गया। केन्द्रीय कौंसिल समूचे देश के लिए कानून बना सकती थी और प्रान्तीय कौंसिल अपने प्रान्त के लिए। लेकिन कुछ विशेष बातों से सम्बन्ध रखनेवाले बिलों को प्रान्तीय कौंसिल में पेश करने के पहले गवर्नर जेनरल की अनुमति ले लेना आवश्यक था। इसके अलावे प्रान्तीय कौंसिल द्वारा पास किये गए ऐक्ट पर गवर्नर के अतिरिक्त गवर्नर जेनरल की स्वीकृति का होना भी अनिवार्य कर दिया गया।

(२) १८९२ का इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट

१८९२ के इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट द्वारा प्रतिनिधि-संस्थाओं के जन्म की तरफ एक और कदम उठाया गया। इस ऐक्ट के मुताबिक कौंसिलों के अतिरिक्त सदस्यों की सख्या बढ़ा दी गई। केन्द्रीय कौंसिल में इनकी संख्या कम से कम दस और अधिक से अधिक सोलह और बम्बई और मद्रास की कौंसिलों में कम से कम आठ और अधिक से अधिक बीस हो सकती थी। बंगाल के लिए अतिरिक्त सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक बीस और युक्तप्रान्त के लिए अधिक से अधिक पन्द्रह निर्धारित की गई। गवर्नर जेनरल को अतिरिक्त सदस्यों की नामजदगी के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार दिया गया। इन नियमों के मुताबिक अप्रत्यक्ष निर्वाचन शुरू किया गया। कुछ खास-खास संस्थाएँ इसके लिए नाम प्रस्तावित करती थीं और गवर्नर जेनरल इन्हीं सुझावों के आधार पर कुछ गैर-सरकारी अतिरिक्त सदस्यों को नामजद करता था। कौंसिलों के अधिकार बढ़ा दिये गए। अब इनमें बजट पर बहस हो सकती थी और प्रश्न भी पूछे जा सकते थे। लेकिन बजट पर कोई वोट नहीं लिया जा सकता था और न पूरक प्रश्न ही पूछे जा सकते थे। कोई गैर-सरकारी प्रस्ताव पेश करने का अधिकार भी नहीं दिया गया। प्रान्तीय कौंसिलों को, गवर्नर जेनरल की अनुमति से, अपने प्रान्त में लागू होने वाले केन्द्रीय कौंसिल के ऐक्टों को रद्द करने या उनमें परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया।

(३) १९०९ का इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट

१९०९ के इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट के जरिये व्यवस्थापिका सभाओं का विकास और भी आगे बढ़ा और इनमें भारतीयों के चुने हुए प्रतिनिधि भाग लेने लगे। इसे मॉर्ले-मिण्टो सुधार के नाम से भी पुकारा जाता है। इसके मुताबिक लेजिस्लेटिव कौंसिलों का आकार पहले से बहुत बड़ा कर दिया गया और अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। केन्द्रीय कौंसिल में इनकी संख्या अब अधिक से अधिक साठ; मद्रास, बम्बई, बंगाल और युक्तप्रान्त के कौंसिलों में पचास, और पञ्जाब, बर्मा तथा किसी नए प्रान्त के कौंसिलों में तीस कर दी गई। इन अतिरिक्त सदस्यों में कुछ चुने हुए होते थे और कुछ नामजद। नामजद सदस्यों में सरकारी और गैर सरकारी दोनों तरह के सदस्य हो सकते थे। चुने हुए सदस्यों का निर्वाचन सीधी तौर पर जनता द्वारा नहीं; बल्कि स्थानीय संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, जमीन्दारों, वाणिज्य-संघों इत्यादि के द्वारा होता था। मुसलमानों को अपना प्रतिनिधि अलग चुनने का अधिकार दिया गया। भिन्न-भिन्न कौंसिलों के सदस्यों की संख्या और इनमें चुने हुए और नामजद सदस्यों के अनुपात का निर्धारण इस ऐक्ट के मुताबिक बननेवाले नियमों के मुताबिक हुआ। इन नियमों के मुताबिक केन्द्रीय कौंसिल में सरकारी सदस्यों का बहुमत रखा गया। प्रान्तीय कौंसिलों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत रहा। लेकिन इसका अर्थ निर्वाचित सदस्यों का बहुमत नहीं था। बंगाल को छोड़कर और सभी प्रान्तों की कौंसिलों में नामजद सदस्यों का ही बहुमत था।

कौंसिलों के अधिकार भी बढ़ा दिए गए। अब इनके मेम्बर बजट के सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश कर सकते और उस पर वोट दे सकते थे। इन्हें दूसरी किसी बात के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पेश करने का अधिकार मिल गया। ये प्रस्ताव सुझाव के रूप में रहते थे। कौंसिल के मेम्बरों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार भी मिल गया। गवर्नर जेनरल और गवर्नरों को अपनी अनुपस्थिति में कौंसिलों के सभापति पद का काम सम्हालने के लिए उपसभापति नियुक्त करने का भी अधिकार दिया गया।

इस ऐक्ट में एक्जिक्युटिव कौंसिलों के सम्बन्ध में भी व्यवस्था की गई थी।

बम्बई और मद्रास की एक्जिक्युटिव कौंसिलों के सदस्यों की संख्या दो से बढ़ाकर चार कर दी गई। गवर्नर जेनरल को नए-नए प्रान्तों में एक्जिक्युटिव कौंसिल कायम करने का अधिकार दिया गया। लेकिन पार्लियामेंट गवर्नर जेनरल के इस तरह की किसी आज्ञा को रद्द भी कर सकती थी।

मॉर्ले-मिंटो सुधार के समय से एक्जिक्युटिव कौंसिल में एक भारतीय सदस्य भी बहाल होने लगा। अब तक सभी सदस्य अंग्रेज ही होते थे। इसके पहले ही, १९०७ में भारत-मंत्री की कौंसिल में दो भारतीय सदस्य बहाल हो चुके थे।

(४) मॉर्ले-मिंटो सुधारों की असफलता

भारतीयों की माँगों का यही उत्तर था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन ऐक्टों से भारत में व्यवस्थापिका सभा का विकास बहुत कुछ आगे बढ़ा। लेजिस्लेटिव कौंसिलों में जनता के प्रतिनिधियों को जगह मिलनी चाहिए, यह सिद्धान्त मान लिया गया। कम-से-कम प्रान्तीय कौंसिलों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत कायम हो गया। इसके अलावे कौंसिलों के अधिकार भी बहुत बढ़ गए। अब कौंसिल के मेम्बरों का काम सिर्फ कानून बनाने के काम में ही मदद देना नहीं रहा। वे शासन के कामों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछ सकते थे और इसके उत्तर से सन्तुष्ट नहीं होने पर पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार भी उन्हें मिल गया था। बजट पर वे बहस कर सकते, प्रस्ताव पेश कर सकते और वोट दे सकते थे। इसके अलावे देश की किसी भी समस्या पर वे प्रस्ताव पेश कर सकते थे। यह ठीक है कि ये प्रस्ताव सुझाव के रूप में होते थे और इनको मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं की जा सकती थी; फिर भी इनका सरकार की नीति पर कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता था और कई दफे तो सरकार इन सुझावों को मान भी लेती थी।

लेकिन यह सब होते हुए भी ये सुधार असफल ही रहे। इसके कारण स्पष्ट थे। सबसे पहली बात यह थी कि अभी इन कौंसिलों का स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं कायम हुआ था। जब कानून बनाने का काम आ जाता तब एक्जिक्युटिव कौंसिलों में ही कुछ और मेम्बरों को जोड़ दिया जाता था। १८९२ तक तो किसी भी

कौंसिल में एक भी चुना हुआ मेम्बर नहीं था। १९०९ के ऐक्ट ने निर्वाचन के सिद्धान्त को पहलेपहल साफ तौर से स्वीकार किया। लेकिन इसके बाद भी बंगाल को छोड़कर और सभी जगह कौंसिलों में इनकी संख्या नामजद सदस्यों से कम रखी गई। केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में तो १९०९ के बाद भी गैर सरकारी मेम्बरों का बहुमत नहीं रखा गया। सरकारी सदस्य सदा सरकार का साथ देते थे। इसलिए गैर-सरकारी सदस्य चाहे जितनी भी कोशिश करें और उनका पक्ष न्याय की दृष्टि से कितना भी सबल हो, वे सरकारी सदस्यों के विरोध को कभी भी पराजित नहीं कर सकते थे। प्रान्तीय कौंसिलों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत अवश्य था। लेकिन इन गैर सरकारी सदस्यों में नामजद सदस्य भी रहते थे और ये बराबर सरकारी सदस्यों का समर्थन करते थे। कौंसिलों के अधिकार भी बहुत सीमित थे। उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को नहीं स्वीकार किया गया था। मॉर्ले ने तो साफ कहा था—"अगर यह कहा जा सकता कि सुधारों के इस अध्याय से भारत में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पार्लियामेण्टरी व्यवस्था की स्थापना होती थी, तो कम-से-कम मैं इनसे कोई भी सम्बन्ध नहीं रखता।" शासन पर कौंसिल का कोई अधिकार नहीं था। ऐसी हालत में बहस करने, प्रश्न पूछने, प्रस्ताव पेश करने इत्यादि अधिकारों का कोई खास महत्त्व नहीं था। चुनाव का तरीका भी दोष-पूर्ण था। प्रत्यक्ष चुनाव नहीं करने से वोटरों और सदस्यों में किसी तरह का सम्पर्क नहीं रहता था और दोनों में कोई एक दूसरे के प्रति किसी तरह की जिम्मेदारी का अनुभव नहीं करता था। इससे भारतीय जनता की राजनीतिक शिक्षा भी नहीं हो सकती थी। वोटरों को अलग-अलग वर्गों में बाँटने से तो और भी हानि हुई। इससे उनका दृष्टिकोण संकीर्ण होने लगा और वे किसी भी समस्या पर समूचे समाज या देश के हित की दृष्टि से विचार करने में असमर्थ रहे। साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली की नींव डालकर तो इस ऐक्ट ने राष्ट्रीयता के विकास में सबसे बड़ा रोड़ा खड़ा कर दिया। इसके अलावे इन सुधारों की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण यह था कि प्रान्तीय शासन पर केन्द्रीय सरकार के अधिकार तनिक भी कम नहीं किए गए। इससे प्रान्तीय कौंसिलों के काम करने का क्षेत्र बहुत संकुचित हो गया। जैसा कि मॉटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में कहा गया है—ऐसे अनेक अवसर आते थे जब प्रान्तीय कौंसिलों के प्रस्तावों के जवाब में सरकार की

तरफ से यही जवाब मिलता था कि उन्हें केन्द्रीय सरकार के पास विचारार्थ भेज दिया जायगा। इससे इन कौंसिलों के सदस्यों को बड़ी निराशा होती थी और वे मॉर्लेमिण्टो सुधारों द्वारा स्थापित व्यवस्था को एक ढोंग मात्र समझने लगते थे।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि भारतीय इन सुधारों से सन्तुष्ट नहीं हुए। जब इन सुधारों की घोषणा हुई थी, तब यह बात नहीं थी। कम-से-कम नरम विचार के नेता तो इन्हें कार्यान्वित करने के पक्ष में थे और इनसे बहुत आशा रखते थे। १९०८ के कांग्रेस-अधिवेशन में भाषण देते हुए गोपालकृष्ण गोखले ने यह आशा प्रकट की थी कि इन सुधारों से भारतीय शासन का स्वरूप बदल जायगा। लेकिन सुधारों के कार्यान्वित रूप से गोखले को भी निराश होना पड़ा। १९१० ई० में ही केन्द्रीय कौंसिल में अपने स्थान से बोलते हुए गैर सरकारी सदस्यों की असहायावस्था को प्रकट करते हुए गोखले ने कहा—"हम लोग अच्छी तरह जानते हैं, कि अगर एक बार सरकार एक विशेष मार्ग अपनाने का निश्चय कर लेती है, तो कौंसिल में गैर सरकारी मेम्बर कुछ भी कहें, उस मार्ग में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता।" इस तरह इन सुधारों से भारत के सबसे नरम विचार के नेता को भी सन्तोष नहीं हुआ।

अध्याय ३

युरोपीय महायुद्ध और होमरूल आन्दोलनः उत्तरदायी शासन का आरम्भ

(१९०९–१९१९)

पिछले अध्याय में यह देखा जा चुका है कि मॉर्ले-मिण्टो सुधारों से भारत में कोई राजनीतिक दल पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं था। आतंकवादियों पर तो इसका कुछ असर ही नहीं पड़ा और वे अपना काम पहले ही की तरह चलाते रहे। २५ जनवरी, १९१० को लार्ड मिण्टो ने नए सुधारों के मुताबिक गठित लेजिस्लेटिव कौंसिल का उद्घाटन किया। इसके पिछले शाम को ही कलकत्ते में पुलिस के एक बड़े अफसर की हत्या आतंकवादियों के हाथों हुई। अखबारों के जरिए भी क्रान्तिकारी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। दिल्ली में वाइसराय लार्ड हार्डिञ्ज पर भी बम चलाने की कोशिश की गई और हर साल कुछ-न-कुछ हत्याएँ होती रहीं। सरकार ने इस आतंकवादी आन्दोलन को दबाने में पूरी कड़ाई से काम लिया। दमन के लिए नए-नए कानून बनाए गए। १९१० ई० में एक नया प्रेस ऐक्ट पास हुआ, जिसके सहारे भारतीय समाचारपत्रों को दबाने की कोशिश की गई। लेकिन दमन-नीति इस आन्दोलन को खतम नहीं कर सकी। हिन्दुस्तान से बाहर भी बहुत-से भारतीय क्रान्तिकारियों ने अपना काम जारी रखा। इनमें से राजा महेन्द्रप्रताप, लाला हरदयाल, बरकतुल्ला, रासबिहारी बोस इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। इन लोगों ने बाहर में इंगलैंड के दुश्मनों की मदद लेकर भारत से अंग्रेजी सरकार को खतम करने की कई योजनाएँ बनाईं। इनमें से कोई योजना सफल तो नहीं हुई, लेकिन भारतीयों पर इनका बहुत असर पड़ा और धीरे-धीरे लोगों का ध्यान अंग्रेजी राज को जड़ से खतम करने की तरफ जाने लगा और लोग उसके लिए सभी तरह का बलिदान करने के लिए प्रस्तुत होने लगे।

१९१४ ई० में यूरोपीय महायुद्ध के छिड़ने से भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और आगे बढ़ा। इस लड़ाई में भारतीयों ने भी इंगलैंड की तरफ से हिस्सा लिया। लड़ाई के कई क्षेत्रों में भारतीयों की मदद से ही इंगलैंड की विजय हुई। अंग्रेजों ने भारतीयों की मदद की सराहना भी की। इससे भारतीयों को अपनी ताकत का भान हुआ। इसके अलावे इंगलैंड का कहना था कि वह इस लड़ाई में लोकतंत्र और आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए लड़ रहा था। युद्ध में सहायता देने के बाद भारतीय भी अपने को आत्म-निर्णय का पात्र समझने लगे और यह माँग करने लगे कि भारत में भी आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को लागू किया जाय। युद्ध और इसके पहले की घटनाओं का भारतीय मुसलमानों पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। इसके पहले अंग्रेजों के भड़काने से वे कांग्रेस से विमुख होते जा रहे थे। लेकिन अब टर्की और पर्शिया की क्रान्तियों ने उनके हृदय में भी राष्ट्रीयता की भावना भर दी। इसके अलावे टर्की के साथ यूरोपीय देश जो बर्ताव कर रहे थे, उससे भी इनमें ब्रिटेन के विरुद्ध भावना बढ़ी। अब इनकी साम्प्रदायिक संस्था मुस्लिम लीग (जो १९०६ ई० में कायम की गई थी) ने भी समझा कि कांग्रेस के साथ सहयोग करने और भारत के राष्ट्रीय अधिकारों का समर्थन करने में ही मुसलमानों की भलाई है। इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम लीग कांग्रेस के नजदीक आती गई और दोनों संस्थाओं ने मिलकर १९१६ ई० में भारत में वैधानिक सुधार की एक योजना बनाई, जो कांग्रेस-लीग-योजना के नाम से विख्यात हुई। इसमें रखी गई माँगों से कम के लिए भारत में कोई तैयार नहीं था। एक तरफ कांग्रेस-लीग समझौता हो रहा था, तो दूसरी तरफ खुद कांग्रेस के स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा था। १९०८ के बाद तिलक इत्यादि उग्र विचार के नेता नरम दल के नेताओं से मतभेद के कारण कांग्रेस से अलग हो गए थे। लेकिन १९१५ ई० में गोखले और फिरोजशाह मेहता की मृत्यु के बाद ये लोग फिर कांग्रेस में चले आए। १९१६ ई० के बाद से कांग्रेस में इनका प्रभाव बढ़ने लगा और कांग्रेस का रुख भी उग्रतर होता गया।

इसी समय भारत के बाहर भारतीयों की जो दशा थी उसका भी राष्ट्रीय आन्दोलन पर असर पड़ा। विशेष कर दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की हालत बहुत खराब थी और उनपर तरह-तरह के अत्याचार हो रहे थे। इन अत्याचारों को

दूर करने के लिए वहाँ के भारतीयों ने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। सत्याग्रहियों के साथ वहाँ की सरकार ने बड़ी बेरहमी का बर्ताव किया। भारत में इन अत्याचारों की खबरें बराबर आती रहती थीं। कनाडा इत्यादि दूसरे कई देशों में भी भारतीयों को कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इनकी दशा में सुधार लाने के लिए भारत में जोरों से आन्दोलन चल पड़ा, लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय अब समझने लगे कि जबतक अपने देश में उनकी स्थिति में सुधार नहीं होता तब-तक बाहर में सुधार की बात सोचना व्यर्थ है।

इस समय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व श्रीमती एनी बेसेंट और तिलक के हाथ में था। एनी बेसेंट ने एक दैनिक और एक साप्ताहिक अखबार निकाला और भारतीयों के राजनीतिक अधिकारों के लिए जोरदार आन्दोलन करने लगीं। इसी उद्देश्य से उन्होंने १९१६ ई० में मद्रास में होमरूल लीग की स्थापना की। इसी साल पूना में तिलक ने भी एक होमरूल लीग की स्थापना की थी। अब समूचे भारतवर्ष में होमरूल आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। इसका उद्देश्य था कि देश की भीतरी बातों का शासन भारतीयों के हाथों में सौंप दिया जाय। सरकार की दमन-नीति ने होमरूल आन्दोलन के फैलने में और भी मदद की। एनी बेसेंट अपने दो साथियों के साथ नजरबन्द कर ली गईं। इसका बहुत बुरा असर पड़ा। कांग्रेस के नरम दल के नेता, अबतक होमरूल आन्दोलन में शामिल नहीं थे। लेकिन अब वे भी इसके समर्थक हो गए। एनी बेसेंट का नाम समूचे देश में फैल गया और उनकी रिहाई की माँग की जाने लगी।

भारतमंत्री माण्टेग्यू की घोषणा (२० अगस्त १९१७)

धीरे-धीरे सरकार भी समझने लगी कि सिर्फ दमन-नीति से राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं रुकेगा। युद्ध की स्थिति भी गम्भीर होती जा रही थी और उसमें सफलता के लिए यह जरूरी समझा जा रहा था कि भारत में तत्काल कोई बड़ा संकट नहीं उठ खड़ा हो और युद्ध में भारतीयों का सहयोग चलता रहे। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने सुधार की नीति अपनाई। २०अगस्त १९१७ को भारतमंत्री माण्टेग्यू ने भारत में ब्रिटिश नीति के सम्बन्ध में निम्नलिखित घोषणा की—

"ब्रिटिश सरकार की यह नीति है और भारत-सरकार इससे पूर्ण रूप से सहमत है कि शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़ाया जाय और स्वशासनसम्बन्धी संस्थाओं का क्रमिक विकास किया जाय जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग रहते हुए भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन की स्थापना हो जाय। इस नीति की प्रगति धीरे-धीरे ही हो सकती है। प्रत्येक अवसर पर कब और कितना आगे कदम बढ़ाना चाहिए इसके निर्णय का अधिकार ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार के हाथों में ही रहेगा।"

इस घोषणा ने यह साफ कर दिया कि भारतीय शासन में तुरत कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं होने जा रहा था। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि भारत को आत्मनिर्णय का अधिकार भी नहीं दिया गया। थोड़ा-बहुत जो भी परिवर्तन होगा, वह भारतीयों की राय के अनुसार नहीं, बल्कि ब्रिटिश सरकार के निर्णय के अनुसार होगा। इन त्रुटियों के होते हुए भी मांटेग्यू की इस घोषणा का भारत की वैधानिक प्रगति में बहुत बड़ा महत्त्व है। अबतक भारत में जो भी वैधानिक परिवर्तन हुए थे, उनमें उत्तरदायी शासन की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। और न ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा कभी इस वाक्य का प्रयोग ही किया गया था। लेकिन इस घोषणा ने ब्रिटिश नीति को एक नई दिशा में मोड़ दिया। इसमें देर चाहे जितनी भी हो, लेकिन अब ब्रिटिश सरकार ने भी स्वीकार कर लिया कि इसका उद्देश्य भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करनी थी।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट

इसी घोषणा में यह भी कहा गया था कि भारतमंत्री भारत जायँगे और वहाँ पर भारत की वैधानिक समस्याओं का स्वयं अध्ययन करेंगे जिससे यह पता चले कि तत्काल ब्रिटिश सरकार की नीति को कैसे और कहाँ तक कार्यान्वित करना उचित होगा। इसके मुताबिक मांटेग्यू भारत आए। यहाँ पर वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ वे भारत के सभी बड़े-बड़े शहरों में गए और इन दोनों ने भिन्न-भिन्न व्यक्तियों और संस्थाओं से विचार-विमर्श किया। इसके बाद इन लोगों ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसे मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट कहते हैं। इस

रिपोर्ट में भारतीय शासन के विकास का संक्षिप्त इतिहास दिया गया था। इसके बाद इसके लेखकों ने भारयीय विधान में सुधार करने की भिन्न-भिन्न योजनाओं पर विचार किया था और अन्त में अपनी योजना पेश की थी। इस योजना के, मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट के ही शब्दों में, निम्नलिखित चार मूल सिद्धान्त थे—

(अ) "जहाँ तक सम्भव हो सके, स्थानीय संस्थाओं में जनता का पूरा अधिकार और बाह्य नियंत्रण से उनकी अधिकाधिक स्वतंत्रता रहनी चाहिए।"

(ब) "प्रान्त ही वे क्षेत्र हैं जहाँ उत्तरदायी शासन की क्रमशः स्थापना की ओर पहलेपहल कदम उठाना चाहिए। उत्तरदायित्व का कुछ अंश तुरत दे देना चाहिए और हमारा उद्देश्य है कि ज्योंही परिस्थिति अनुकूल हो, पूरा उत्तरदायित्व दे देना चाहिए। इसका यह परिणाम होगा कि प्रान्तों को कानून, शासन और अर्थ सम्बन्धी बातों में भारत-सरकार से उतने अंश तक स्वतंत्र कर देना होगा जितने से कि स्वयं भारत-सरकार को अपनी जिम्मेदारियों के पालन करने में किसी तरह की बाधा न हो।"

(स) "भारत-सरकार को पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी रहना चाहिए और इस प्रकार के उत्तरदायित्व के अतिरिक्त मुख्य-मुख्य बातों में तबतक इसका पूरा अधिकार रहना चाहिए जबतक कि प्रान्तों में किए जानेवाले परिवर्तनों का प्रभाव नहीं मालूम हो जाय। इस बीच में भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ा देना, इसमें भारतीयों के प्रतिनिधियों को अधिक जगह देना और इसको शासन पर प्रभाव डालने का अधिक अवसर प्रदान करना चाहिए।"

(द) "ऊपर दिए गए परिवर्तन ज्यों-ज्यों व्यवहार में आते जायँ त्यों-त्यों भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों पर पार्लियामेंट और भारत मंत्री का नियंत्रण कम करते जाना चाहिए।"

गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट (१९१९)

मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड-रिपोर्ट के इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर १९१९ ई० में पार्लियामेंट ने एक नया ऐक्ट पास किया, जिसे गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट कहते हैं। आम तौर पर इसे मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधार कहकर भी पुकारा जाता है। इस ऐक्ट के मुताबिक पहली महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के अधिकारक्षेत्र एक दूसरे से अलग कर दिए गए। यह साफ-साफ बतला दिया गया कि कौन-कौन विषय केन्द्रीय सरकार के मातहत रहेंगे और कौन प्रान्तीय के। केन्द्रीय सरकार के मातहत वे विषय रखे गए जिनका सम्बन्ध समूचे देश से था, जैसे—रेल, तार; डाक, सेना, वैदेशिक नीति इत्यादि। प्रान्तीय क्षेत्र में वे विषय रखे गए जिनका सम्बन्ध मुख्यतः प्रान्त से ही था, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सिंचाई, खेती, पुलिस, जेल इत्यादि। जो विषय प्रान्तीय विषयों की सूची में नहीं शामिल थे, वे सब केन्द्रीय विषय समझे जाते थे। अगर कभी कोई सन्देह पैदा हो जाता था कि अमुक विषय केन्द्रीय क्षेत्र का है कि प्रान्तीय क्षेत्र का—तो इसका फैसला गवर्नर जेनरल करता था। बहुत-सी ऐसी बातें थीं जिनके सम्बन्ध में किसी प्रान्तीय कौंसिल में कोई बिल उपस्थित करने के पहले गवर्नर जेनरल की अनुमति ले लेना आवश्यक था। और प्रान्तीय कौंसिल द्वारा पास किए हुए प्रत्येक बिल के ऐक्ट बनने के लिए गवर्नर के साथ-साथ गवर्नर जेनरल की स्वीकृति का होना भी जरूरी था। केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों के इस विभाजन का यह अर्थ नहीं है कि १९१९ के ऐक्ट के मुताबिक भारत का विधान संघीय हो गया। साधारणतः यह आशा की जाती थी कि व्यवहार में केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय विषयों के बाहर कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। लेकिन सिद्धान्ततः केन्द्रीय व्यवस्थापिका को समूचे देश के लिए कानून बनाने का पूरा अधिकार था और किसी कानून के खिलाफ न्यायालय में यह कहकर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था कि उसका सम्बन्ध एक प्रान्तीय विषय से था और केन्द्रीय व्यवस्थापिका ने उसे बनाकर अपने अधिकारक्षेत्र का अतिक्रमण किया है।

प्रान्तीय शासन में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया गया। उत्तरदायी शासन का आरम्भ प्रान्त ही से करना ठीक समझा गया। लेकिन प्रान्तीय शासन

के पूरे क्षेत्र को उत्तरदायी मंत्रियों के अधिकार में देना भी उचित नहीं समझा गया। इसलिए एक नई व्यवस्था निकाली गई जिसे डायर्की या द्वैधशासन कहते हैं। प्रान्तीय विषयों को दो भागों में किया गया—संरक्षित और हस्तान्तरित। संरक्षित विषयों में उन बातों को रखा गया जो शासन की दृष्टि से अधिक महत्त्व-पूर्ण समझे जाते थे जैसे पुलिस, जेल, न्याय, राजस्व इत्यादि। हस्तान्तरित क्षेत्र में शिक्षा, स्थानीय शासन, स्वास्थ्य, कृषि इत्यादि रखे गए। संरक्षित विषयों का शासन पहले की तरह गवर्नर की एक्जिक्युटिव कौंसिल के हाँथ में रहा। लेकिन हस्तान्तरित विषयों के शासन का काम मंत्रियों के जिम्मे सौंपा गया। एक्जिक्युटिव कौंसिल की तरह मंत्रियों के ऊपर भी गवर्नर रहता था। लेकिन मंत्रियों के काम में वह अपेक्षाकृत कम हस्तक्षेप करता था। ये मंत्री प्रान्तीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों में से गवर्नर द्वारा बहाल होते थे। ये सब तरह से कौंसिल के प्रति उत्तर-दायी होते थे। कौंसिल इनका वेतन घटा सकती थी और इनके किसी बिल या बजट को पास करने से इनकार कर इन्हें इस्तीफा देने पर बाध्य कर सकती थी। इसका अर्थ यह था कि कोई मंत्री पद पर तभी तक रह सकता था जबतक उसमें कौंसिल का विश्वास रहे।

प्रान्तीय कौंसिलों की स्थिति में भी बहुत सुधार हुआ। अब वे गवर्नर की एक्जिक्युटिव कौंसिल में ही कुछ और मेम्बरों को जोड़ देने से बन जानेवाली संस्थाएँ नहीं रहीं। उनका अब स्वतंत्र अस्तित्व हो गया। उनके सत्तर प्रतिशत सदस्य अब चुने हुए होने लगे। सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक-से-अधिक बीस प्रतिशत ही हो सकती थी। बाकी गवर्नर द्वारा नामजद किए हुए गैर सर-कारी सदस्य रहते थे। पहले गवर्नर स्वयं कौंसिलों का सभापतित्व करते थे। अब इनका एक सभापति होने लगा जिसे प्रथम चार साल के बाद खुद कौंसिलें ही चुनती थीं। इनके वोटरों की संख्या भी पहले की अपेक्षा अब बहुत बढ़ गई। इनके अधिकार भी बढ़ा दिए गए। कानून बनाने के क्षेत्र में तो इनका अधि-कार था ही। अब बजट के कुछ भाग भी इनके अधिकार में आ गए। इसके अलावे हस्तान्तरित विषयों के शासन पर भी इनका अधिकार हो गया, क्योंकि मंत्री इनके प्रति पूर्णतया उत्तरदायी रहते थे और इनका विश्वास खतम हो जाने पर इस्तीफा दे देते थे। संरक्षित विषयों पर कौंसिलों का इतना अधिकार नहीं था,

क्योंकि एक्जिक्युटिव कौंसिल के मेम्बर इनके प्रति उत्तरदायी नहीं थे। वैसे तो उनके विभागों से सम्बन्ध रखनेवाले बिल भी कौंसिलों में पेश किए जाते थे। लेकिन अगर वे कौंसिलों में पास नहीं होते थे, तो गवर्नर उन्हें अपना 'सर्टिफिकेट' देकर ऐक्ट का रूप दे देते थे। अधिकार रहते हुए भी वे साधारणतः हस्तान्तरित विषयों के सम्बन्ध में 'सर्टिफिकेट' का प्रयोग नहीं करते थे। लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि संरक्षित विषयों के शासन पर कौंसिलों का कोई प्रभाव ही नहीं था। गवर्नर बराबर सर्टिफिकेट देने के अधिकार का प्रयोग करना नहीं चाहते थे, क्योंकि ऐसा करने से शासन एकदम निरंकुश मालूम पड़ता और यह विधान की सफलता के लिए अच्छा नहीं होता। इसलिए कानूनी तौर पर अधिकार नहीं रहते हुए भी, व्यवहार में कौंसिलों का संरक्षित विषयों के शासन पर भी बहुत प्रभाव पड़ता था और एक्जिक्युटिव कौंसिल के मेम्बर ऐसी नीति अपनाने की कोशिश करते थे जिससे कि उनके बिलों को लेजिस्लेटिव कौंसिलों का समर्थन प्राप्त हो जाय और गवर्नर के सर्टिफिकेट का प्रयोग नहीं करना पड़े।

केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना अभी नहीं की गई। गवर्नर जेनरल का एक्जिक्युटिव कौंसिल पहले की ही तरह रहा। लेकिन यहाँ भी भारतीयों को शासन पर पहले से अधिक प्रभाव डालने का अवसर दिया गया। १९२१ से एक्जिक्युटिव कौंसिल के भारतीय मेम्बरों की संख्या एक से बढ़ाकर तीन कर दी गई। १९१९ के ऐक्ट के मुताबिक केन्द्रीय व्यवस्थापिका में भी परिवर्तन किया गया। एक लेजिस्लेटिव कौंसिल की जगह अब दो परिषदों की व्यवस्थापिका बनाई गई, जिनका नाम क्रमशः कौंसिल आफ स्टेट और लेजिस्लेटिव एसेम्बली पड़ा। इन दोनों परिषदों में चुने हुए मेम्बरों का बहुमत हो गया। कौंसिल आफ स्टेट में अधिक-से-अधिक साठ मेम्बर हो सकते थे और लेजिस्लेटिव एसेम्बली में कम-से-कम एक सौ चालीस। इनके वोटरों की संख्या भी पहले से बढ़ा दी गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका के अधिकार भी अब पहले से अधिक हो गए। बजट के एक हिस्से पर इसके सदस्य वोट दे सकते थे। इसके पास किए हुए किसी बिल के ऐक्ट बनने के लिए गवर्नर जेनरल की स्वीकृति का होना जरूरी था। अगर केन्द्रीय व्यवस्थापिका कोई बिल नहीं पास करे तोभी गवर्नर जेनरल अपना सर्टिफिकेट देकर उसे ऐक्ट का

रूप दे सकता था। लेकिन इस अधिकार का प्रयोग जहाँ तक सम्भव हो, कम करने की कोशिश की जाती थी। इसके अलावे प्रश्न पूछने, प्रस्ताव पेश करने इत्यादि कई तरीके थे जिनके जरिए कार्यकारिणी के कामों की आलोचना की जा सकती थी और इसका कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य ही पड़ता था।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधारों की असफलता

यह विधान १९२१ के शुरू में लागू हुआ और १९३७ के मार्च तक चलता रहा। इस तरह करीब सोलह वर्ष तक भारत का शासन इसी के अनुसार हुआ। लेकिन इसे सफल नहीं कहा जा सकता। १९१९ के ऐक्ट में ही ऐसे दोष थे, जिससे यह कभी भी सफल नहीं हो सकता था। जैसे-जैसे इसका कार्यान्वित रूप सामने आया वैसे-वैसे इसके ये दोष भी प्रकट होते गए। सुधारों के कार्यान्वित रूप की सरकारी तौर पर भी दो बार जाँच हुई—एक मुडीमैन-कमिटी द्वारा और दूसरा साइमन कमीशन द्वारा। इन दोनों ने भी १९१९ के ऐक्ट की कमियों पर जोर दिया। १९१९ के ऐक्ट का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग प्रान्तों से सम्बन्ध रखता था, जहाँ पर द्वैध शासन की स्थापना की गई थी। यह द्वैध शासन की योजना दोषों से भरी हुई थी।

सबसे पहली बात यह है कि शासन के विभागों को दो अलग-अलग भागों में बाँटने की कोशिश कभी भी सफल नहीं हो सकती थी। उनका एक दूसरे से इतना अविच्छिन्न सम्बन्ध था कि उनको अलग-अलग करना असम्भव था। लेकिन द्वैध शासन के अनुसार यही करने की कोशिश की गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि संरक्षित और हस्तांतरित विभागों में झगड़े के मौके बराबर आते रहे। इनका फैसला करना गवर्नर के हाथ में था। इसलिए गवर्नर के अधिकारों का और भी अधिक प्रयोग होने लगा और मंत्रियों की स्वतंत्रता जाती रही। उत्तरदायी शासन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मंत्रियों का सयुंक्त उत्तरदायित्व रहे। लेकिन इसकी कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। व्यवहार में भी इसको कायम करने की कोई कोशिश नहीं की गई। अधिकतर गवर्नर मंत्रियों से अलग-अलग परामर्श लेना अधिक उचित समझते थे। कहीं-कहीं पर स्वयं मंत्रियों ने संयुक्त रूप से काम करने की कोशिश जरूर की, लेकिन उनकी कायम की हुई परम्परा स्थायी नहीं,

बन सकी। संयुक्त उत्तरदायित्व के नहीं रहने से गवर्नर पर मंत्रियों का उतना प्रभाव नहीं रहा जितना रहना चाहिए था और न उत्तरदायी शासन का ही ठीक तरह से विकास हो सका। प्रान्तीय शासन के सभी विभागों का आर्थिक प्रबन्ध एक ही जगह रखा गया। यह एक्जिक्युटिव कौंसिल के अर्थ-मेम्बर के हाथ में था। मंत्रियों के हाथ में जो विभाग थे, उनका खर्च भी अर्थ-मेम्बर ही मंजूर करता था। इसके पहले वह मंत्रियों की सभी योजनाओं की भी जाँच करता था। मंत्रियों के काम में इससे बड़ी बाधा पड़ती थी और अगर अर्थ-मंत्री की स्वीकृति न हो, तो वे लेजिस्लेटिव कौंसिल की सिफारिशों को भी काम में लाने से लाचार थे। अगर अर्थ-मंत्री से मतभेद होता था तो गवर्नर का फैसला सबको मानना पड़ता था। गवर्नर के लिए स्वाभाविक यही था कि वह अर्थमंत्री के सुझावों की अधिक कीमत करे। कम-से-कम इसका यह परिणाम तो अवश्य होता था कि मंत्री अपनी सफलता के लिए और भी गवर्नर पर निर्भर करने लगते थे। मंत्रियों का, अपने अधीन काम करनेवाले बड़े अफसरों; विशेष कर इंडियन सिविल सर्विस के सदस्यों पर कोई अधिकार नहीं था। ये अफसर बराबर गवर्नर के रुख की ओर देखते रहते थे और उसी के मुताबिक अपना काम करते थे।

प्रान्तीय कौंसिलों के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई थी, वह भी द्वैध शासन की असफलता का कारण बनी। वोट का अधिकार पहले से अधिक व्यक्तियों को जरूर दिया गया था; लेकिन अभी भी अधिकांश जनता बिना वोट के ही थी। यह अधिकार सम्पत्ति के आधार पर दिया गया था। इसका यह परिणाम हुआ कि सिर्फ धनी लोग ही कौंसिलों में चुनकर आए। चुनावक्षेत्र भी बहुत बड़े रखे गए। इसके फलस्वरूप कौंसिल के मेम्बरों और उनके वोटरों में किसी तरह के सम्पर्क का रहना बहुत कठिन हो गया। सबसे बड़ी हानि साम्प्रदायिक निर्वाचनप्रणाली से हुई। माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट में इसकी बहुत निन्दा की गई थी। लेकिन फिर भी १९१९ में इसीको अपनाया गया। यही नहीं, इसको पहले से भी विस्तृत कर दिया गया। जहाँ १९०९ में सिर्फ मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया था, वहाँ अब सिक्खों, ईसाइयों इत्यादि दूसरी अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को भी यह अधिकार दिया गया।

जमीन्दारों व्यापारियों इत्यादि के लिए भी अलग-अलग जगहें सुरक्षित की गई थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि जो मेम्बर चुने जाते थे उनका दृष्टिकोण बराबर संकीर्ण रहता था। वे समूचे प्रान्त का स्वार्थ न देखकर सिर्फ अपने सम्प्रदाय का स्वार्थ देखते रहते थे। इससे कौंसिलों के भीतर स्पष्ट कार्यक्रम के आधार पर अलग-अलग राजनीतिक दलों का निर्माण नहीं हो सका, और उत्तरदायी शासन की सफलता के लिए इनका रहना अनिवार्य था। इसके अलावे प्रत्येक कौंसिल में तीस प्रतिशत नामजद मेम्बरों का रहना भी उत्तरदायी शासन के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। चुने हुए मेम्बरों में किसी स्थिर दल के नहीं रहने से मंत्री लोग अक्सर नामजद सदस्यों का समर्थन प्राप्त करना ही अधिक लाभदायक समझते थे। तीस प्रतिशत तो ये थे ही। जमीन्दार, युरोपियन इत्यादि चुने हुए मेम्बर भी इन्हीं का साथ देते थे। ये सब गवर्नर और बड़े-बड़े अफसरों के इशारे पर बराबर एक ही तरफ वोट देते थे। धीरे-धीरे मंत्री लोग इन्हीं पर निर्भर रहने लगे। इसका परिणाम भी बुरा हुआ। ये मंत्री लेजिस्लेटिव कौंसिल के चुने हुए मेम्बरों की अपेक्षा, गवर्नर के आदेश का ही अधिक पालन करने लगे, क्योंकि उसीके खुश रहने से नामजद सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो सकता था। मद्रास के एक मंत्री ने तो वहाँ के लेजिस्लेटिव कौंसिल में एक बार साफ-साफ कह दिया था कि वह गवर्नर के प्रति उत्तरदायी है, कौंसिल के प्रति नहीं। ऐसी स्थिति में द्वैध शासन का असफल होना कैसे रोका जा सकता था ?

भारत की राजनीतिक परिस्थिति भी माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधार की सफलता में सहायक नहीं हुई। कांग्रेस के उग्र विचार के नेताओं को यह सुधार एकदम ग्राह्य नहीं था। वे इतने सीमित क्षेत्र में उत्तरदायी शासन से सन्तुष्ट नहीं थे और प्रान्तीय तथा केन्द्रीय शासन के सभी अंगों में उत्तरदायी शासन की स्थापना चाहते थे। कांग्रेस में इन्हीं लोगों का बहुमत रहा और नरम विचारवाले अब इससे अलग हो गए। इस तरह देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था के सहयोग से यह योजना वञ्चित रही। आगे चलकर कांग्रेस के कुछ नेता स्वराज्य-पार्टी के नाम पर कौंसिलों में गए भी। लेकिन वहाँ उनका उद्देश्य १९१९ के ऐक्ट का चलना असम्भव कर देना था, इसके चलने में सहायता देना नहीं। बंगाल और मध्यप्रदेश में वे अपने उद्देश्य में बहुत-कुछ सफल भी हुए। उस समय प्रान्तीय सरकार के सामने आर्थिक

दिक्कत भी थी। मंत्रियों को जनता की भलाई के लिए नई-नई योजनाएँ चलाने के लिए काफी रुपया नहीं मिलता था। इसलिए जनता की स्थिति में कोई बहुत उन्नति नहीं हुई और इस ऐक्ट के विरोधियों को यह कहने का मौका मिला कि यह एक जाल था, इससे भारतवासियों का कुछ लाभ होनेवाला नहीं था। युद्ध के बाद देश की आर्थिक अवस्था भी खराब होती गई। इससे भी जनता का असन्तोष बढ़ने लगा। सबसे बड़ी बात यह थी कि १९१९ के बाद भारत में सरकार की तरफ से कई ऐसे काम हुए जिससे यहाँ बहुत बड़ा राजनीतिक आन्दोलन शुरू हो गया। इसके भीतर कमजोरियाँ तो थीं ही, विरोध, असन्तोष और राजनीतिक आन्दोलन से भरी हुई देश की परिस्थिति ने इसकी सफलता को और भी मुश्किल कर दिया।

अध्याय ४

राष्ट्रीय आंन्दोलन और सांविधानिक प्रगति

(१९१९-१९३९)

खिलाफत और असहयोग

१९२१ ई० में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधार लागू किया गया। लेकिन देश की स्थिति बिगड़ती ही गई। युद्ध के समय भारतीयों पर कर बढ़ा दिया गया था। इसके अलावे युद्ध के बाद कई चीजों के मूल्य में बहुत वृद्धि हो गई। इन आर्थिक कारणों ने राजनीतिक असन्तोष को और भी बढ़ा दिया। उसी समय दिहातों में भी असन्तोष के नये नये लक्षण ऊपर आ रहे थे। बिहार के चम्पारन जिले के किसानों ने अंग्रेज निलहों के अत्याचार से ऊबकर आन्दोलन करना शुरू कर दिया था और इसमें महात्मा गाँधी ने उनका नेतृत्व किया। गुजरात के खैरा जिले के किसान भी आन्दोलन कर रहे थे। १९१७ और १९१८ में प्लेग और इनफ्लुएञ्जा की महामारियों से भी बहुत लोग मरे। इसी समय सरकार के कुछ ऐसे काम हुए जिनसे भारतीयों के असन्तोष ने और भी प्रचंड रूप धारण कर लिया। १९१९ में रौलट ऐक्ट और जालियानवाला बाग के हत्याकांड से समूचे देश में खलबली मच गई। इसके बाद पञ्जाब में और भी जोरों से दमन शुरू हुआ। वहाँ फौजी कानून जारी हो गया। किसी की जायदाद जप्त होती, तो किसी को सड़क के चौराहे पर कोड़े लगाये जाते और किसी को पेट के बल रेंगने के लिए मजबूर किया जाता। इसी समय टर्की के खलीफा के प्रश्न को लेकर भारत के मुसलमानों में अंग्रेजों के खिलाफ असन्तोष फैलने लगा और वे मुहम्मद अली और शौकत अली के नेतृत्व में एक बार फिर कांग्रेस के नजदीक आने लगे।

१९१९ में तिलक की मृत्यु हो गई और काँग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथ में आ गया। गाँधीजी दक्षिणी अफ्रीका में सरकार के खिलाफ असहयोग

और सत्याग्रह का प्रयोग कर चुके थे। अब भारत में भी आपने इसी तरीके को अपनाने का निश्चय किया। इनका कहना था कि सिर्फ प्रस्ताव पास करने और भाषण देने से ही काम नहीं चलेगा। किसी तरह की हिंसक कार्रवाई के भी ये विरुद्ध थे। इनका कहना था कि अगर सभी भारतीय सरकार के सभी कामों से असहयोग कर दें, तो सरकार अपने आप भारतीयों के हकों को कबूल कर लेगी। इन्हीं के कहने पर ६ अप्रैल १९१९ को रौलट ऐक्ट के पास होने के बाद इसके विरोध में समूचे देश में हड़ताल हुई। अब गाँधीजी ने कहा कि पञ्जाब के हत्या-कांड, खिलाफत के सवाल और स्वराज के लिए असहयोग-आन्दोलन करना चाहिए। सितम्बर १९२० में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ और इसमें गाँधीजी का सुझाव मान लिया गया।

आन्दोलन की इस पुकार से समूचे देश में एक नया उत्साह आ गया। लोग स्कूल, कालेज, कचहरी इत्यादि छोड़ने लगे। सरकार ने इसे दबाने के लिए दमन की नीति अख्तियार की। करीब तीस हजार आदमी जेलों में कैद हो गये। लेकिन आन्दोलन चलता रहा। इसी बीच संयुक्तप्रान्त के गोरखपुर जिले में चौरीचौरा थाना को एक भीड़ ने घेर लिया और उसमें आग लगा दी। कई सिपाही इस आग में जलकर मर गये। गाँधीजी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इसका यह अर्थ लगाया कि अभी देश अहिंसा के आधार पर आन्दोलन चलाने के योग्य नहीं है और आन्दोलन बन्द कर दिया, हालाँ कि उनका यह काम काँग्रेस के कई और नेताओं को पसन्द नहीं पड़ा। आन्दोलन के ठंढा पड़ने के बाद सरकार ने गाँधीजी को गिरफ्तार कर उनपर मुकदमा चलाया। उन्हें ६ वर्ष की कैद की सजा मिली, लेकिन बीमारी के कारण वे बाईस महीने बाद ही रिहा कर दिये गये।

स्वराजपार्टी

असहयोग-आन्दोलन खतम होने के बाद काँग्रेस और मुस्लिम लीग का सहयोग धीरे-धीरे खतम होने लगा। टर्की में कमाल पाशा ने खलीफा के पद को खतम कर दिया। इसलिए अब खिलाफत का कोई प्रश्न ही नहीं रहा। १६२४ ई० से मुहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम लीग के नेता हो गये और उनके नेतृत्व में यह राष्ट्रीय आन्दोलन से विमुख होकर साम्प्रदायिक प्रश्नों पर ही अधिक जोर देने

लगी। काँग्रेस के भी बहुत-से नेता अब कौंसिलों के बाहर रहना ठीक नहीं समझते थे। उन लोगों की अब यह राय होने लगी कि कौंसिलों में कांग्रेस के लोगों को जाना चाहिए और वहाँ पर सरकार से सहयोग नहीं करके स्वराज की लड़ाई को आगे बढ़ाना चाहिए। इस उद्देश्य से इन लोगों ने १९२३ ई० में स्वराजपार्टी नाम की एक संस्था कायम की। देशबन्धु चित्तरञ्जन दास, पंडित मोतीलाल नेहरू और श्री एन० सी० के केलकर के नेतृत्व में स्वराज पार्टी ने कौंसिलों के चुनाव में भाग लिये। इसके मेम्बर काफी संख्या में चुने गये और कौंसिलों में जाकर कई प्रान्तों में इन लोगों ने मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार का चलना मुश्किल कर दिया। इस तरह से कांग्रेस में दो दल हो गये। गाँधीजी जब जेल से बाहर आये, तो उन्होंने दोनों दलों में मेल करा दिया। स्वयं वे कौंसिलों से अलग रहकर उन्होंने कांग्रेसजनों से रचनात्मक कार्यक्रम अपनाने की अपील की। इस रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार और खादी के प्रचार का मुख्य स्थान था।

साइमन कमीशन

जब १९२६ ई० में लार्ड इरविन वाइसराय होकर आया तब फिर देश का राजनीतिक वायुमंडल अशान्त हो रहा था। इसी समय मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधारों के कार्यान्वित रूप की जाँच करने और भारत के संविधान में परिवर्तन के लिए सुझाव रखने के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा हुई। इसमें एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। इसे भारतीयों ने अपना अपमान समझा और उनके सभी दलों ने इसका विरोध किया। इसके भारत आने के दिन समूचे देश में हड़ताल मनाई गई और यह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ इसका काले झंडों से स्वागत हुआ। जब १९३० ई० में इसकी रिपोर्ट निकली, तब सभी ने इसके सुझावों की निन्दा की।

पूर्ण स्वराज और सविनय अवज्ञा

अब राष्ट्रीय नेताओं ने स्वयं भारतीय संविधान का एक मसविदा तैयार करने का निश्चय किया। फरवरी १९२८ में दिल्ली में सभी दल के नेताओं का एक सम्मेलन हुआ और इस काम के लिए एक छोटी-सी कमिटी बना दी गई, जिसके सदस्यों में मोतीलाल नेहरू और तेजबहादुर सप्रू मुख्य थे। इस कमिटी ने जो

योजना तैयार की वह नेहरू-रिपोर्ट के नाम से विख्यात है। इसमें भारत में डोमिनियन स्टेट्स अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्वराज की माँग की गई। लेकिन मुस्लिम लीग ने इसका विरोध किया। श्रीनिवास आयंगर, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस ऐसे कांग्रेस के नेताओं को भी नेहरू-रिपोर्ट पूरी तरह से पसन्द नहीं थी। इन लोगों ने कांग्रेस के भीतर ही इंडिपेंडेन्स लीग नाम की एक संस्था का निर्माण किया था जो भारत में पूर्ण स्वराज की स्थापना करना चाहती थी। इन लोगों का कहना था कि कांग्रेस को डोमिनियन स्टेट्स नहीं स्वीकार करना चाहिए और अपना उद्देश्य पूर्ण स्वराज रखना चाहिए जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहे। इन लोगों ने १९२८ की कलकत्ता-कांग्रेस में नेहरू-रिपोर्ट का बहुत जोरदार विरोध किया। आखिर में गांधीजी के व्यक्तिगत प्रभाव से ये अपनी माँग कुछ दिनों तक कम करने के लिए तैयार हुए और जो समझौता हुआ उसके अनुसार यह तय हुआ कि अगर १६२९ के ३१ दिसम्बर तक सरकार नेहरू-रिपोर्ट को नहीं स्वीकार करे और भारत को डोमिनियन स्टेट्स नहीं प्रदान करे, तो कांग्रेस पूर्ण स्वराज के लिए आन्दोलन करेगी।

इंडिपेंडेन्स लीग ने पूर्ण स्वतत्रंता के पक्ष में अपना प्रचार जारी रखा। इसी बीच में बारदोली में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसानों का बहुत बड़ा सत्याग्रह हुआ और इसका प्रभाव समूचे देश पर पड़ा। इसी समय जून १९२९ में ब्रिटेन में लेबरपार्टी की सरकार कायम हुई। इससे भारतीयों की आशा और भी बढ़ गई, क्योंकि लोगों का खयाल था कि लेबरपार्टी भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं से सहानुभूति रखती थी। ३१ अक्टूबर १६२९ को वाइसराय लार्ड इरविन ने एक घोषणा भी की, जिसमें यह कहा गया कि ब्रिटिश सरकार यह मानती है कि १९१७ की मांटेग्यू की घोषणा का ही यह अर्थ होता है कि भारत में डोमिनियन स्टेट्स की स्थापना होनी चाहिए। यह भी कहा गया कि साइमन कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद भारतीय संविधान का मसविदा तैयारा करने के लिए ब्रिटिश और भारतीय प्रतिनिधियों का गोलमेज सम्मेलन बुलाय जायगा। तत्काल इस घोषणा का अच्छा असर पड़ा। लेकिन इसके तुरत बाद ही ब्रिटेन के प्रमुख समाचारपत्रों और राजनीतिक नेताओं ने जो विचार प्रकट किये उससे यह स्पष्ट हो गया कि इरविन की घोषणा का कोई खास महत्त्व नहीं

था और अभी डोमिनियन स्टेट्स के व्यवहार में लाये जाने की कोई आशा नहीं थी। इसी परिस्थिति में १९२९ के दिसम्बर महीने में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में हुआ। काँग्रेस के लिए अब कोई दूसरा रास्ता नहीं रह गया। इसलिए इसका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित किया गया। यह भी साफ कह दिया गया कि अब कांग्रेस के प्रस्तावित गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने से कोई लाभ नहीं होगा। उचित अवसर देखकर स्वाधीनता प्राप्ति के लिए सविनय अवज्ञा-आन्दोलन आरम्भ करने का भी निश्चय किया गया।

लाहौर-काँग्रेस के फैसले के अनुसार २६ जनवरी १९३० को समूचे देश में स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। इस दिन भारतीयों ने पूर्ण स्वाधीनता की माँग दुहराई और इसके लिए बड़ा-से-बड़ा त्याग करने की शपथ ली। गाँधीजी की प्रसिद्ध डंडीयात्रा के बाद अप्रैल १९३० से सविनय अवज्ञा-आन्दोलन शुरू हो गया। लोग जगह-जगह नमक बनाकर सरकारी कानून तोड़ने लगे। विदेशी कपड़ों और शराब की दूकानों पर पिकेटिंग होने लगी। कहीं-कहीं पर लगानबन्दी का आन्दोलन भी हुआ। इस आन्दोलन में भारत की स्त्रियों ने भी बड़ी तादाद में भाग लिया। सरहदी गाँधी अब्दुलगफ्फार खाँ के नेतृत्व में उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्त के पठानों ने भी बड़ी बहादुरी दिखलाई और बहुत भड़काये जाने पर भी अहिंसा नहीं छोड़ी। सरकार की दमननीति जोरों से चली। सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। करीब साठ हजार सत्याग्रही जेलों में डाल दिये गये। कई जगहों पर लाठियाँ और गोलियाँ भी चलीं। लेकिन आन्दोलन नहीं रुका।

गाँधी-इरविन-समझौता—गोलमेज सम्मेलन

इस बीच में १२ नवम्बर १९३० से लन्दन में पहला गोलमेज सम्मेलन शुरू हुआ और १९ जनवरी १९३१ तक चलता रहा। इसमें काँग्रेस के प्रतिनिधि नहीं गये थे। अन्त में सरकार ने देखा कि दमन करने से आन्दोलन रुकता नहीं है और बिना कांग्रेस से समझौता किये भारत में शान्ति भी नहीं स्थापित की जा सकती है। इसलिए सरकार की नीति में परिवर्तन हो गया। २५ जनवरी १९३१ को गाँधीजी और दूसरे सभी नेता जेल से रिहा कर दिये गए। तेज बहादुर सप्रू, एम० आर० जयकर और श्रीनिवासशास्त्री के उद्योग से गाँधीजी और इरविन

में बातचीत शुरू हुई। अन्त में दोनों में समझौता हो गया जिसका नाम गाँधी-इरविन-समझौता पड़ा। इस समझौते के अनुसार यह तय हुआ कि सरकार सभी आर्डिनेन्सों को वापस ले लेगी, सभी राजनीतिक कैदियों को रिहा कर देगी, स्वदेशी शान्तिमय पिकेटिंग या सत्याग्रह को जयाज मान लेगी और काँग्रेस सविनय-अवज्ञा, कानून तोड़ना और ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार स्थगित कर देगी और गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने के लिए अपना प्रतिनिधि भेजेगी।

कांग्रेस के तो कई नेता इस समझौते के खिलाफ थे; लेकिन महात्मा गाँधी के प्रभाव के कारण इसने गांधी-इरविन-समझौते को स्वीकार कर लिया और और सविनय अवज्ञा-आन्दोलन को स्थगित कर दिया। काँग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि होकर गाँधीजी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने के लिए लंदन गये। यह सम्मेलन १९३१ की सातवीं सितम्बर से शुरू होकर पहली दिसम्बर तक चलता रहा। लेकिन इससे कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला। ब्रिटेन में लेबरपार्टी का मंत्रिमंडल खतम हो चुका था और उसकी जगह पर राष्ट्रीय सरकार कायम हुई थी, जिसमें कंजर्वेटिव पार्टी का सबसे अधिक प्रभाव था। इस पार्टी के नेता भारत की राजनीतिक आकांक्षाओं से कोई विशेष सहानुभूति नहीं रखते थे और भारत की माँग को तुरत पूरा कर देने के लिए उत्सुक नहीं थे। साथ-ही-साथ मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों का रुख भी सहायक नहीं था और वे साम्प्रदायिक समस्या पर किसी भी उचित समझौते के लिए तैयार नहीं थे। ऐसी दशा में गाँधीजी इस गोलमेज सम्मेलन से खाली हाथ लौट आये।

पुनः सविनय अवज्ञा : पूना-पैक्ट

गाँधीजी जब लंदन से लौटकर आये तब देश की राजनीतिक अवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। गाँधी-इरविन समझौते के बाद भी सरकारी अफसरों के रुख में तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ था। मार्च १९३१ में गाँधीजी के विरोध के बावजूद भी भगत सिंह और उनके दो साथी राजगुरु और सुखदेव को एक अंग्रेज अफसर को मारने और कौंसिल में बम फेंकने के अपराध में फाँसी दे दी गई थी। इससे समूचे देश में बहुत उत्तेजना फैली। सरकार का दमन भी नहीं रुका। विशेषकर बंगाल, संयुक्तप्रांत और सीमाप्रान्त में सरकारी दमन जोरों पर चल रहा था। उस समय विलिंगडन भारत का वाइसराय था। गाँधीजी ने लन्दन से आने

पर उससे पत्र-व्यवहार किया, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। वाइसराय के इस रुख से फिर सविनय अवज्ञा-आन्दोलन शुरू हो गया। सभी नेता जेलों में बन्द कर दिये गये। यह आन्दोलन १९३० से भी बड़े पैमाने पर हुआ। इस बार सब मिलाकर एक लाख से अधिक आदमी जेल गये। यह आन्दोलन १९३२ से शुरू होकर १९३४ तक चलता रहा।

जब गाँधीजी सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में कैद होने के बाद जेल में थे, तभी अगस्त १९३२ में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मैकडोनल्ड ने नये संविधान में हरिजनों का प्रतिनिधित्व स्थिर करते हुए अपना निर्णय दिया जो 'कम्यु-नल एवार्ड' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका परिणाम यह होता कि हरिजन हिन्दू जाति से बिलकुल अलग हो जाते और इस तरह भारत में फूट का एक और कारण पैदा हो जाता। गाँधीजी ने इसके विरोध में जेल में ही आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। उनके इस अनशन को खतम करने के लिए समझौते की कोशिश शुरू हुई। अन्त में एक समझौता हुआ जिसे सभी ने स्वीकार कर लिया और गाँधीजी ने अपना अनशन तोड़ दिया। यह समझौता पूना-पैक्ट के नाम से विख्यात है। इसके मुताबिक हरिजनों को काफी जगहें मिलीं, लेकिन वे हिन्दू जाति के अंग बने रहे।

१९३५ का शासन-विधान

१९३२ के आखिर में तीसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ और इसने भारत के नये संविधान के सम्बन्ध में अपने सुझावों को ब्रिटिश सरकार के सामने रख दिया। मार्च १९३३ में सरकार ने एक 'श्वेतपत्र' प्रकाशित किया जिसमें इसके अपने सुझाव दिये गये थे। पार्लियामेंट के दोनों सदनों की एक संयुक्त कमिटी ने इन सुझावों पर विचार किया। इस संयुक्त कमिटी की रिपोर्ट के आधार पर एक बिल बना। यही बिल १९३५ ई० में गवर्मेंएट आफ इंडिया ऐक्ट के रूप में पास हुआ। यह बहुत लम्बा ऐक्ट था और इसके मुताबिक भारतीय शासन के सभी अंगों के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई थी। यहाँ पर पूरे ऐक्ट पर नहीं विचार करके, इसके सिर्फ उन्हीं भागों का जिक्र किया जायगा जिनसे बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

अबतक भारत का संविधान एकात्मक था। शासन के सुभीते के लिए देश

कई प्रान्तों में अवश्य बँटा हुआ था, और धीरे-धीरे इनके अधिकारों का क्षेत्र भी बढ़ता चला आ रहा था। लेकिन इनको कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं थे। सिद्धान्त में सभी अधिकार केन्द्रीय सरकार में केन्द्रित थे। अब १९३५ के ऐक्ट के मुताबिक यह निश्चय हुआ कि भारत में संघीय शासन कायम किया जाय। इसके लिए जरूरी था कि प्रान्तों को केन्द्र से स्वतंत्र अलग अधिकार दिये जायँ। इस लिए ब्रिटिश सम्राट् ने भारतीय शासन-सम्बन्धी सभी अधिकार ले लिये और इनको फिर से केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में बाँट दिया। इस बटवारे के लिए तीन तरह की सूचियाँ तैयार की गईं। केन्द्रीय सूची में सब मिलाकर ५९ विषय रखे गये। ये ऐसे विषय थे जिनका समूचे देश से सम्बन्ध था, जैसे सेना, रेल, तार, डाक, वैदेशिक नीति इत्यादि। इनके शासन का अधिकार केन्द्रीय सरकार को रहा। प्रान्तीय सरकार के भीतर प्रान्तीय सूची के विषय रखे गये। इनकी संख्या सब मिलाकर ५४ थी और इनमें ऐसे विषय थे, जिनका अलग-अलग प्रान्तों से सम्बन्ध था, जैसे—पुलिस, जेल, अस्पताल, शिक्षा, खेती इत्यादि। इसके अलावे एक तीसरी सूची ऐसे विषयों की बनाई गई जिनका आम तौर से प्रान्तों से ही सम्बन्ध था, लेकिन जिनका समूचे देश में एक तरह का रहना अच्छा था। इसका नाम कंकरेण्ट लिस्ट या समवर्ती सूची पड़ा। इस सूची में सब मिलाकर ३६ विषय थे और इनपर केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारों का अधिकार था। इसका अर्थ यह था कि ये विषय साधारणतः प्रान्तीय सरकार के ही मातहत रहते, लेकिन केन्द्रीय व्यवस्थापिका भी जब चाहे तब इनके सम्बन्ध में कानून बना सकती थी और तब केन्द्रीय कानून ही सब जगह माने जाते। अगर कभी ऐसे विषय प्रस्तुत हो जायँ जो इन तीनों सूचियों में किसी में दर्ज नहीं थे, तो उन पर गवर्नर जेनरल को अधिकार था और वह केन्द्रीय या प्रान्तीय जिस व्यवस्थापिका को उचित समझता उसे उस सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार दे सकता था। इस तरह अब प्रान्तीय सरकारें अपने अधिकारों के लिए केन्द्रीय सरकार की मर्जी पर नहीं निर्भर करती थीं, बल्कि केन्द्रीय सरकार की ही तरह अपने क्षेत्र में इनको भी स्वतंत्र अधिकार मिल गये थे।

संघीय शासन में एक संघीय न्यायालय की भी आवश्यकता पड़ती है।

जब संविधान के अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के अधिकारों का बँटवारा अलग-अलग कर दिया जाता है, तब ऐसी भी कोई संस्था चाहिए जो यह देखती रहे कि ये अपने-अपने दायरे के भीतर रहती हैं या नहीं। अगर कभी किसी प्रान्त या केन्द्र की सरकार को किसी दूसरी सरकार के खिलाफ कोई शिकायत हो और वह यह समझती हो कि उसके क्षेत्र में दखल दिया जा रहा है, तो संघीय न्यायालय में ही इस शिकायत की सुनवाई हो सकती है और इसपर फैसला दिया जा सकता है। इसलिए १९३५ के ऐक्ट ने भारत में एक फेडरलकोर्ट अर्थात् संघीय न्यायालय की भी व्यवस्था की। इसके एक मुख्य न्यायाधीश और अधिक से अधिक ६ और जज रह सकते थे। संविधान से सम्बन्ध रखनेवाले सभी झगड़ों का फैसला यहीं पर होना निश्चित हुआ। फेडरलकोर्ट के जज केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों से स्वतंत्र रहते थे, उनकी बहाली ब्रिटिश सम्राट् द्वारा होती थी और इनको बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी को था। पहली अक्टूबर १९३७ को दिल्ली में यह न्यायालय स्थापित भी हो गया।

अबतक शासन की दृष्टि से भारत दो अंगों में बँटा हुआ था—ब्रिटिश भारत के प्रान्त और देशी रियासतें। देशी रियासतें गवर्नर जेनरल के मातहत तो थीं, लेकिन भीतरी शासन में वे स्वतंत्र थीं और उसमें भारत सरकार किसी तरह भी हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। इस तरह उनकी अवस्था प्रान्तों से भिन्न थी। केन्द्रीय व्यवस्थापिका में भी उनके कोई प्रतिनिधि नहीं रहते थे। १९३५ के ऐक्ट ने इस स्थिति में भी परिवर्तन करने की व्यवस्था की। जो संघ या फेडरेशन बनने जा रहा था, उसमें देशी रियासतें भी शामिल होतीं। लेकिन संघ में शामिल होना उनकी इच्छा पर था। इसलिए १९३५ के ऐक्ट ने भारत में फेडरेशन कायम नहीं किया, बल्कि उन शर्तों को निश्चित कर दिया जिनके पूरा होने पर फेडरेशन स्थापित किया जा सकता था। जो देशी रियासत फेडरेशन में शामिल होने के लिए तैयार हो, उसे इसके लिए बनाये गये इन्स्ट्रुमेंट आफ ऐक्सेशन या प्रवेशपत्र पर दस्तखत करना और उसका सम्राट् द्वारा मंजूर किया जाना जरूरी था। इस प्रवेशपत्र में प्रत्येक देशी रियासत की तरफ से यह स्पष्ट किया जाना जरूरी था कि वह रियासत कहाँ तक और किन-किन बातों में संघ सरकार के अधीन रहने के लिए तैयार थी। यह कोशिश की जाती कि जहाँ तक हो सके, संघ में शामिल होनेवाली सभी रिया-

सतों के प्रवेशपत्र एक ही तरह के रहें। जब इतनी रियासतें संघ में शामिल होने के लिए तैयार होतीं, जिनकी जनसंख्या रियासतों की पूरी जनसंख्या की आधी थी और जिन्हें संघीय व्यवस्थापिका के ऊपरी सदन, कौंसिल आफ स्टेट, में ५२ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था, तब सम्राट् ब्रिटिश पार्लियामेंट के कहने पर फेडरेशन की स्थापना कर सकता। इस तरह भारत में फेडरेशन की स्थापना कब होगी, यह अनिश्चित छोड़ दिया गया और यह स्थापना कभी हुई भी नहीं।

इस ऐक्ट की दूसरी विशेषता यह थी कि इसने केन्द्रीय शासन में सबसे पहलेपहल उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया, हालाँ कि यह सीमित और कई तरह के प्रतिबन्धों से भरा हुआ उत्तरदायित्व था। प्रस्तावित संघ में कार्यकारिणी की व्यवस्था द्वैधशासन के सिद्धान्त के आधार पर की गई थी। केन्द्रीय विषयों को दो भागों में बाँटा गया था। इन विषयों को सुभीते के लिए संरक्षित और हस्तान्तरित कहा जा सकता है हालाँ कि ऐक्ट में इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया था। रक्षा, दूसरे देशों से सम्बन्ध, धार्मिक बातें और आदिम जातियों या ट्राइबल क्षेत्रों के निवासियों का शासन संरक्षित भाग में रखे गये। इनके शासन की पूरी जिम्मेदारी गवर्नर जेनरल पर थी। वह इस काम के लिए अधिक-से-अधिक तीन सलाहकार बहाल कर सकता था। ये सलाहकार गवर्नर जेनरल के प्रति ही उत्तरदायी रहते, इनपर केन्द्रीय व्यवस्थापिका को कोई अधिकार नहीं दिया गया। इन विषयों के अलावे संघीय सूची में जो विषय बचते थे, वे हस्तान्तरित भाग में रहे। इनके शासन में गवर्नर जेनरल को परामर्श और सहायता देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् रहती, जिसमें अधिक-से-अधिक दस मंत्री रह सकते थे। ये मंत्री व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों में से गवर्नर जेनरल द्वारा नियुक्त किये जाते और उसके (व्यवस्थापिका के) प्रति उत्तरदायी रहते। मंत्रियों के कार्यक्षेत्र के भीतर रहनेवाले विषयों के सम्बन्ध में भी, गवर्नर जेनरल को बहुत-से विशेषाधिकार दिये गये। ये विशेषाधिकार दो प्रकार के थे। कुछ बातों में गवर्नर जेनरल बिना मंत्रियों से राय लिये हुए भी काम कर सकता था। ऐक्ट के ६४ सेक्शनों या विभागों में उसको यह अधिकार दिया गया था। इसके अलावे कुछ ऐसी बातें थीं जिनपर वह मंत्रियों की राय तो लेता, लेकिन उस राय को मानना या नहीं मानना उसकी मर्जी पर था। इस अधिकार का जिक्र भी ऐक्ट के ३६ विभागों में किया गया था।

संघीय व्यवस्थापिका या विधानमंडल दो सदनों का होता। ऊपरवाले सदन को कौंसिल आफ स्टेट और नीचेवाले को हाउस आफ एसेम्बली का नाम दिया गया। हाउस आफ एसेम्बली में ब्रिटिश भारत के २५० और देशी रियासतों के अधिक-से-अधिक १२५ प्रतिनिधि रहते। इनका चुनाव अप्रत्यक्ष रखा गया था। ये प्रतिनिधि प्रान्तीय एसेम्बलियों के मेम्बरों द्वारा, पृथक् निर्वाचनप्रणाली के अनुसार चुने जाते। कौंसिल आफ स्टेट में ब्रिटिश भारत के १५६ और देशी रियासतों के अधिक-से-अधिक १०४ प्रतिनिधि रहते। ये पृथक् निर्वाचनप्रणाली के अनुसार बहुत अधिक सम्पत्तिवाले मतदाताओं द्वारा चुने जाते। दोनों सदनों में देशी रियासतों से आनेवाले प्रतिनिधि उनके शासकों द्वारा नामजद किये जाते। एसेम्बली की अवधि पाँच बरस थी, हालाँ कि गवर्नर जेनरल इसे इसके पहले भी भंग कर सकता था। कौंसिल आफ स्टेट स्थायी संस्था थी। इसके एक तिहाई सदस्य हर तीसरे साल निकल आते और उनकी जगह पर नये मेम्बर चुन लिये जाते। दोनों सदनों के अधिकार करीब-करीब सभी बातों में समान थे। संघीय विधानमंडल को समूचे ब्रिटिश भारत और संघ में शामिल हुए रियासतों के लिए कानून बनाने का अधिकार था। लेकिन इसपर कई तरह के प्रतिबन्ध थे। कई ऐसे विषय थे, जिनके सम्बन्ध में बिना गवर्नर जेनरल की अनुमति के कोई बिल नहीं पेश हो सकता था। इसके पास किये हुए सभी बिलों के ऐक्ट होने के लिए गवर्नर जेनरल की स्वीकृति का होना जरूरी था। गवर्नर जेनरल बिना इसकी राय के भी आर्डिनेन्स निकाल सकता और ऐक्ट तक बना सकता था। इसके सामने हर साल सरकार का बजट रखा जाता। लेकिन सरकारी खर्च के करीब अस्सी प्रतिशत भाग पर इसका वोट नहीं लिया जाता।

१९३५ के ऐक्ट ने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रान्तीय शासन के सम्बन्ध में किया। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधार के बाद प्रान्तों में जो द्वैध शासन कायम हुआ था, वह अब खतम कर दिया गया और उसकी जगह पूर्ण उत्तर-दायित्व का सिद्धान्त स्वीकार किया गया। अब प्रत्येक प्रान्त में एक मंत्रिमंडल रहने लगा। मंत्रिमंडल के सदस्य प्रान्तीय विधानमंडल के सदस्य होते थे और उसके प्रति उत्तरदायी रहते थे। इसी मंत्रिमंडल के हाथ में प्रान्त का शासन रहता था। केन्द्रीय सरकार से भी यह मंत्रिमंडल स्वतंत्र था, क्योंकि केंद्रीय

और प्रान्तीय सरकारों के अधिकारक्षेत्र एक दूसरे से अलग कर दिये गये और प्रान्तीय सूची में दिये गये विषयों के शासन में केन्द्र से कोई हस्तक्षेप नहीं हो सकता था। यह व्यवस्था प्रान्तीय स्वराज के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन इसके साथ-ही-साथ गवर्नर को बहुत व्यापक अधिकार दिये गये। केन्द्र में गवर्नर जेनरल की तरह उसके विशेषाधिकार दो तरह के थे। कुछ बातों में वह, बिना मंत्रियों से परामर्श लिये ही सिर्फ अपने फैसले के मुताबिक काम कर सकता था। इस तरह के विषयों की संख्या सब मिलाकर ३२ से कम नहीं थी। दूसरे तरह के उसके अधिकार उन विषयों के सम्बन्ध में थे, जिनपर वह मंत्रियों से परामर्श तो लेता, लेकिन उसे मानने के लिए बाध्य नहीं था। इस तरह के विषयों की संख्या भी कम-से-कम सोलह जरूर थी। इन दोनों तरह के विशेषाधिकारों के भीतर प्रान्तीय शासनसम्बन्धी करीब-करीब सभी महत्त्वपूर्ण विषय आ जाते थे।

प्रान्तीय विधानमंडल में पहलेपहल दो सदनों की प्रथा चलाई गई। बम्बई, मद्रास, बंगाल, बिहार, आसाम और संयुक्तप्रान्त में दो सदनों का विधान-मंडल बना। इसमें ऊपर के सदन का नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल और नीचे का लेजिस्लेटिव एसेम्बली पड़ा। मध्यप्रदेश, उड़ीसा, सिन्ध, पञ्जाब और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त-प्रान्त में एक ही सदन का विधानमंडल रहा, जिसका नाम लेजिस्लेटिव एसेम्बली पड़ा। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के विधानमंडलों के सदस्यों की संख्या अलग-अलग थी। इनका चुनाव सम्पत्तिवाले मतदाताओं द्वारा पृथक् निर्वाचनप्रणाली के अनुसार होता था। एसेम्बली की अवधि पाँच साल की थी। कौंसिल स्थायी संस्था थी, जिसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक तीसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते थे और उनकी जगह पर नये मेम्बर चुन लिये जाते थे। सब मिलाकर प्रान्त की पूरी जनसंख्या के करीब दस प्रतिशत लोगों को मतदान का अधिकार मिला। कौंसिल और एसेम्बली दोनों के अधिकार समान थे। लेकिन बजट पर पूरा अधिकार सिर्फ एसेम्बली को ही था। विधानमंडल को प्रान्त के लिए सब तरह का कानून बनाने, बजट पास करने और मंत्रियों के काम की देखरेख करते रहने का अधिकार था। लेकिन इन अधिकारों पर कई तरह के प्रतिबन्ध थे। विधानमंडल के पास किये हुए सभी बिल पर गवर्नर की स्वीकृति का होना जरूरी था, और गवर्नर अपनी स्वीकृति देने से इनकार कर किसी भी बिल को ऐक्ट बनने से रोक सकता

था। वह बिना विधानमंडल की राय लिये हुए आर्डिनेन्स या अध्यादेश निकाल सकता और ऐक्ट भी बना सकता था। बजट के किसी माँग के एसेम्बली द्वारा नामंजूर किये जाने पर वह अपने आदेश से उस माँग को पूरा कर सकता था। अगर गवर्नर को विश्वास हो जाय कि ऐसी परिस्थिति आ गई है जब संविधान के मुताबिक शासन चलाना सम्भव नहीं है, तब वह एक घोषणा निकालकर संविधान को स्थगित कर सकता और प्रान्तीय शासनसम्बन्धी सभी अधिकार अपने हाथ में ले सकता था।

भारतीय शासन के और क्षेत्रों में भी १९३५ के ऐक्ट से कुछ परिवर्तन हुए, लेकिन वे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं थे। भारतमंत्री की कौंसिल खतम कर दी गई और उसकी जगह उसके सलाहकार या एडवाइजर बहाल होने लगे। इनकी संख्या कम-से-कम तीन और अधिक से-अधिक छ हो सकती थी। १९१९ के ऐक्ट ने ही लंदन में एक भारतीय हाई कमिश्नर की नियुक्ति की व्यावस्था की थी। यह पद १९३५ के बाद भी ज्यों-का-त्यों बना रहा। आई. सी. एस. इत्यादि बड़ी-बड़ी नौकरियों की नियुक्ति और नियंत्रण का अधिकार अभी भी भारतमंत्री के हाथों में ही रहा।

प्रान्तीय स्वराज का कार्यान्वित रूप

१९३५ के शासनविधान के अनुसार जिस फेडरेशन की स्थापना की व्यवस्था की गई थी, वह भारत में नहीं लागू हो सकी। भारतीय लोकमत इसके विरुद्ध था। भारतीय, फेडरेशन या संघीय शासन के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं थे। लेकिन १९३५ के ऐक्ट में संघीय कार्यपालिका और विधान-मंडल के सम्बन्ध में जो नियम थे, वे किसी को पसन्द नहीं थे। उनके मुताबिक संघीय विधान-मंडल के करीब एक तिहाई सदस्य देशी रियासतों के शासकों द्वारा नामजद होते। ये स्वभावतः जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के रास्ते में रोड़ा अँटकाते। कौंसिल आफ स्टेट के चुनाव में वोट देने का अधिकार इतने धनी व्यक्तियों तक सीमित था, कि इसके तो चुने हुए सदस्य भी प्रगति के रास्ते में बाधक ही होते। गवर्नर जेनरल के अधिकार इतने व्यापक थे, कि उनके रहते उत्तरदायी शासन कभी भी नहीं कायम किया जा सकता। द्वैधशासन प्रान्तों में पहले ही विफल हो चुका था, अब केन्द्र में उसके सफल होने की कोई सम्भावना नहीं थी। भारतीय विरुद्ध थे ही,

आगे चलकर १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया और सरकार ने भी तत्काल फेडरेशन की योजना को लागू करने की कोशिश छोड़ दी। ऐसी दशा में १९३५ के बाद भी केन्द्रीय शासन का स्वरूप १९१९ की व्यवस्था के अनुसार ही रहा।

प्रान्तीय स्वराज की योजना भी भारत के राष्ट्रीय नेताओं को पसन्द नहीं थी। बाहर से तो ऐसा लगता था कि प्रान्तीय शासन पर लोकप्रिय मंत्रियों का पूरा अधिकार रहेगा और प्रान्तीय क्षेत्र में उत्तरदायी शासन स्थापित हो जायगा। लेकिन ऐक्ट में प्रान्तीय स्वराज पर भी नाना प्रकार के प्रतिबन्ध थे। गवर्नर के विशेषाधिकार बहुत व्यापक थे, और उसके सामने मंत्रियों के अधिकार न्यून हो जाते थे। इसके अलावे आई. सी. एस. इत्यादि बड़े-बड़े अफसरों पर मंत्रियों को कोई अधिकार नहीं दिया गया। अभी भी इनके भाग्य का मालिक भारत-मंत्री ही रहा। इन दोषों के बावजूद भी कांग्रेस ने प्रान्तीय एसेम्बलियों के चुनाव में हिस्सा लिया। ११ में से ६ प्रान्तों में कॉंग्रेस के सदस्यों को बहुमत प्राप्त हुआ। अब मंत्रि-पद ग्रहण का प्रश्न सामने आया। इस प्रश्न पर कांग्रेस के नेताओं में मतभेद था और कुछ लोग इसके एकदम विरुद्ध थे। १९३४ ई० में कांग्रेस के भीतर नये और समाजवादी विचार के लोगों का एक दल, कांग्रेस-समाजवादी पार्टी के नाम से संगठित हुआ था। इस पार्टी के नेता भी मंत्रि-पद ग्रहण के विरुद्ध बहुत जोरों से प्रचार कर रहे थे। अन्त में कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि अगर सरकार की तरफ से यह आश्वासन दिया जाय कि गवर्नरों की तरफ से उनके विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं किया जायगा, तो कांग्रेस-जन पद ग्रहण कर लेंगे। शुरू में गवर्नरों ने इस तरह का आश्वासन देने से इनकार कर दिया। इसलिए कांग्रेस ने पदग्रहण करना नहीं स्वीकार किया। गवर्नरों ने एसेम्बलियों के अल्पसंख्यक दलों के नेताओं को मंत्री बनाने पर राजी किया। लेकिन इनसे काम चलनेवाला नहीं था। आखिर जुलाई १९३७ में गवर्नर जेनरल ने एक लम्बा वक्तव्य निकाला और यह आश्वासन दिया कि रोजमर्रे के कामों में गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं करेंगे। इसके बाद कॉंग्रेस ने पदग्रहण करना स्वीकार कर लिया और छः प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रि-मंडल कायम हुए। ये प्रान्त थे—बम्बई, मद्रास, मध्य-प्रान्त, संयुक्त-

प्रान्त, बिहार, और उड़ीसा। आगे चलकर आसाम और उत्तर-पश्चिम-सीमा-प्रान्त में भी कांग्रेसी मंत्रिमंडल कायम हुए। बाकी तीन प्रान्तों—पञ्जाब, सिन्ध और बंगाल—में गैर कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे।

१९३७ से १९३९ तक प्रान्तीय शासन १९३५ के संविधान के अनुसार होता रहा। १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध के छिड़ जाने से परिस्थिति बदल गई, कांग्रेस-मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया और इन प्रान्तों में गवर्नर अपने एडवाइजरों या सलाहकारों की मदद से शासन करने लगे। लेकिन बाकी तीन प्रान्तों में उत्तरदायी शासन चलता रहा। इन दो वर्षों के शासन में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों और गवर्नरों का सम्बन्ध सब मिलाकर अच्छा ही रहा। सांविधानिक संकट के अवसर अवश्य आये। एक दफे फरवरी १९३८ में संयुक्तप्रान्त और बिहार के मंत्रिमंडलों को राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के प्रश्न पर इस्तीफा दे देना पड़ा। लेकिन तुरत यह संकट टल गया, गवर्नरों ने अपना विरोध वापस ले लिया और ये मंत्रिमंडल पुनः अपने काम पर लौट गये। इसी तरह मध्यप्रान्त में तीन मंत्रियों के गवर्नर द्वारा बर्खास्त किये जाने पर और उड़ीसा में एक अधीनस्थ अफसर को स्थानापन्न गवर्नर बनाने के प्रश्न पर सांविधानिक संकट उपस्थित होने की आशंका हुई। लेकिन ये भी टल गये और मंत्रिमंडलों का काम पूर्ववत् चलता रहा। गवर्नरों ने आम तौर पर अपने विशेषाधिकारों के प्रयोग में जिद्द नहीं दिखलाई, और मंत्रियों के काम में बाधा उपस्थित करने की उतनी कोशिश नहीं की जितनी की आशंका थी।

गैर-कांग्रेसी प्रान्तों की बात दूसरी थी। उन प्रान्तों की एसेम्बलियों में कांग्रेस की तरह किसी एक मजबूत और सुसंगठित दल का बहुमत नहीं था। कई छोटे-छोटे दल थे और उन्हीं के नेताओं को मिलाकर संयुक्त मंत्रिमंडल बनते थे। इसलिए वहाँ गवर्नरों का शासन के कामों पर अधिक अधिकार रहता था। सिन्ध और बंगाल में तो कभी-कभी मंत्रिमंडलों के निर्माण में भी गवर्नरों का प्रभाव पड़ता था। एक बार सिन्ध के मुख्यमंत्री अल्लाबक्श को गवर्नर ने ब्रिटिश उपाधियों को त्यागने के कारण बर्खास्त कर दिया। इसी तरह बंगाल में भी एक बार गवर्नर ने वहाँ के मुख्य मंत्री फजलुल हक को इस्तीफा देने के लिए बाध्य किया।

अध्याय ५

द्वितीय विश्वयुद्ध और भारतीय स्वाधीनता

(१९३९-१९४७)

युद्ध का आरम्भ और सांविधानिक गतिरोध

तीन सितम्बर १९३९ को ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। उसी दिन भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने भारत के ब्रिटेन की तरफ से युद्ध में शामिल होने की भी घोषणा कर दी। इस सम्बन्ध में भारत में किसी से राय नहीं ली गई—न राजनीतिक नेताओं से, न केन्द्रीय एसेम्बली से, और न प्रान्तीय मंत्रिमंडलों से। इससे भारत के राष्ट्रीय आत्मसम्मान को बहुत धक्का लगा। इसके अलावे यह भी स्पष्ट नहीं था कि ब्रिटेन किस उद्देश्य से युद्ध में शामिल हुआ था। इसलिए युद्ध आरम्भ होने के तुरत ही बाद परिस्थिति पर विचार करने के लिए वर्धा में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक हुई। चौदह सितम्बर को इसकी तरफ से एक वक्तव्य प्रकाशित किया गया। इसमें यह साफ तौर पर कहा गया कि भारत को नाजीवाद से कोई सहानुभूति नहीं है। लेकिन कांग्रेस यह जानना चाहती थी कि ब्रिटेन युद्ध में किस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शामिल हुआ था। अगर इसका उद्देश्य, लोकतंत्र की रक्षा करना था, तो भारत को इसका सबूत मिलना चाहिए और भारत को एक स्वतंत्र देश मानना चाहिए। और अगर ब्रिटेन का उद्देश्य अपने साम्राज्य की रक्षा करना था, तो कांग्रेस की राय में भारत को इस युद्ध से कोई मतलब नहीं था। लेकिन ब्रिटेन की तरफ से इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। भारतीय स्वतंत्रता के सम्बन्ध में डोमिनियन स्टेटस के उद्देश्य को दोहराया गया। तत्काल वाइसराय की एक्जिक्युटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाने और उसमें भारतीयों को अधिक स्थान देने के अतिरिक्त और कुछ करने के लिए ब्रिटेन तैयार नहीं था। ऐसी हालत में नवम्बर १९३९ में सभी कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने अपने पद से इस्तीफा दे

दिया और इन प्रान्तों का शासन गवर्नर अपने मन से करने लगे। इस तरह भारत के अधिकांश प्रान्तों में सांविधानिक गतिरोध उपस्थित हो गया।

काँग्रेसी मंत्रिमंडलों के त्यागपत्र दे देने के बाद भी काँग्रेस कोई ऐसा काम नहीं करना चाहती थी, जिससे युद्ध के बीच में ब्रिटेन को किसी बड़े संकट का सामना करना पड़े। सात जुलाई १९४० को काँग्रेस-कार्य-समिति ने कुछ शर्तों पर वैधानिक गतिरोध खतम करने और युद्ध में सहयोग देने का भी वचन दिया। ये शर्तें थीं कि भारत को पूर्ण स्वतंत्र घोषित कर दिया जाय और केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाय। लेकिन ब्रिटिश सरकार इसके लिए तैयार नहीं थी। आठ अगस्त १९४० को वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने एक वक्तव्य निकाला जिसमें भारतीयों की माँग के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति स्पष्ट की गई। यही आगे चलकर 'अगस्त आफर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके अनुसार यह मान लिया गया कि भारत का अगला संविधान भारतीय ही बनावेंगे। लेकिन इसके साथ दो शर्तें रखी गईं। पहली बात यह थी कि अल्पसंख्यकों को यह आश्वासन दिया गया कि ऐसी किसी भी शासनव्यवस्था के हाथ में सत्ता नहीं दी जायगी, जो भारतीय राष्ट्रीय जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगों को नामञ्जूर होगा। साथ-साथ यह भी कहा गया कि उस समय जब सभी युद्ध में लगे हुए थे, संविधान-सम्बन्धी समस्याओं को हल करने का उचित अवसर नहीं था, यह तो युद्ध के बाद ही हो सकता था। इस बीच में वाइसराय की एक्जिक्युटिव कौंसिल में भारतीय नेताओं का सहयोग प्राप्त किया जा सकता था। इस अगस्त आफर से काँग्रेस को तनिक भी सन्तोष नहीं हुआ। महात्मा गाँधी के शब्दों में इससे ब्रिटेन और भारत के बीच की खाई और भी चौड़ी हो गई।

साम्प्रदायिक समस्या भी दिनोंदिन पेचीदी होती जा रही थी। शुरू से लेकर अन्ततक कांग्रेस में बहुत-से मुसलमान रहे और काँग्रेस सभी भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती रही। लेकिन अंग्रेज अफसरों की कोशिश से मुसलमानों में साम्प्रदायिक आधार पर काम करने के लिए १९०६ ई० में ही मुस्लिम लीग की स्थापना हो चुकी थी। १९२१ में खिलाफत के प्रश्न के चलते कांग्रेस के असहयोग-आन्दोलन में भी मुसलमानों ने अधिक-से-अधिक संख्या में भाग लिया था। लेकिन इसके बाद धीरे-धीरे मुस्लिम लीग कांग्रेस से

दूर होती गई। सन् १९३४ ई० से लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना हो गए थे। शुरू से ही जिन्ना मुस्लिम लीग को काँग्रेस के खिलाफ उभारते रहे। वे बराबर इस बात पर जोर देते थे कि मुस्लिम लीग ही भारत के सभी मुसलमानों की तरफ से बोल सकती है, काँग्रेस तो हिन्दुओं की संस्था है। काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों के त्यागपत्र दे देने के बाद उनके आदेश से मुस्लिम लीग ने खुशी में मुक्ति दिवस मनाया। मार्च १९४० में लाहौर में लीग के वार्षिक अधिवेशन में मुस्लिम लीग की तरफ से यह माँग रखी गई कि जिन प्रान्तों में मुसलमानों की संख्या अधिक है, उनको मिलाकर पाकिस्तान नामक एक अलग देश बनना चाहिए। कांग्रेस भारत का विभाजन करने के लिए तैयार नहीं थी। लेकिन ब्रिटिश सरकार बराबर इस बात पर जोर देती थी कि वह ऐसा कोई परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं थी जो कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों को मन्जूर नहीं हो। और इन दोनों के बीच समझौता होना बहुत मुश्किल था। इस तरह भारत की राष्ट्रीय आकांक्षा के रास्ते में एक नई रुकावट आ खड़ी हुई।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

इधर देश की अवस्था दिनोंदिन खराब होती चली जा रही थी। कांग्रेस के कई नेता बारी-बारी से गिरफ्तार किए जा रहे थे। लोगों का असन्तोष बढ़ता जा रहा था और भारतीय अधीर हो रहे थे। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस चुपचाप नहीं बैठ सकती थी। आखिर में अक्टूबर १९४० में इसने फिर सत्याग्रह शुरू कर दिया। लेकिन यह सत्याग्रह पहले की तरह नहीं था। कांग्रेस के नेता अभी भी कोई ऐसा काम नहीं करना चाहते थे जिससे युद्ध के बीच में ब्रिटेन की परेशानी बढ़े। लेकिन वे अपना विरोध भी सामने रख देना चाहते थे। इस लिए पहले की तरह इस बार लोगों ने सैकड़ों, हजारों की संख्या में कानून तोड़कर कोई जन-आन्दोलन नहीं खड़ा किया। चुने हुए लोगों ने एक-एक करके युद्ध के खिलाफ भाषण देकर या नारा लगाकर सत्याग्रह करना शुरू किया। यह नैतिक विरोध का रास्ता था। यह आन्दोलन करीब एक साल तक चलता रहा और इसके फलस्वरूप पचीस से तीस हजार के भीतर लोग कैद किये गये। लेकिन इस नैतिक विरोध से ब्रिटिश सरकार की नीति में तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ।

क्रिप्स-योजना

इधर युद्ध की हालत दिनोंदिन गम्भीर होती जा रही थी। १९४२ के शुरू में जापान की लगातार विजय हुई और सिंगापुर, बर्मा इत्यादि पर उसका अधिकार हो गया। ऐसी स्थिति में भारत पर भी जापानी आक्रमण का खतरा उपस्थित हो गया। कॉंग्रेस के नेता चाहते थे कि भारत में ऐसी परिस्थिति पैदा की जाय जिसमें मौका पड़ने पर डटकर जापान का मुकाबला किया जा सके। लेकिन यह तभी सम्भव था जब भारत को स्वतंत्र घोषित किया जाता और भारतीय शासन यहाँ के नेताओं के हाथ में सौंप दिया जाता। जापान की विजय से ब्रिटिश सरकार की नीति पर भी प्रभाव पड़ा और भारतीयों से समझौता करने की कोशिश शुरू की गई। ११ मार्च १९४२ को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने पार्लियामेंट में घोषणा की कि ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के एक प्रमुख सदस्य सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भारतीय संविधान के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार का सुझाव लेकर भारत जायेंगे और स्वयं भारतीय नेताओं से बातचीत कर कोई हल निकालने की कोशिश करेंगे। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स २२ मार्च १९४२ को भारत पधारे और १३ अप्रैल को यहाँ से विदा हुए। भारत के सम्बन्ध में सर स्टैफोर्ड अपने साथ जो योजना ले आये थे, उसकी मुख्य बातें निम्नलिखित थीं—

ब्रिटेन का उद्देश्य भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के और देशों की तरह एक स्वतंत्र डोमिनियन बनाना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए युद्ध के अन्त होने पर भारत के लिए संविधान बनाने के लिए निर्वाचित परिषद् की स्थापना की जायगी। इस संविधाननिर्मात्री परिषद् में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के भाग लेने की भी व्यवस्था की जायगी। दो शर्तों के साथ ब्रिटेन इस परिषद् द्वारा तैयार किये हुए संविधान को मान लेगा। पहली शर्त यह थी कि प्रत्येक प्रान्त को इस संविधान को मानने से इन्कार करने का अधिकार रहेगा और वह प्रान्त चाहे वर्तमान व्यवस्था को जारी रखेगा या अपने लिए अलग संविधान बनावेगा। हाँ, इसका प्रबन्ध रहेगा कि अगर आगे चलकर वह प्रान्त चाहे तो फिर भारतीय संघ में शामिल हो सके। इसी तरह एक देशी रियासत को भी भारतीय संघ से अलग रहने का अधिकार रहेगा। दूसरी शर्त थी कि ब्रिटेन और संविधाननिर्मात्री परिषद् के बीच एक सन्धि होगी। इस सन्धि में वे सब बातें रहेंगी, जो सत्ता के

हस्तान्तरित किये जाने से पैदा होंगी। इसके अतिरिक्त इस सन्धि में अल्प-संख्यकों के अधिकारों की रक्षा की भी व्यवस्था रहेगी। लेकिन ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल के दूसरे सदस्यों के साथ उसका क्या सम्बन्ध होगा, इसे निर्णय करने का भारतीय संघ को पूरा अधिकार रहेगा और इस सन्धि के द्वारा उसके इस अधिकार पर कोई नियंत्रण नहीं रखा जायगा। जबतक प्रमुख भारतीय नेता युद्ध के अन्त होने के पहले आपस में समझौता करके कोई दूसरी व्यवस्था न बना लें, संविधान-निर्मात्री परिषद् का संगठन इस तरह से होगा—युद्ध के अन्त के बाद प्रान्तों में नया चुनाव होगा। इस नये चुनाव के नतीजे मालूम होने के बाद सभी प्रान्तीय विधानमंडलों की निचली सभाएँ अनुपातीय प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार संविधान परिषद के सदस्यों को चुनेंगी। देशी रियासतों को भी अपना प्रतिनिधि नियुक्त करने के लिए आमंत्रित किया जायगा। जबतक युद्ध चलता रहे और जबतक नया संविधान तैयार नहीं हो जाय, तबतक भारत की रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार पर ही रहेगा, लेकिन भारतीय नैतिक, सैनिक तथा अन्य साधनों को अच्छी तरह से संगठित करने का भार भारतीय जनता के साथ भारत-सरकार पर रहेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार भारत के प्रमुख नेताओं को अपने देश, राष्ट्र-मंडल और संयुक्त राष्ट्रों के कामों में परामर्श देने और भाग लेने के लिए आमंत्रित करती है।

इस योजना के आधार पर क्रिप्स ने भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं से बातचीत भी की। काँग्रेस को यह योजना पसन्द नहीं थी। इसके अनुसार प्रत्येक प्रान्त और देशी रियासत को भारतीय संघ से अलग रहने का अधिकार दिया गया था। इसका परिणाम यह भी हो सकता था कि भारत के दो क्या, अनगिनत टुकड़े हो जाते। इसके अलावे संविधानपरिषद् के निर्माण के सम्बन्ध में जो व्यवस्था थी, वह भी बहुत दोषपूर्ण थी, क्योंकि इसके अनुसार देशी रियासतों के प्रतिनिधि वहाँ की जनता द्वारा चुने नहीं जाते, बल्कि शासकों द्वारा नामजद होते। लेकिन यह सब तो भविष्य की बात थी। काँग्रेस के नेता जापान के खिलाफ भारत की रक्षा करने और युद्ध में उचित हिस्सा लेने के लिए इतने उत्सुक थे कि वे भविष्य की उतनी परवाह नहीं करते थे, जितनी कि वर्तमान की। उनकी दृष्टि में असल महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि तत्काल भारतीयों की

माँगें कहाँ तक मंजूर होती हैं। वे सब से अधिक दो बातों पर जोर देते थे। फौजी कार्रवाइयों की देखरेख के लिए ब्रिटिश सेनापति रहे, लेकिन एक भारतीय रक्षामंत्री भी रहे। दूसरी बात यह कि केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना हो, वाइसराय अपनी एक्जिक्युटिव कौंसिल के साथ उसी तरह का व्यवहार रखे, जिस तरह का व्यवहार ब्रिटेन का राजा वहाँ के मंत्रिमंडल के साथ रखता था। ब्रिटिश सरकार इन दोनों में से किसी माँग को मानने के लिए तैयार नहीं थी। ऐसी दशा में काँग्रेस ने क्रिप्स-योजना को मानने से अस्वीकार कर दिया। मुस्लिम लीग और दूसरे दलों ने भी भिन्न-भिन्न कारणों को दिखलाकर ऐसा ही किया। ब्रिटिश सरकार और भारत में कोई समझौता नहीं हो सका और क्रिप्स वापस चले गये।

अगस्त-क्रान्ति

क्रिप्स-मिशन की असफलता के बाद भारत में बड़ी निराशापूर्ण परिस्थिति पैदा हो गई। जब युद्ध भारत के इतना पास आ गया था और जापान की जीत-पर-जीत हो रही थी, तब भी ब्रिटिश सरकार भारतीयों की माँग को स्वीकार करने के लिए नहीं तैयार थी। यह भी स्पष्ट था कि जबतक भारत अंग्रेजों के अधीन था, तबतक भारतीयों में जापान के खिलाफ अपने देश की रक्षा के लिए लड़ने के लिए कोई उत्साह नहीं पैदा किया जा सकता था। इस समय गाँधीजी ने रास्ता दिखलाया। क्रिप्स के चले जाने के बाद उन्होंने 'भारत छोड़ो' का नया नारा शुरू किया। उनका कहना था कि अंग्रेज लोग अब भारत से चले जायँ। तभी भारत की सभी समस्याएँ हल की जा सकती थीं। १४ जुलाई १९४२ को कांग्रेसकार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास कर ब्रिटेन को चेतावनी दी कि अगर 'भारत छोड़ो' माँग पर ध्यान नहीं दिया गया, तो कांग्रेस फिर महात्मा गांधी के नेतृत्व में संघर्ष आरम्भ करने के लिए बाध्य होगी। आठ अगस्त १९४२ को बम्बई में अखिलभारतीय काँग्रेस-कमिटी ने भी इसी आशय का प्रस्ताव पास किया। इसमें कहा गया कि भारत और संयुक्त राष्ट्र दोनों के हित में यही था कि भारत स्वतंत्र कर दिया जाय और अंग्रेज भारतीय शासन-सम्बन्धी सभी अधिकार भारतीयों को सौंपकर यहाँ से चले जायँ और अगर भारतीयों

की यह माँग नहीं पूरी हो, तब महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक जनसंघर्ष शुरू किया जाय।

इस प्रस्ताव के पास होने के बाद भी गांधीजी को उम्मीद थी कि ब्रिटिश सरकार से कोई समझौता हो जायगा, और आन्दोलन आवश्यक नहीं होगा। इसी समझौते के लिए वे दूसरे दिन वाइसराय के पास पत्र भी भेजनेवाले थे। लेकिन सरकार ने इसका मौका नहीं दिया। ९ अगस्त को भोर होने के पहले ही महात्मा गाँधी और काँग्रेस के दूसरे बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये। समूचे देश में गिरफ्तारियाँ होने लगीं। सरकार के इस काम का बहुत बुरा असर हुआ, और देश में क्रान्ति शुरू हो गई। सरकारी आँकड़ों के अनुसार २५० रेलवे स्टेशनों और ५०० डाकखानों को नुकसान पहुँचाया गया या नष्ट किया गया। १५० से अधिक थानों पर आक्रमण हुए। पुलिस-विभाग के तीस कर्मचारी और कुछ अन्य सरकारी अफसर और सैनिक मारे गये। करीब ९०० की संख्या में साधारण व्यक्ति मारे गये। बिहार, बलिया, गाजीपुर, सूरत, सतारा इत्यादि जगहों से तो अंग्रेजी राज कुछ दिनों के लिए बिलकुल खतम-सा हो गया।

सरकार ने इसका बदला लेने में कुछ उठा नहीं रखा और दमन-नीति का पूरा प्रयोग किया। फरवरी १९४३ में गाँधीजी ने जेल में २१ दिनों के लिए अनशन आरम्भ कर दिया। गांधीजी की उम्र काफी हो चुकी थी और एकाध दिन तो ऐसा मालूम हुआ कि अब उनकी मृत्यु हो जायगी। सर तेजबहादुर संप्रू इत्यादि नरमदल के नेताओं ने वाइसराय से गाँधीजी को रिहा करने की अपील की। वाइसराय की कौंसिल के तीन भारतीय मेम्बरों—श्री एम्. एस्. अणे, एच्. पी. मोदी और एन्. आर. सरकार ने इस सम्बन्ध में सरकारी नीति के विरोध में अपने पद से इस्तीफा भी दे दिया। लेकिन सरकार ने अपने रुख में कोई परिवर्तन नहीं किया। खैर, देश का भाग्य अच्छा था, गांधीजी मरे नहीं और २१ दिन पूरे हो गये।

लेकिन सरकार की दमन-नीति से अगस्त-क्रान्ति खतम नहीं हुई। ऊपर से तो शान्ति कायम हो गई, लेकिन क्रान्ति की लपटें अभी जीवित थीं। श्रीजय-प्रकाशनारायण हजारीबाग-जेल को फाँदकर निकल आये और क्रान्तिकारियों को

संगठित करने में लग गये। आजादी के सैनिकों के नाम से समय-समय पर उनके सन्देश भी प्रकाशित होते रहे। इससे देश में क्रान्तिकारी भावना मरने नहीं पाई और लोगों को निराशा में एक रास्ता दिखाई पड़ा। जयप्रकाशनारायण के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों का एक कार्यक्रम तैयार हो गया, आजादी की लड़ाई के लिए एक सेना का संगठन होने लगा, जिसका नाम 'आजाद दस्ता' पड़ा और लोग लड़ाई फिर से शुरू करने के लिए उपयुक्त अवसर की बाट देखने लगे।

वैवेल-योजना

बीमारी के कारण गाँधीजी ६ मई १९४४ को जेल से रिहा हुए। लेकिन काँग्रेस के और नेता अभी जेल में ही थे। इसके पहले ही लिनलिथगो चले गए थे और अक्टूबर १९४३ से लार्ड वैवेल भारत के वाइसराय के पद पर थे। गांधीजी ने वैवेल से पत्रव्यवहार किया, जिसमें उन्होंने काँग्रेसकार्यसमिति के सदस्यों से मिलने की इच्छा जाहिर की। लेकिन उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी गई। गाँधीजी लार्ड वैवेल से भी मिलना चाहते थे, लेकिन वैवेल ने इसको भी पसन्द नहीं किया। गाँधीजी ने मिस्टर जिन्ना से मुलाकात की और मुस्लिमलीग की माँग के सम्बन्ध में बातचीत शुरू की। लेकिन कोई समझौता नहीं हो सका। इसके करीब साल भर बाद ब्रिटिश सरकार की तरफ से भारतीय गतिरोध को दूर करने की एक बार फिर कोशिश की गई। लार्ड वैवेल २१ मार्च १९४५ को लन्दन के लिए रवाना हुए और ४ जून को भारत वापस आये। लन्दन में आपने ब्रिटिश मंत्रिमंडल के मुख्य सदस्यों से बातचीत की। १४ जून को ब्रिटिश सरकार की योजना प्रकाशित हुई, जो वैवेल-योजना के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना में निम्नलिखित व्यवस्था की गई थी:—

वाइसराय की एक्जिक्युटिव कौंसिल का संगठन इस तरह किया जायगा जिसमें कि वाइसराय और कमांडर इन चीफ को छोड़कर और सभी सदस्य भारतीय नेता रहेंगे। इसमें सभी प्रमुख राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि रहेंगे और इसके सवर्ण हिन्दू और मुसलमान सदस्यों की संख्या बराबर-बराबर रहेगी। भारत के परराष्ट्र-सम्बन्ध का संचालन भी एक भारतीय सदस्य के जिम्मे रहेगा। प्रान्तों में भी गवर्नरों के शासन का अन्त कर मंत्रिमंडलों की स्थापना की जायगी। इन सब परिवर्तनों का

भारत के नये संविधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इन सुझावों का सम्बन्ध सिर्फ ब्रिटिश भारत से था और इनसे देशी रियासतों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

१६ जून, १९४५ को कांग्रेसकार्यसमिति के सभी सदस्य और दूसरे बड़े-बड़े नेता रिहा कर दिये गये। २५ जून से शिमला में वैवेल-योजना पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन शुरू हुआ। इसमें वाइसराय की तरफ से २२ नेता निमंत्रित किये गये। लेकिन शिमला-सम्मेलन में कोई समझौता नहीं हो सका और १४ जुलाई, १९४५ को वैवेल ने इसकी असफलता की घोषणा कर दी। एक्जिक्युटिव कौंसिल के मुस्लिम सदस्यों की नियुक्ति का प्रश्न इस असफलता का मुख्य कारण था। मुस्लिम लीग का कहना था कि कौंसिल में ऐसे किसी मुसलमान सदस्य को नियुक्ति नहीं होनी चाहिए, जो मुस्लिमलीग का सदस्य नहीं हो। काँग्रेस यह मानने के लिए तैयार नहीं थी। वह अपने को समूचे भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधि समझती थी और इसलिए कौंसिल में कांग्रेसी मुसलमानों की नियुक्ति को अपने राष्ट्रीय स्वरूप के कायम रखने के लिए अनिवार्य समझती थी। शिमला-सम्मेलन की असफलता से देश में फिर असन्तोष छा गया।

कैबिनेट मिशन-योजना

वैवेल-योजना की असफलता के बाद, कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे भारतीय स्वाधीनता का मञ्जिल और भी नजदीक आ गया। ब्रिटेन में नया चुनाव हुआ और उसके बाद ५ अगस्त, १९४५ को वहाँ पर लेबरपार्टी का मन्त्रिमंडल कायम हुआ। युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बहुत-कुछ बदल चुकी थी। राष्ट्रीयता की लहर भी बहुत जोरों पर थी। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार ने जल्द-से-जल्द भारत से समझौता कर लेने का निश्चय किया। लार्ड वैवेल फिर लन्दन गये और वहाँ से आने पर १९ सितम्बर, १९४५ को आपने यह घोषणा की कि अगले जाड़े के मौसम में भारत में नया चुनाव होगा और उसके बाद प्रान्तों में फिर से लोकप्रिय मंत्रिमंडलों के हाथ में शासन का भार सौंपा जायगा। साथ-ही-साथ एक संविधाननिर्मात्री परिषद् की स्थापना और वाइसराय की एक्जिक्युटिव कौंसिल को इस तरह संगठित करने की कोशिश की जायगी जिसमें भारत के प्रमुख दलों के प्रतिनिधि उसमें शामिल हो सकें।

वैवेल की इस घोषणा के मुताबिक १९४५–४६ के जाड़े में नया चुनाव हुआ। चुनाव के बाद फिर आठ प्रान्तो में कांग्रेसी मंत्रिमंडल कायम हुए। पञ्जाब में भी काँग्रेस के प्रतिनिधि संयुक्त मंत्रिमंडल में शामिल थे। सिर्फ सिन्ध और बंगाल में गैर काँग्रेसी मंत्रिमंडल थे। लेकिन इन प्रान्तों के अधिकांश मुस्लिम सीटों पर मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि ही चुने गये। १९४५–४६ के जाड़े में ब्रिटिश पार्लियामेंट की ओर से एक प्रतिनिधिमंडल आया और उसने भारत के विभिन्न भागों का दौरा किया। इंगलैंड वापस जाने पर इसके सदस्यों ने इस बात पर जोर दी कि ब्रिटिश सरकार की तरफ से भारत के सम्बन्ध में जल्द-से-जल्द उचित कार्रवाई करनी चाहिए। १९ फरवरी, १९४६ को ब्रिटिश पार्लियामेंट में वहाँ के प्रधान मंत्री एटली ने एक महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि कैबिनेट की ओर से भारतमंत्री लार्ड पेथिक लारेन्स, और इसके दो और सदस्य—सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, और ए० वी० एलेक्जेन्डर—भारत जायँगे और वहाँ पर वाइसराय के साथ भारतीय नेताओं से मिलकर भारतीयों के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित करने के सम्बन्ध में कोई सर्वमान्य योजना बनाने की कोशिश करेंगे। १५ मार्च १९४६ को एटली ने पार्लियामेंट में भाषण करते हुए कहा कि ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों के हकों का ध्यान रखेगी, लेकिन किसी अल्पसंख्यक जनसमुदाय को बहुसंख्यक जनसमुदाय को प्रगति को बराबर के लिए रोकने नहीं दिया जा सकता।

मार्च १९४६ में ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीनों सदस्य भारत आये। उन लोगों ने यहाँ के सभी प्रमुख दलों के नेताओं से बातचीत की। मई के शुरू में (५ मई से १२ मई तक) शिमला में ब्रिटिश सरकार, काँग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों का संयुक्त सम्मेलन भी हुआ। लेकिन पहले शिमला-सम्मेलन की तरह यह भी असफल रहा और काँग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई भी समझौता नहीं हो सका। मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग को किसी तरह भी कम करने के लिए नहीं तैयार थी और काँग्रेस को देश का विभाजन स्वीकार नहीं था। ऐसी स्थिति में कोई ऐसी योजना नहीं तैयार हो सकी जिसे दोनों मान लें। आखिर में ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्यों ने स्वयं एक योजना तैयार की। यह १६ मई १९४६ को प्रकाशित की गई और कैबिनेट मिशन-योजना के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अपनी योजना प्रस्तुत करते समय कैबिनेट मिशन ने पाकिस्तान की माँग पर

काफी विस्तार में विचार किया। मिशन की राय में भारत का विभाजन व्यावहारिक नहीं था और मुस्लिम लीग के बाहर और सभी लोग भारतीय एकता को कायम रखने के पक्ष में थे। लेकिन मिशन की दृष्टि में यह भी स्पष्ट था कि भारत के मुसलमानों को इस बात की चिन्ता थी कि यहाँ पर उन्हें बराबर हिन्दू-बहुमत के मातहत रहना पड़ेगा। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए कैबिनेट मिशन ने यह आवश्यक समझा कि भारत के नये संविधान के मूल आधार निम्नलिखित हों—

एक भारतीय संघ रहना चाहिए, जिसमें ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतें दोनों सम्मिलित रहें। इस भारतीय संघ के अधीन परराष्ट्र-सम्बन्ध, रक्षा और यातायात के विषय रहें और इसे इन विषयों के सम्बन्ध में होनेवाले खर्च के लिए धन प्राप्त करने का भी अधिकार हो। संघ में एक कार्यपालिका और विधानमंडल होना चाहिए जिनमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि शामिल रहें। विधानमंडल में किसी महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय के लिए, सभी उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के बहुमत के साथ-साथ दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के उपस्थित और मत देनेवाले प्रतिनिधियों का अलग-अलग बहुमत आवश्यक होना चाहिए। संघीय विषयों के अतिरिक्त और सभी विषय और सभी अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को मिलना चाहिए। रियासतें उन सब विषयों और अधिकारों को अपने अधीन रखेंगी, जिन्हें वे संघ को नहीं समर्पित करेंगी। प्रान्तों को अपनी इच्छानुसार अपने लिए ग्रूप या पृथक् समूह बनाने का अधिकार रहना चाहिए। प्रत्येक समूह के लिए एक कार्यपालिका और विधानमंडल रहेंगे और प्रत्येक को यह निश्चय करने का अधिकार रहेगा कि कौन-से प्रान्तीय विषय सामूहिक शासन के अधीन रहें। संघ और समूहों के संविधानों में इस तरह की व्यवस्था रहनी चाहिए जिसके द्वारा कोई भी प्रांत अपनी विधानसभा के बहुमत से पहले दस साल के बाद और फिर प्रत्येक दस साल के बाद संविधान के शर्तों पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव कर सके।

कैबिनेट मिशन का उद्देश्य भारत के पूरे संविधान का निर्माण करना नहीं था। यह काम तो भारत के संविधान-सभा के लिए था। कैबिनेट मिशन सिर्फ उस सभा की स्थापना की व्यवस्था कर देना चाहता था जिससे कि भारत के लोग

स्वयं अपना संविधान बना सकें। संविधानसभा के निर्माण के सम्बन्ध में कैबिनेट मिशन-योजना में निम्नलिखित व्यवस्था थी—

प्रत्येक प्रांत की जन-संख्या के अनुसार उस प्रांत से चुने जानेवाले संविधान-सभा के सदस्यों की संख्या निश्चित की जाय। मोटे तौर पर दस लाख की आबादी पर एक स्थान दिया जाय। इस प्रकार निश्चित किये हुए एक प्रान्त के स्थानों को उस प्रान्त के प्रमुख सम्प्रदायों के बीच उनकी जनसंख्या के अनुसार बाँट दिया जाय। प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान सभा के उसी सम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा, अनुपातीय प्रतिनिधित्वप्रणाली के अनुसार चुने जायँ। इस आधार पर ब्रिटिश भारत के प्रान्तों से चुने जानेवाले सदस्यों की संख्या सब मिलाकर २९२ होगी। रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या अधिक-से-अधिक ९३ हो सकती थी। रियासतों के प्रतिनिधि किस तरह चुने जायँ, यह राय-मशविरा के बाद तय किया जायगा। प्रारम्भिक काल में उनका प्रतिनिधित्व एक विशेष समिति द्वारा होगा (जिसे निगोशिएटिंग कमिटी कहा गया)। इसके अतिरिक्त दिल्ली, अजमेर, कुर्ग और ब्रिटिश बलुचिस्तान से भी एक-एक प्रतिनिधि लिये जायँगे। इस तरह से चुने हुए प्रतिनिधियों की बैठक दिल्ली में होगी और वे निम्नलिखित ढंग से अपना काम करेंगे—

आरम्भिक बैठक में संविधानसभा के सभापति और दूसरे पदाधिकारियों का निर्वाचन और इसके भिन्न-भिन्न समितियों का संगठन होगा। इसके बाद प्रान्तों के प्रतिनिधि तीन भागों या सेक्शनों में बँट जायँगे। भाग क में मद्रास, बम्बई, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त और उड़ीसा, भाग ख में पञ्जाब, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और सिन्ध और भाग ग में बंगाल और आसाम के प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे। ये भाग अपने-अपने भीतर के सभी प्रान्तों का संविधान बनावेंगे। वे यह भी निश्चित करेंगे कि इनके समूह या ग्रूप का कोई संविधान रहेगा या नहीं और अगर हाँ, तो समूह को किन प्रान्तीय विषयों के ऊपर अधिकार दिया जायगा। नये संविधान के लागू होने के बाद किसी भी प्रान्त को अपने समूह से बाहर निकल जाने का अधिकार रहेगा। नये संविधान के अनुसार होनेवाले प्रथम निर्वाचन के बाद संगठित हुई प्रान्तीय विधानसभा इस तरह का निर्णय कर सकेगी। प्रान्तीय और सामूहिक संविधान स्थिर कर लेने के बाद सभी प्रतिनिधि फिर एक

साथ इकट्ठे होंगे और भारतीय संघ का संविधान बनावेंगे। संघीय संविधानसभा में इस तरह के प्रस्ताव जिनसे केबिनेट मिशन द्वारा स्थिर किये हुए संविधान के मूल आधार में परिवर्तन होता हो या जिनसे कोई महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्न उपस्थित होता हो तभी पास हो सकेंगे जब उनके पक्ष में दोनों प्रमुख सम्प्रदायों में से प्रत्येक के उपस्थित और मत देनेवाले प्रतिनिधियों का बहुमत हो।

सत्ता हस्तान्तरित होने के कारण पैदा होनेवाली कुछ बातों के सम्बन्ध में व्यवस्था करने के लिए संघीय संविधानसभा और ब्रिटेन के बीच में एक सन्धि का होना भी आवश्यक होगा। भारत ब्रिटिश कॉमनवेल्थ या राष्ट्रमंडल का सदस्य रहेगा कि नहीं, इसका निर्णय वह स्वयं करेगा।

यह कैबिनेट मिशन की दीर्घकालीन योजना थी। लेकिन संविधान के तैयार होने में काफी समय लगेगा—यह स्पष्ट था। इस बीच में शासन के सम्मुख कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित थे। इसलिए कैबिनेट मिशन ने अपनी योजना में अन्तरिम सरकार के निर्माण पर बहुत जोर दिया। इस योजना में यह कहा गया कि अन्तरिम सरकार में भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं को शामिल करने की कोशिश की जायगी और इसके जिम्मे केन्द्रीय शासन के सभी विभाग रहेंगे।

संविधानसभा और अन्तरिम सरकार

कैबिनेट मिशन की योजना काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों की माँगों को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। भारत का विभाजन नहीं होता था। साथ-ही-साथ संघीय सरकार के अधीन बहुत कम विषय दिये गये थे और ग्रूप या समूहों के निर्माण की व्यवस्था से मुस्लिम बहुमत प्रान्तों को एक साथ रहने का अवसर भी दे दिया गया था। ऐसी स्थिति में यह योजना काँग्रेस या मुस्लिम लीग किसी को भी पूरी तरह पसन्द नहीं थी। लेकिन दोनों ने इसे मञ्जूर कर लिया। सिक्ख लोग पहले इसके खिलाफ थे। लेकिन भारतमंत्री और काँग्रेस-कार्य-समिति के आश्वासन के बाद वे भी इससे सहयोग करने को तैयार हो गये।

इसके बाद अन्तरिम सरकार बनाने की कोशिश शुरू हुई। वाइसराय की तरफ से १६ जून १९४६ को एक घोषणा प्रकाशित हुई, जिसमें यह कहा गया

कि भारत के चौदह प्रमुख नेताओं को अन्तरिम सरकार में शामिल होने का निमंत्रण दिया गया है। लेकिन यह योजना सफल नहीं हो सकी। काँग्रेस ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया, क्योंकि काँग्रेस की सूची में एक भी मुस्लिम सदस्य नहीं था। इसे काँग्रेस अपने राष्ट्रीय स्वरूप के विरुद्ध समझती थी। इसके अलावे कांग्रेस एक ऐसी सरकार चाहती थी जो पूरी तरह भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी हो और जिसके अधिकार पर और किसी तरह की रुकावट नहीं हो। ऐसी स्थिति में अन्तरिम सरकार बनाने की कोशिश अभी तत्काल स्थगित कर दी गई और २९ जून १९४६ को वाइसराय ने ९ सरकारी कर्मचारियों की एक कामचलाऊ सरकार संगठित की।

जुलाई १९४६ में संविधानसभा का चुनाव हुआ। काँग्रेस के प्रतिनिधि सबसे अधिक संख्या में चुने गये और सिक्खों की अकाली पार्टी के सदस्य भी काँग्रेस के साथ थे। इस तरह ब्रिटिश भारत के २९६ प्रतिनिधियों में २११ काँग्रेस के साथ थे। इसके विपरीत मुस्लिम लीग के सिर्फ ७३ प्रतिनिधि चुने जा सके। इसके अलावे मुस्लिम लीग को अन्तरिम सरकार-सम्बन्धी वैवेल की नीति भी पसन्द नहीं थी। इसलिए २९ जुलाई १९४६ को मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन-योजना से अपना समर्थन वापस ले लिया। अब काँग्रेस ही एक ऐसी प्रमुख पार्टी थी जो कैबिनेट मिशन-योजना को मानती थी। इसके पहले २२ जुलाई को लार्ड वैवेल ने फिर एक बार अन्तरिम सरकार की स्थापना की कोशिश की थी, लेकिन मिस्टर जिन्ना ने वाइसराय के सुझाव को मानने से इनकार कर दिया था। ऐसी स्थिति में वाइसराय ने काँग्रेस के नये सभापति श्रीजवाहरलाल नेहरू को अन्तरिम सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। नेहरूजी ने इस सम्बन्ध में मिस्टर जिन्ना का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की और उनसे मुलाकात भी की। लेकिन मिस्टर जिन्ना ने अन्तरिम सरकार बनाने में सहयोग देना नहीं स्वीकार किया। तब नेहरूजी के सुझाव के मुताबिक ही अन्तरिम सरकार के सभी सदस्य चुने गये। कुल मिलाकर इनकी संख्या बारह थी और इनमें काँग्रेस के बाहर के लोग और अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि भी शामिल थे। नेहरूजी अन्तरिम सरकार के नेता (वाइसराय की एक्जिक्युटिव कौंसिल के उपसभापति) बने। इस सरकार ने दूसरी सितम्बर १९४६ से अपना

काम शुरू कर दिया। लेकिन वाइसराय ने मुस्लिम लीग से बातचीत जारी रखी और आगे चलकर लीग ने अन्तरिम सरकार के सम्बन्ध में अपनी नीति बदल दी। २६-अक्टूबर १९४६ को अन्तरिम सरकार के कुछ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया और मुस्लिम लीग के पाँच प्रतिनिधि इसमें शामिल हो गये। इस तरह अब अन्तरिम सरकार में काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ही आ गईं।

ब्रिटिश सरकार की घोषणा, दिसम्बर ६, १९४६

लेकिन मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के शामिल होने से अन्तरिम सरकार को शक्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई और न काँग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता ही समीप आया। इनके आने के कुछ ही दिन बाद श्रीजवाहरलाल नेहरू ने खुलेआम कहा कि ये लोग अन्तरिम सरकार के काम में अडंगा लगाने की कोशिश करते हैं। लीग-सदस्यों के नेता मिस्टर लियाकत अली खाँ ने भी साफ-साफ कहा कि वे न तो नेहरूजी को अन्तरिम सरकार का नेता मानते हैं और न यही कि यह सरकार संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर संगठित है। इससे भी बड़ी बात यह थी कि अन्तरिम सरकार में शामिल होने के बाद भी लीग संविधानसभा में शामिल होने के लिए नहीं तैयार थी। जब लीग के प्रतिनिधि अन्तरिम सरकार में लिये जा रहे थे, उस समय लार्ड वैवेल ने नेहरूजी को यह आश्वासन दिया था कि लीग संविधानसभा के काम में भी सहयोग करेगी। लेकिन इसकी कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती थी। काँग्रेस की तरफ़ से यह माँग की गई कि चाहे तो सरकार लीग को संविधानसभा के काम में सहयोग करने को राजी करे, चाहे इसे अन्तरिम सरकार छोड़ देने के लिए कहे। ६ दिसम्बर १९४६ से संविधान-सभा की बैठक आरम्भ होनेवाली थी। काँग्रेस ने उसे भी स्थगित करने से इनकार किया।

ऐसी स्थिति में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने लन्दन में काँग्रेस, मुस्लिम लीग और अकाली पार्टी के नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। लेकिन सम्मेलन में कोई समझौता नहीं हो सका और काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों अपनी नीति पर पूर्ववत् डटी रहीं। तब ६ दिसम्बर १९४६ को ब्रिटिश सरकार की तरफ से कैबिनेट मिशन-योजना में समूहों के निर्माण के सम्बन्ध में की गई व्यवस्था के

सही अर्थ को स्थिर करते हुए एक घोषणा निकाली गई। इसमें मुस्लिम लीग द्वारा लगाये गये अर्थ को सही माना गया। कांग्रेस का कहना था कि कैबिनेट मिशन-योजना का यह अर्थ था कि प्रान्तों को समूह बनाने और अपना संविधान स्थिर करने के सम्बन्ध में निर्णय करने का पूरा अधिकार था। लेकिन घोषणा में कहा गया कि कैबिनेट मिशन का बराबर यही मत रहा है कि, किसी समझौते के अभाव में, संविधानसभा के भागों या सेक्शनों के निर्णय साधारण बहुसंख्यक मत द्वारा किये जायँ और कानूनी सलाह से भी इसी मत का समर्थन होता है। आगे चलकर इस घोषणा में कहा गया—"संविधानसभा की सफलता केवल स्वीकृत कार्यपद्धति द्वारा ही संभव है। यदि कोई संविधान किसी ऐसी संविधान-सभा द्वारा तैयार किया गया हो जिसमें भारतीय जनता के किसी बड़े भाग का प्रतिनिधित्व न हो, तो सम्राट् की सरकार कभी यह इरादा नहीं रखती—और कांग्रेस भी कह चुकी है कि वह भी ऐसा इरादा नहीं करेगी—कि ऐसा संविधान देश के किसी अनिच्छुक भाग पर जबरदस्ती लाद दिया जाय।"

ब्रिटिश सरकार की घोषणा फरवरी २०, १९४७

६ दिसम्बर की इस घोषणा के बाद यह आशा की जाती थी कि अब मुस्लिम लीग के रुख में परिवर्तन होगा और वह संविधानसभा में शामिल होगी। इसी आशा में जब ९ दिसम्बर से संविधानसभा की बैठक आरम्भ हुई, तो कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं किया गया और कुछ ही दिनों के बाद यह बैठक स्थगित कर दी गई। अगली बैठक २० जनवरी १९४७ से करने का निश्चय किया गया। यह इस आशा से की गई कि इस बीच में लीग-कौंसिल की बैठक होगी और यह संविधानसभा के साथ असहयोग खतम कर लीग के प्रतिनिधियों को इसमें जाने का आदेश देगी। इसी आशा से कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की ६ दिसम्बर की घोषणा भी स्वीकार कर ली, हालाँकि यह प्रान्तीय स्वराज के सिद्धान्त के बिलकुल विरुद्ध था और खास करके आसाम के साथ बहुत बड़े अन्याय का कारण था, क्योंकि आसाम में हिन्दुओं का बहुमत था, फिर भी वे बंगाल के साथ समूह बनाने के लिए बाध्य होते थे। लेकिन मुस्लिम लीग के रुख में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ३१ जनवरी १९४७ को लीग की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास कर संविधान सभा को गैरकानूनी घोषित किया और इसके भंग किये

जाने की माँग की। २० जनवरी से संविधानसभा की बैठक शुरू हो चुकी थी। अब लीग के सदस्यों की गैरहाजिरी में ही यहाँ के सभी काम होने लगे। लेकिन अभी भी इसकी भिन्न भिन्न कमिटियों में कुछ जगह खाली रखी गई, जिसमें अगर लीग के प्रतिनिधि सहयोग करने पर तैयार हो जायँ तो उन्हें वहाँ रखा जा सके। लेकिन इसकी आशा करना अब व्यर्थ था। देश की हालत दिनोंदिन काबू से बाहर होती चली जा रही थी। मुस्लिम लीग के जहरीले प्रचार के कारण देश के कई भागों में बड़े पैमाने पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हो गये, जिसमें बहुत लोग मरे और बहुत-से अमानुषिक कार्य हुए। अन्तरिम सरकार के भीतर ही फूट थी और वह कुछ करने से लाचार थी। इधर श्रीजयप्रकाशनारायण देश के कोने-कोने में दौरा कर रहे थे और भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आखिरी लड़ाई के लिए तैयार रहने का आदेश दे रहे थे। कांग्रेस के नेताओं से वे बराबर अपील कर रहे थे कि वे अपनी समझौते की नीति त्याग दें और देश को संगठित कर आजादी की लड़ाई शुरू करें।

ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने में अब अधिक विलम्ब करना उचित नहीं समझा। २० फरवरी १९४७ को ब्रिटिश प्रधानमंत्री मिस्टर एटली ने इस सम्बन्ध में एक बहुत महत्त्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा में यह साफ कहा गया कि ब्रिटिश सरकार यह निश्चय कर चुकी है कि हद-से-हद जून १९४८ तक उत्तरदायी भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंपने का कार्य अवश्य सम्पन्न हो जाय। लेकिन साथ-ही-साथ पाकिस्तान की ओर भी संकेत किया गया और यह कहा गया कि अगर संविधानसभा में सभी प्रमुख दल नहीं शामिल होंगे, तो ब्रिटिश सरकार को यह सोचना होगा कि वह किसी एक या एक से अधिक सरकारों को सत्ता हस्तान्तरित करे। लार्ड वैवेल की नियुक्ति खतम की गई और उनकी जगह पर लार्ड माउंटबैटन भारत के वाइसराय बनाये गये। घोषणा में कहा गया कि लार्ड माउंटबैटन का काम भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंपने के काम को पूरा करना होगा।

माउंटबैटन-योजना

लार्ड माउंटबैटन मार्च १९४७ में भारत आये। आते ही उन्होंने भारतीय नेताओं से सत्ता हस्तान्तरित करने के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे। माउंट-

बैटन अभी भी चाहते थे कि सभी दल कैबिनेट मिशन योजना को मान लें और भारत की एकता कायम रह जाय। लेकिन इस आधार पर कोई समझौता नहीं हो सका। मुस्लिमलीग अब पाकिस्तान से तनिक भी कम पर सन्तुष्ट होने के लिए तैयार नहीं थी। लेकिन पञ्जाब और बंगाल के कई जिलों में हिन्दुओं का बहुमत था और ये भारत से अलग होने के लिए नहीं तैयार थे। इसलिए कांग्रेसकी तरफ से यह माँग रखी गई कि अगर देश का विभाजन हो, तो उसके साथ-साथ पञ्जाब और बंगाल का भी विभाजन होना चाहिए। कांग्रेस और मुस्लिमलीग के विचारों को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश सरकार ने अपनी योजना बनाई, जो ३ जून १९४७ को प्रकाशित हुई और माउण्टबैटन योजना के नामसे प्रसिद्ध हुई।

इस योजना में यह व्यवस्था की गई कि बंगाल और पञ्जाब की विधान सभाएँ दो भागों में बैठेंगी। एक में मुस्लिम बहुमत क्षेत्रों के प्रतिनिधि रहेंगे और दूसरे में गैर-मुस्लिम बहुमत क्षेत्रों के। अगर इनमें से कोई भाग प्रान्त के विभाजन के पक्ष में निर्णय करेगा, तो प्रान्त का विभाजन कर दिया जायगा। फिर विभाजित प्रान्तों का प्रत्येक भाग यह फैसला करेगा कि वह वर्तमान संविधान-सभा में शामिल होना चाहता है, या दूसरी संविधान-सभा में। इसी तरह सिन्ध की विधान-सभा भी निर्णय करेगी कि वह प्रान्त किस संविधान-सभा में शामिल होगा। उत्तर पश्चिम सीमा-प्रान्त में इसका निर्णय जन-मत संग्रह (रेफरेंडम) द्वारा होगा, जिसमें वहाँ की विधान-सभा के सभी मतदाता अपना मत देंगे। ब्रिटिश बलुचिस्तान को भी इस सम्बन्ध में फैसला करने का अवसर दिया जायगा। अगर बंगाल के विभाजन का निर्णय होगा तो आसाम के सिलहट जिले में जन-मत संग्रह द्वारा यह तय किया जायगा कि वह आसाम का ही भाग बना रहेगा, या पूर्वी बंगाल के नये प्रांत में शामिल होगा। माउंटबैटन योजना में यह भी कहा गया कि भारतीयों की माँग को ध्यान में रखकर ब्रिटिश सरकार ने यह तय किया है कि जून १९४८ के पहले ही भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंप दी जाय और इसके लिए पार्लियामेंट के इसी अधिवेशनमें एक बिल पेश किया जायगा।

इंडियन इन्डिपेन्डेन्स ऐक्ट १९४७

माउंटबैटन योजना को सभी प्रमुख दलों ने स्वीकार कर लिया और तुरत

इसके मुताबिक सभी काम शुरू कर दिये गये। बंगाल और पञ्जाब ने विभाजन के पक्ष में अपना मत दिया और अब उनकी जगह पर पूर्वी पञ्जाब और पश्चिमी पञ्जाब, तथा पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल के प्रान्त बन गये। पूर्वी पञ्जाब और पश्चिमी बंगाल ने उस समय वर्तमान संविधान-सभा में शामिल होने का निर्णय किया और पश्चिमी पञ्जाब और पूर्वी बंगाल ने नयी संविधान-सभा में शामिल होने का। सिन्ध, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और ब्रिटिश बलुचिस्तान ने भी नयी संविधान-सभा के पक्ष में ही अपना निर्णय दिया। सिलहट जिले ने पूर्वी बंगाल में शामिल होने का निर्णय किया।

भारतीयों के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित करने और भारत के विभाजन को लागू करने के लिए ४ जुलाई, १९४७ को ब्रिटिश पार्लियामेंट में इंडियन इण्डिपेन्डेन्स बिल पेश किया गया और दो सप्ताह के भीतर पार्लियामेंट ने इसे पास कर ऐक्ट का रूप दे दिया। इसमें यह व्यवस्था की गई कि १५ अगस्त, १९४७ को भारत और पाकिस्तान दो डोमिनियन स्थापित होंगे। प्रत्येक डोमिनियन में एक गवर्नर जेनरल रहेगा जो ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधित्व करेगा। सिन्ध, पश्चिमी पञ्जाब, उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रांत, ब्रिटिश बलुचिस्तान और पूर्वी बंगाल पाकिस्तान के भाग बनेंगे। बाकी सभी प्रान्त भारत में रह जायेंगे। इन दोनों देशों में लोकप्रिय सरकारों के हाथ में सत्ता सौंप दी जायगी। १५ अगस्त के बाद भारत और पाकिस्तान पूरी तरह से स्वतंत्र हो जायेंगे और अपने-अपने देश में लागू होने वाले सभी कानूनों को बना सकेंगे। इसके बाद इनके शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की कोई जिम्मेदारी नहीं रहेगी। प्रत्येक देश की संविधान-सभा उस देश के लिए संविधान बनावेगी। जब तक यह संविधान नहीं तैयार होता, तब तक इन देशों का शासन १९३५ के ऐक्ट के मुताबिक चलेगा। लेकिन इसमें प्रत्येक देश जो परिवर्तन उचित समझेगा वह कर लेगा।

इस ऐक्ट के मुताबिक पन्द्रह अगस्त को भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। भारत के कुछ प्रान्तों को मिलाकर पाकिस्तान भी कायम हो गया। जब तक नया संविधान नहीं तैयार हुआ, तब तक १९३५ के ऐक्ट के संशोधित रूप के अनुसार शासन चलता रहा।

अध्याय ६

नये संविधान का निर्माण
और
रियासतों की समस्या का समाधान

कैबिनेट मिशन योजना के मुताबिक १६४६ में संविधान-सभा का निर्वाचन हुआ और इसकी पहली बैठक ९ दिसम्बर, १९४६ को हुई। तभी से नये संविधान के निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। यह काम २६ नवम्बर, १९४९ को पूरा हुआ। इस तरह संविधान के निर्माण में सब मिलाकर दो बरस, ग्यारह महीने और अठारह दिन लगे। इस बीच में संविधान-सभा के ग्यारह अधिवेशन हुए। शुरू में श्रीजवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किया हुआ ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया गया। इसमें नये संविधान के मुख्य उद्देश्य बतलाये गये थे और इसका स्वरूप निर्धारित किया गया था। इसके बाद भिन्न-भिन्न कमिटियों की रिपोर्टों पर विचार हुआ। ६ अधिवेशनों तक संविधान-सभा का समय इन्हीं कामों में लगा। संविधान का प्रारूप या मसविदा तैयार करने के लिए संविधान-सभा ने २९ अगस्त, १९४७ को डाक्टर बी० आर० अम्बेडकर के सभापतित्व में प्रारूप-समिति की स्थापना की। श्री टी. टी. कृष्णमचारी, सर मुहम्मद सादुल्ला, सर अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर, श्री के. एम. मुंशी और श्रीगोपाल स्वामी आयंगर इसके सदस्य थे। भारत सरकार के सांविधानिक परामर्शदाता की हैसियत से श्री बी. एन. राव ने प्रारूप-समिति के विचारार्थ संविधान का प्रथम प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप में २४३ अनुच्छेद और १३ अनुसूचियाँ थीं। प्रारूप-समिति ने सब मिलाकर अपनी १४१ बैठकें कीं जिनमें संविधान के प्रारूप तैयार करने का काम हुआ। यह प्रारूप २१ फरवरी, १९४८ तक तैयार हुआ। इसमें ३१५ अनुच्छेद और ८ अनुसूचियाँ थीं। संविधान सभा ने इस प्रारूप पर अच्छी तरह विचार किया। सब मिलाकर इस प्रारूप

में ७६३५ संशोधनों की सूचना दी गई। इनमें २४७३ संशोधन सचमुच में पेश किये गये और उन पर विचार किया गया। २६ नवम्बर, १९४९ को कुछ संशोधन के बाद संविधान-सभा ने नये संविधान को पास कर दिया। इस संविधान में ३९५ अनुच्छेद और ८ अनुसूचियाँ हैं। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के संविधान (७ अनुच्छेद) के निर्माण में चार महीने; कनाडा (१४७ अनुच्छेद) में दो बरस पाँच महीने, आस्ट्रेलिया (१२८ अनुच्छेद) में नौ साल और दक्षिण अफ्रिका (१५३ अनुच्छेद) में एक साल लगे थे। यह नया संविधान २६ जनवरी, १९५० से लागू हो गया।

रियासतों की समस्या

भारतीय संविधान के निर्माण के सम्बन्ध में सबसे जटिल समस्या रियासतों की थी। विभाजन के बाद भारत के क्षेत्रफल का ४८ प्रतिशत, और जन-संख्या का २७ प्रतिशत भाग इन रियासतों के भीतर था। इनकी संख्या ६०० के करीब थी। इनमें छोटी-बड़ी सभी तरह की रियासतें थीं। एक तरफ हैदराबाद और काश्मीर की तरह रियासतें थीं जिनका आकार ब्रिटेन के बराबर था और दूसरी तरफ काठियावाड़ की रियासतों की तरह, जो अत्यन्त छोटी थीं और जो कुछ एकड़ों में सीमित थीं। ब्रिटिश शासन के जमाने में इनके और प्रान्तों के शासन में यह भेद था कि जहाँ प्रान्तों का शासन सीधे तौर पर अंग्रेजी सरकार द्वारा होता था, वहाँ रियासतों के शासन का भार वहाँ के महाराजाओं पर था। लेकिन ये रियासतें किसी भी अर्थ में स्वतंत्र नहीं थीं। कई बातों में ये भारत सरकार के अधीन थीं। सीधे किसी दूसरे देश से इनका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता था। इनकी रक्षा का भार भी भारत सरकार पर ही था। इसके अलावे समूचे भारत के हित को ध्यान में रखकर इनकी भीतरी बातों में भी भारत सरकार हस्तक्षेप कर सकती थी। जहाँ उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कोई झगड़ा रहता था, वहाँ भारत सरकार ही अन्तिम फैसला करती थी। भारत सरकार को ये सभी अधिकार इन रियासतों के साथ हुई सन्धियों इत्यादि से प्राप्त थे। लेकिन सभी अधिकारों का जिक्र इन सन्धियों में नहीं था। आवश्यतानुसार समय-समय पर भारत सरकार की तरफ़ से नये-नये अधिकारों

का प्रयोग होता गया और इस तरह एक ऐसी परम्परा कायम हो गई कि भारत सरकार के अधिकारों की कोई सीमा नहीं रह गई। रियासतों की तरफ से बहुत कोशिश हुई कि भारत सरकार के अधिकारों की कोई सीमा निर्धारित हो जाय, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। भारत सरकार स्वयं अपने अधिकारों पर जो सीमा चाहे वह रख सकती थी, लेकिन बाहर से उस पर कोई सीमा नहीं रखी जा सकती। १९३५ के भारतीय शासन सम्बन्धी ऐक्ट के अनुसार रियासतों के सम्बन्ध में एक परिवर्तन किया गया। इस ऐक्ट में केन्द्रीय शासन में कुछ हद तक उत्तरदायी शासन की स्थापना की व्यवस्था थी। ब्रिटिश सरकार का यह मत हुआ कि जब भारत सरकार पर जनता के प्रतिनिधियों का अधिकार हो जायगा, तब रियासतों के सम्बन्ध में भारत सरकार के हाथ में सभी अधिकार रहने देना उचित नहीं होगा। इसलिए इस ऐक्ट के मुताबिक सम्राट के प्रतिनिधि का एक पद कायम किया गया और रियासतों के सम्बन्ध के सभी अधिकारों को भारत सरकार से लेकर इसी प्रतिनिधि को दे दिया गया। गवर्नर जेनरल भारत सरकार का प्रधान रहा। लेकिन व्यवहार में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। दोनों पदों पर एक ही आदमी रहता था। फर्क यही था कि जब वह भारत सरकार की तरफ से कोई काम करता तो गवर्नर जेनरल की हैसियत से और जब रियासतों के सम्बन्ध में, तब सम्राट के प्रतिनिधि की हैसियत से।

१९३५ के ऐक्ट के मुताबिक भारत में संघीय शासन स्थापित करने की व्यवस्था की गई थी। इसमें रियासतों के शामिल होने की भी बात थी। लेकिन जहाँ ब्रिटिश भारत के प्रान्त अपने आप भारतीय संघ में आ जाते, वहाँ रियासतें इसमें आने या नहीं आने के लिए स्वतंत्र थीं। इसी तरह क्रिप्स योजना में भी रियासतों को भारतीय संघ में शामिल होने के सम्बन्ध में स्वतंत्र समझा गया। कैबिनेट मिशन की योजना में यह कहा गया कि जब भारत स्वतंत्र हो जायगा तब ब्रिटिश सरकार रियासतों के सम्बन्ध के अपने अधिकारों को न अपने पास रख सकती है और न उनको भारत सरकार को ही सौंप सकती है। यह आशा प्रकट की गई कि ये रियासतें संविधान-सभा के साथ में सहयोग करेंगी और भारतीय संघ में शामिल होंगी। लेकिन यह उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर था, इसके लिए उन्हें बाध्य नहीं किया जा सकता था। माउंटबैटन योजना और

इंडियन इंडिपेन्डेन्स ऐक्ट में भी इसी तरह की व्यवस्था की गई और यह स्पष्ट किया गया कि ब्रिटिश सरकार रियासतों के सम्बन्ध के अपने अधिकारों को छोड़ दे रही है, किसी को सौंप नहीं रही है। साथ-ही-साथ ब्रिटिश सरकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह सीधे किसी रियासत के साथ किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रखेगी। इसका अर्थ यह था कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इन रियासतों का कोई अस्तित्व नहीं था। ब्रिटिश सरकार ने यह आशा प्रकट की कि ये रियासतें भारत या पाकिस्तान में शामिल हो जायँगी।

ऐसी परिस्थिति में कुछ रियासतों की तरफ़ से यह कहा जाने लगा कि भारत से ब्रिटिश सरकार के हट जाने के बाद वे पूरी तरह स्वतंत्र हो जायँगी और भारतीय संघ में शामिल होने के लिए उनको बाध्य नहीं किया जा सकता। अगर इसे मान लिया जाता तो भारत के न जाने कई और टुकड़े हो जाते। ऐतिहासिक दृष्टि से यह विचार सही भी नहीं था। ब्रिटिश सरकार को रियासतों के सम्बन्ध में जो भी अधिकार प्राप्त थे, उनका मूल कारण यही था कि भारत पर उसका अधिकार था। जब भारत सरकार पर भारतीयों का अधिकार हो गया, तब ब्रिटिश सरकार के सभी अधिकार इसे अपने आप प्राप्त हो गये। फिर भी कुछ रियासतें इसे नहीं मानती थीं और संघर्ष की सम्भावना मालूम पड़ती थी।

लेकिन बिना संघर्ष के ही रियासतों की इस समस्या का समाधान हो गया। इसके लिए ५ जुलाई, १९४७ को भारत सरकार में एक रियासती विभाग स्थापित किया गया, और इसका काम सरदार वल्लभ भाई पटेल को सौंपा गया। उसी दिन सरदार पटेल ने एक वक्तव्य निकाला जिसमें उन्होंने रियासतों को आश्वासन दिया कि उनपर किसी तरह का दबाव डालने की कोशिश नहीं की जायगी और उन्हें भारत सरकार को सिर्फ परराष्ट्र नीति, रक्षा और यातायात के सम्बन्ध के अधिकार सौंपने होंगे। और बातों में रियासतें स्वतंत्र रहेंगी। २५ जुलाई, १९४७ को रियासतों के शासकों की एक विशेष सभा हुई और उसमें लार्ड माउंटबैटन, (जो उस समय भारत में सम्राट के प्रतिनिधि थे) ने भी रियासतों को भारतीय संघ में शामिल हो जाने की सलाह दी। रियासतों की जनता भी भारतीय संघ के भीतर रहने के पक्ष में ही थी। शासकों ने भी बदली हुई परिस्थिति को देखा और भारत सरकार से संघर्ष करने में अपना हित नहीं समझा।

भारत सरकार और रियासतों के बीच बातचीत शुरू हुई और थोड़े ही दिनों में हैदराबाद, काश्मीर और जूनागढ़ को छोड़कर और सभी रियासतें भारतीय संघ में शामिल हो गईं। इन तीनों ने भी आगे चल कर ऐसा ही किया। सभी के शासकों ने प्रवेश-पत्र (इन्स्ट्रुमेंट आफ एक्सेशन) पर दस्तखत किया, जिसके अनुसार भारत सरकार को वैदेशिक नीति, रक्षा और यातायात के सम्बन्ध के सभी अधिकार दे दिये गये।

रियासतों की समस्या के समाधान में यह एक बहुत बड़ा क़दम था। लेकिन इसी से यह समस्या खतम नहीं हुई। इनमें से अधिकांश रियासतें बहुत छोटी थीं। शासन की सुविधा के लिए उनका उसी रूप में कायम रहना उचित नहीं था। जो रियासतें बड़ी थीं, उनका शासन भी पुराने ढंग का था। वहाँ प्रान्तों की तरह उत्तरदायी शासन की स्थापना की व्यवस्था होना बहुत जरूरी था। इसके अलावे संघीय सरकार के साथ सम्बन्ध के क्षेत्र में भी इनको और प्रान्तों को एक सतह पर करना आवश्यक था। रियासती विभाग और देशी नरेशों के बीच बातचीत के फलस्वरूप रियासतों के चार भाग हुए। जो रियासतें एकदम छोटी थीं, उन्हें उनके सटे हुए प्रान्तों में मिला दिया गया। इसके बाद कुछ रियासतों को या उनके संघ को चीफ कमिश्नर के प्रान्तों की तरह केन्द्रीय सरकार के अधीन रखा गया। कच्छ, कुचबिहार, त्रिपुरा, विलासपुर, भोपाल, मनीपुर और हिमाचल प्रदेश इस तरह की रियासतें हैं। जो रियासतें आसपास थीं और जिनको मिलाकर स्वावलम्बी संघ बनाये जा सकते थे, उनके संघ बना दिये गये। तिरुवांकुर-कोचीन, पटियाला तथा पूर्वी पञ्जाब राज्य-संघ, मध्य-भारत, राजस्थान, विन्ध्य प्रदेश, और सौराष्ट्र इसी तरह के संघ हैं। प्रत्येक संघ के भीतर शामिल होने वाली रियासतों में से एक के शासक को उस संघ का राजप्रमुख बनाया गया। इनके अलावे जो रियासतें काफी बड़ी थीं, उन्हें उसी तरह रहने दिया गया। हैदराबाद, जम्मू तथा काश्मीर और मैसूर इस तरह की रियासतें हैं। यहाँ के शासकों को राजप्रमुख के रूप में स्वीकार कर लिया गया। सभी नरेशों के व्यक्तिगत और पारिवारिक खर्च के लिए एक अच्छी रकम निश्चित कर दी गई, जो उन्हें उस रियासत की आमदनी से हर साल मिलेगी। इसके अलावे उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी उन्हीं के हाथ में रहेगी। पहले के

प्रान्तों और रियासतों में अभी भी कुछ भेद रह गये हैं। लेकिन इनमें से अधिकांश भेद अस्थायी हैं और अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। कुछ हेरफेर और अपवाद के साथ अब दोनों में एक ही तरह का संविधान लागू होगा। संघ सरकार के भी इनके सम्बन्ध में न्यूनाधिक वही अधिकार रहेंगे, जिस तरह के दूसरे राज्यों या प्रान्तों के सम्बन्ध में।

—

अध्याय ७

नये संविधान का संक्षिप्त परिचय

संविधान की रूपरेखा

नये संविधान के अनुसार भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है। इस संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि सभी शक्ति भारत की जनता से उत्पन्न होती है। न्याय, स्वतत्रंता, समता और बन्धुता इस संविधान के उद्देश्य कहे गये हैं। भारत राज्यों का एक संघ होगा। इसमें २८ राज्य तथा अंडमन और निकोबार द्वीप शामिल हैं। ये २८ राज्य तीन भागों में बाँटे गये हैं। इनमें क्रमशः पहले के गवर्नरों के प्रान्त, देशी रियासतें और चीफ कमिश्नरों के प्रान्त हैं।

संविधान में भारतीयों को कुछ मूल अधिकार दिये गये हैं। इनके अनुसार भारत के सभी नागरिक समान घोषित किये गये हैं और उनमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं होगा। सभी को अपना विचार व्यक्त करने, सभा करने, संघ बनाने भारत में एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने इत्यादि की आजादी दी गई है। व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा की गई है और मनमानी गिरफ्तारी तथा अनिश्चत काल के लिए नज़रबन्दी से बचाव की व्यवस्था की गई है। छुआछूत खतम कर दिया गया है और सभी को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता दी गई है। सम्पत्ति का अधिकार भी मूल अधिकार करार दिया गया है और किसी को विना उसे मुआवजा दिये, उसकी सम्पत्ति से वञ्चित नहीं किया जा सकता है।

संविधान में कुछ सिद्धान्त आदेश या परामर्श के रूप में रखे गये हैं। इन पर चलने के लिए सरकार बाध्य नहीं होगी। फिर भी इन्हें मूलभूत या बुनियादी कहा गया है और यह आशा प्रकट की गई है कि देश के लिए कानून बनाते समय इन्हें प्रयोग में लाया जायगा। इनके अनुसार इसका ध्यान रखा

जायगा कि सबको भरण-पोषण की सुविधा रहे, धन और उत्पादन के साधन एक ही जगह नहीं एकत्रित हो जाँय जिससे समाज को हानि पहुँचे, पुरुष और स्त्री को समान काम के लिए समान वेतन मिले, ग्राम पञ्चायतों का संगठन हो, सबको काम और शिक्षा पाने का हक मिले, निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, मादकद्रव्य निषेध आदि की व्यवस्था हो, कार्यकारिणी और न्याय-विभाग एक दूसरे से पृथक कर दिये जाँय, और अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम करने का प्रयास हो।

संघ का प्रधान राष्ट्रपति होगा और संघ के शासन-सम्बन्धी सभी काम उसी के नाम में होंगे। संघ की संसद और राज्यों के विधान मंडलों के सभी सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव होगा। राष्ट्रपति का कार्य-काल पाँच बरस होगा, लेकिन उसके फिर चुने जाने पर कोई रुकावट नहीं है। संविधान का उलंघन करने पर महाभियोग के द्वारा राष्ट्रपति को उसके पद से हटाया भी जा सकता है। एक उपराष्ट्रपति भी होगा। उसका चुनाव संघ की संसद करेगी। वह इस संसद के उच्च सदन, राज्य परिषद का सभापतित्व करेगा। आकस्मिक रूप से राष्ट्रपति की जगह खाली होने पर वह राष्ट्रपति का काम सँभालेगा और राष्ट्रपति के मर जाने, इस्तीफा देने या हटाये जाने पर वह नये राष्ट्रपति के चुने जाने तक राष्ट्रपति के पद पर रहेगा। उसका कार्य-काल भी पाँच साल ही होगा।

राष्ट्रपति के नाम से शासन के सभी काम होंगे, लेकिन असल में शासन का काम वह नहीं करेगा। संघ का शासन चलाने के लिए एक मंत्रि-परिषद रहेगी जिसका मुखिया प्रधान मंत्री होगा। मंत्रि-परिषद की सहायता और सलाह से ही राष्ट्रपति सभी काम करेगा। मंत्रि-परिषद लोक-सभा (संसद का निम्न सदन) के प्रति उत्तरदायी रहेगी।

संघ के लिए विधि या कानून बनाने और मंत्रिपरिषद के कामों की देख-भाल करते रहने के लिए एक संसद् रहेगी। इसमें दो सदन होंगे, जिनके नाम क्रमशः राज्य-परिषद और लोक-सभा होंगे। राज्य-परिषद में २५० से अधिक सदस्य नहीं होंगे। इनमें से १२ सदस्यों को राष्ट्रपति नामजद करेगा और बाकी राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। इन प्रतिनिधियों का चुनाव राज्यों की विधान-सभाओं

के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होगा। लोकसभा में ५०० से अधिक सदस्य नहीं रहेंगे। इन सदस्यों के निर्वाचन में संघ के वे सभी स्त्री-पुरुष मत दे सकेंगे, जिनकी उम्र २१ वर्ष से ऊपर हो। प्रत्येक साढ़े सात लाख की आबादी पर कम-से-कम एक सदस्य अवश्य चुना जायगा। लोकसभा की अवधि पाँच बरस होगी। लेकिन विशेष परिस्थिति में इसे बढ़ाया या घटाया जा सकता है। राज्य-परिषद स्थायी संस्था है, लेकिन इसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष के खतम होने पर अवकाश ग्रहण करेंगे। कानून बनाने में दोनों-सभाओं के अधिकार समान होंगे, लेकिन बजट अर्थात् सरकारी आयव्यय का लेखा मञ्जूर करने का पूरा अधिकार लोक-सभा को ही होगा। मंत्रि-परिषद भी सिर्फ लोक-सभा के प्रति ही उत्तरदायी रहेगी।

उन राज्यों की, जो पहले गवर्नर के प्रांत और देशी रियासतें कहलाते थे, शासन व्यवस्था करीब-करीब संघ की ही तरह होगी। राज्य के प्रधान क्रमशः राज्यपाल और राजप्रमुख होंगे और उन्हीं के नाम में शासन-सम्बन्धी सभी काम किये जायँगे। राज्यपाल और राजप्रमुख की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। लेकिन असल में, संघ की तरह यहाँ भी शासन मंत्रिपरिषद के हाथ में रहेगा, जिसका प्रधान मुख्य मंत्री कहा जायगा और जो राज्य की विधान सभा के प्रति उत्तरदायी रहेगी।

कानून बनाने के लिए प्रत्येक राज्य में एक विधान-मंडल रहेगा। कहीं इसमें दो सदन रहेंगे, कहीं एक जो विधान-परिषद और विधान-सभा कहे जायँगे। जहाँ एक ही सदन रहेगा वहाँ उसे विधान-सभा के नाम से पुकारा जायगा। किसी भी राज्य की विधान-सभा में ५०० से अधिक या ६० से कम सदस्य नहीं रहेंगे। ये सदस्य बालिग मताधिकार के आधार पर चुने जायँगे, अर्थात् इनके चुनाव में इस राज्य के वे सभी स्त्री-पुरुष वोट दे सकेंगे, जिनकी उम्र २१ बरस या इससे ऊपर हो। प्रत्येक ७५,००० की जन-संख्या पर एक से अधिक सदस्य नहीं चुना जायगा। किसी राज्य की विधान-परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या के एक चौथाई से अधिक, और किसी भी हालत में ४० से कम, नहीं होगी। इसके सदस्य सीधे तौर पर जनता द्वारा नहीं चुने जायँगे, बल्कि कुछ राज्यपाल या राज-

प्रमुख द्वारा नामजद और कुछ विश्वविद्यालयों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा निर्वाचित होंगे। इन दोनों सदनों की अवधि संघ की संसद के दोनों सदनों की तरह ही होगी और इनके अधिकार भी करीब-करीब वैसे ही होंगे।

तीसरी श्रेणी के राज्यों की शासन व्यवस्था करीब-करीब वैसी ही रहेगी, जैसी पहले चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों की थी। उनके शासन की जिम्मेदारी संघ की सरकार पर होगी। आगे चल कर अगर संघ की संसद् चाहे, तो उन राज्यों में भी विधान-मंडल कायम किये जा सकते हैं और वहाँ की जनता के प्रतिनिधियों को शासन का काम सौंपा जा सकता है।

संघ और राज्यों के शासन क्षेत्र निश्चित कर दिये गये हैं। वे बातें जिनसे समूचे देश का सरोकार है, जैसे देश की रक्षा, परराष्ट्र सम्बन्ध, रेल, तार, डाक संघ सरकार के मातहत रखी गई हैं। जो बातें सिर्फ अलग-अलग राज्यों के भीतर के शासन से सम्बन्ध रखती हैं, जैसे पुलिस, जेल, शिक्षा, स्थानीय शासन इत्यादि उन पर पूरा अधिकार राज्यों की सरकारों को दिया गया है। कुछ ऐसी बातें हैं जिनका राज्यों की भीतरी हालत से सम्बन्ध है, फिर भी उनका सभी राज्यों में एक तरह का होना वांछनीय है, जैसे कचहरियों में लागू होने वाले नियम, सामाजिक या आर्थिक योजना, समाचार-पत्र इत्यादि। इनके सम्बन्ध में संघ और राज्य दोनों की सरकारों को अधिकार दिया गया। इसका यह अर्थ है कि किसी राज्य का विधान-मंडल इन बातों के सम्बन्ध में नियम बना सकेगा, लेकिन अगर संघ और राज्य के नियमों में भेद होगा, तो संघ का नियम ही जायज समझा जायगा और लागू होगा। इन तीनों तरह के विषयों की अलग-अलग सूची संविधान में दी हुई है; जिनके नाम क्रमशः संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची हैं। ऐसे विषय जो इन तीनों सूचियों में से किसी में नहीं रखे गये हैं संघ सरकार के मातहत होंगे।

संविधान में न्याय-विभाग या न्यायपालिका की भी व्यवस्था की गई है। संघ का एक सबसे उच्च न्यायालय होगा जिसे सुप्रीम कोर्ट या उच्चतम न्यायालय कहा जायगा। राज्य के सबसे ऊँचे न्यायालय को उच्च न्यायालय या हाईकोर्ट कहा जायगा। इन न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। ऐसा करते समय राष्ट्रपति, अवसर के मुताबिक भारत के मुख्य न्यायाधिपति या

राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति और इस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से भी परामर्श लेगा। इन न्यायाधीशों को दूसरे पदाधिकारियों की तरह सरकार की मर्जी पर बर्खास्त नहीं किया जा सकेगा। उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को संसद द्वारा पास किये गये प्रस्ताव पर ही बर्खास्त किया जा सकेगा। प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के अलावे ज़िलों, सब-डिविजनों इत्यादि में और भी छोटे-छोटे न्यायालय रहेंगे।

आपत्ति या संकट-काल में शासन चलाने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। जब देश के बाहर से आक्रमण या देश के भीतर अशान्ति या उथल-पुथल का खतरा उपस्थित हो तब राष्ट्रपति इस आशय की घोषणा कर सकेगा। इस घोषणा के बाद संकट का सामना करने के लिए राष्ट्रपति को कई तरह के विशेष अधिकार प्राप्त होंगे। वह अगर जरूरत समझेगा तो किसी राज्य के साधारण संविधान को स्थगित कर, उस राज्य के शासन का सभी भार अपने ऊपर ले सकेगा।

संविधान के संशोधन की भी व्यवस्था की गई है। अगर किसी साधारण नियम में संशोधन करना हो, तो संघ की संसद् के दोनों सदनों में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो तिहाई के बहुमत के पक्ष में रहने से यह किया जा सकता है। लेकिन जो अधिक महत्त्वपूर्ण नियम हैं, उनमें कोई संशोधन तभी हो सकेगा जब पहले दो श्रेणी के राज्यों में से कम से कम आधे के विधान-मंडलों को भी यह संशोधन मंजूर हो।

संविधान में पिछड़ी जातियों को कुछ विशेष सुविधाएँ दी गई हैं। कुछ जातियों के लिए संसद् और राज्यों के विधान-मंडलों में कुछ जगहें सुरक्षित रखी जायँगी। पिछड़े हुए या पहाड़ी इलाकों के शासन के लिए कुछ विशेष नियम बनाये गये हैं। संघ और राज्यों के भिन्न-भिन्न पदों पर नियुक्ति करने में सरकार को राय देने के लिए पब्लिक सर्विस कमीशन या लोक-सेवा-आयोग नाम की संस्था रहेगी। इसकी व्यवस्था इसलिए की गई है जिससे कोई पक्षपात नहीं हो सके। संसद और राज्यों के विधान-मडंलों के निर्वाचन की देखभाल के लिए राष्ट्रपति एक निर्वाचन-आयोग या एलेक्शन कमीशन का निर्माण

करेगा, जिसका प्रधान मुख्य निर्वाचन आयुक्त या चीफ एलेक्शन ऑफिसर होगा। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होगी, लेकिन संविधान लागू होने के बाद शुरू में पन्द्रह बरस तक अंग्रेजी में ही सभी सरकारी काम होंगे। हाँ अगर राष्ट्रपति चाहे तो पन्द्रह बरस की अवधि के खतम होने के पहले भी अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के प्रयोग का भी आदेश दे सकता है। यही नये संविधान की संक्षिप्त रूपरेखा है।

संविधान की विशेषताएँ

दूसरे संविधानों की तरह भारत के नये संविधान की भी अपनी विशेषताएँ हैं। सबसे पहली बात जो ध्यान देने लायक है वह यह कि संविधान स्वाधीन भारत के लिए बनाया गया है। इसके पहले भी भारत में कई संविधान चालू हो चुके हैं, जैसे १९१९ में या १९३५ में। लेकिन ये संविधान परतंत्र भारत के लिए बनाये गये थे। उनके अनुसार सर्वोच्च सत्ता या प्रभुता भारत में नहीं, बल्कि ब्रिटिश पार्लियामेंट में स्थित थी। लेकिन इस संविधान के अनुसार सभी शक्ति भारत के हाथ में है और भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। इसके अलावे, यह संविधान पहले के संविधानों की तरह ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा नहीं, बल्कि भारत की संविधान-सभा द्वारा बनाया गया है। इस तरह यह ऊपर से लादा गया संविधान नहीं, बल्कि देश की उपज है।

इस संविधान की दूसरी विशेषता यह है कि इसके अनुसार करीब करीब समूचे देश के लिए एक ही तरह की व्यवस्था है। इसके पहले जो संविधान भारत में चालू हुए थे, उनके अनुसार गवर्नरों के प्रान्तों और देशी रियासतों की शासन व्यवस्था एक दूसरे से बिलकुल भिन्न थी। लेकिन इस नये संविधान के अनुसार यह भिन्नता करीब करीब खतम हो गई है, और दोनों की शासन-व्यवस्था संविधानमें कोई महत्त्वपूर्ण भेद नहीं रह गया है। हाँ, इतना भेद अवश्य है कि राज्य का प्रधान एक जगह राज्यपाल और दूसरी जगह राजप्रमुख कहा जायगा। लेकिन यह सिर्फ नाम का भेद है। असल में दोनों जगह शासन का काम मंत्रि-परिषद् ही करेगी, जो विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होगी।

इस संविधान के अनुसार भारत एक प्रजातंत्र या गण-राज्य रहेगा। यह भी इसकी एक विशेषता ही है। कितने ऐसे स्वाधीन देश हैं, जहाँ शासन

का प्रधान राजा है, जैसे इंगलैंड । इन देशों को राजतंत्र कहा जाता है । लेकिन भारत का प्रधान कोई राजा नहीं होगा । यहाँ का प्रधान राष्ट्रपति होगा, जो यहाँ की जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित होगा और एक बार चुने जाने पर पाँच बरस के लिए ही अपने पद पर रह सकेगा ।

राजा के रहने या नहीं रहने से ही किसी देश का संविधान लोकतंत्रात्मक नहीं हो जाता । ब्रिटेन में राजा है लेकिन वहाँ पूरा लोकतंत्र है, स्पेन में राजा नहीं है, लेकिन वहाँ अधिनायकशाही है, लोकतंत्र नहीं । भारतीय संविधान की यह विशेषता है कि इसके द्वारा लोकतंत्र स्थापित करने की कोशिश की गई है । इक्कीस बरस से या उसके ऊपर के प्रत्येक भारतवासी को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, चाहे धनी हो या गरीब, वोट का अधिकार दिया गया है । बालिग मताधिकार के आधार पर ही संघ की संसद् और राज्यों के विधानमंडलों का निर्माण होगा । संघ और राज्य के मन्त्रिमंडल, जिनके हाथ में हुकूमत की बाग-डोर रहेगी, इन्हीं के बहुमत के आधार पर कायम होंगे, और तभी तक कायम रह सकेंगे, जब तक इस बहुमत का उनमें विश्वास हो । इस तरह भारत का यह संविधान एक लोकतंत्रात्मक संविधान है ।

इस संविधान के अनुसार भारत में धर्म निरपेक्ष राज्य (Secular State) की स्थापना की गई । संघ या राज्य किसी भी सरकार को किसी धर्म से कोई सरोकार नहीं होगा । भारत में बसने वाले सभी लोग यहाँ के नागरिक समझे जायँगे और उनके अधिकार समान होंगे, चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई पारसी, बौद्ध, जैन, लिङ्गायत किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के हों । सभी को अपने धर्म पर चलने की पूरी आजादी रहेगी, और सरकार किसी के धार्मिक विश्वासों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी । धर्म के नाम पर किसी तरह का पक्षपात भी नहीं होगा । राजनीतिक संगठन में आधुनिक प्रवृत्ति इसी ओर है । लेकिन अभी भी कुछ ऐसे देश हैं, जो मध्य युग की परम्परा को ढोये चल रहे हैं और एक विशेष धर्म से अपने को सम्बन्धित रखे हुए हैं । उदाहरण के लिए, पाकिस्तान एक इस्लामिक राज्य घोषित किया गया है । स्पष्ट है कि वहाँ, इस्लाम को मानने वाले और इसको नहीं मानने वाले, दोनों की स्थिति एक सी नहीं होगी ।

लेकिन भारत में हिंदुओं के बहुमत के होते हुए भी, इसे हिन्दू-राज्य नहीं घोषित किया गया है और संविधान में सभी धर्मावलम्बियों को एक ही दृष्टि से देखा गया है। यहाँ तक कि संविधान में यह व्यवस्था भी कर दी गई है कि सरकारी स्कूलों में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाय। ऐसा इसलिए नहीं किया गया है कि धर्म के व्यापक सिद्धान्तों से संविधान को कोई विरोध है। यह सिर्फ इसलिए किया गया है कि धार्मिक शिक्षा के कारण जो धार्मिक संकीर्णता फैलती है वह नहीं फैलने पावे और भारत में सभी धर्म के मानने वाले बिना किसी बाधा के रह सकें। आज की परीस्थिति में यह भारतीय संविधान की एक बड़ी विशेषता है।

भारतीय संविधान संघीय (Federal) है। सभी संविधान संघीय नहीं होते। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन का संविधान संघीय नहीं है। वहाँ संविधान के अनुसार एक ही सरकार है और समूचे देश पर उसी का शासन है। लेकिन संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का संविधान संघीय है। वहाँ संविधान के अनुसार केन्द्रीय अथवा संघ सरकार और राज्यों के शासन क्षेत्र अलग अलग बँटे हुए हैं। भारत का संविधान भी इसी तरह का है। यहाँ के संघ और राज्यों की सरकारों के अधिकार निश्चित कर दिये गये हैं और अगर संघ और राज्य में किसी अधिकार के सम्बन्ध में कोई मतभेद हो, तो उनका मुकदमा उच्चतम न्यायालय में सुना जायगा और इसका निर्णय सबको मान्य होगा। भारत ऐसे बड़े देश के लिए संघीय संविधान बनाना ही उचित समझा गया।

भारतीय संविधान की यह एक विशेषता है कि संघीय संविधान होते हुए भी यहाँ की केन्द्रीय सरकार काफी मजबूत रखी गई है। संविधान में संघ को राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तियाँ दी गई हैं। संघ और राज्यों की सीमा निर्धारित करने के बाद जो शक्तियाँ बच गई हैं (Residuary Powers) वे भी संघ सरकार को ही सौंपी गई हैं। राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा पास किये गये बहुत से विधेयक (Bills) तब तक अधिनियम (Acts) नहीं बन सकते जब तक राष्ट्रपति उन पर अपनी अनुमति नहीं दे दे। राज्यपाल की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करेगा। विशेष परिस्थिति में संघ की संसद राज्य सूची में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में भी अधिनियम बना सकेगी। इसके अलावे

भारत में एकता की भावना बराबर बनी रहे इसको ध्यान में रखते हुए संविधान में एक ही नागरिकता की व्यवस्था की गई है। कई संघीय संविधानों में दो-दो नागरिकता रहती है और एक व्यक्ति अपने राज्य का और संघ का अलग-अलग नागरिक रहता है। यहाँ पर सभी भारत के नागरिक होंगे और कोई अलग अपने राज्य का नागरिक नहीं होगा। भारत के संघ और राज्यों की न्यायपालिका (अर्थात् न्याय-विभाग—Judiciary) भी कई दूसरे संघीय देशों की न्यायपालिका की तरह बिल्कुल अलग-अलग नहीं रखी गई हैं, बल्कि एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। कुछ बातों में राज्य के उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ संघ के उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। संकटकालीन परिस्थिति में तो राज्य के शासन के सभी काम संघ सरकार अपने जिम्मे कर ले सकती है।

किसी संविधान की विशेषताओं पर विचार करते समय यह भी देखा जाता है कि वहाँ राष्ट्रपति का शासन है या संसद का (Presidential or Parliamentary Government) अर्थात् वहाँ की कार्यपालिका स्वतंत्र है या विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में शासन का काम मंत्रिमंडल के जिम्मे है जो संसद के प्रति उत्तरदायी है। इसे संसद-मूलक संविधान कहा जायगा। दूसरी तरफ अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र का शासक वहाँ का राष्ट्रपति है जो स्वतंत्र है और ब्रिटेन के मंत्रिमंडल की तरह विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि जहाँ भी राष्ट्रपति हो, वहाँ उसी का शासन हो। उदाहरण के लिए, फ्रांस में राष्ट्रपति है, लेकिन वहाँ का शासक वह नहीं है। वह इंगलैंड के राजा के ही समान है और शासन का काम मंत्रिमंडल के हाथ में है जो वहाँ के विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी है। भारत का संविधान भी बहुत कुछ इस इसी तरह का है। यहाँ भी राष्ट्रपति रहेगा और शासन के सभी काम उसी के नाम में होंगे। लेकिन असल में शासन का काम मंत्रिमंडल के हाथ में रहेगा और यह मंत्रिमंडल संसद के प्रति उत्तरदायी रहेगा। राज्यों के सम्बन्ध में भी इसी तरह की व्यवस्था है। वहाँ भी राज्यपाल या राजप्रमुख सिर्फ नाम के लिए ही शासक होंगे, असल में शासन का काम मन्त्रिपरिषद् करेगी जो विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होगी। इस लिए भारत का संविधान संसद-मूलक है।

भारतीय संविधान की एक विशेषता यह भी है कि विधान-मंडलों के हाथ में मंत्रिमंडल के काम की देखरेख का अधिकार देते हुए भी कार्यपालिका को मजबूत बनाने की कोशिश की गई है। शासन का काम तो मंत्रि-परिषद के हाथ में रहेगा ही, कानून बनाने का अधिकार भी कुछ अंश में उसे दे दिया गया है। जब विधान-मंडल की बैठक नहीं चल रही हो, उस समय जरूरत पड़ने पर संघ में राष्ट्रपति के और राज्य में राज्यपाल या राजप्रमुख के नाम से थोड़े दिनों के लिए कानून निकाले जा सकते हैं, जिन्हें अध्यादेश (Ordinance) कहा जायगा। हाँ, विधान-मंडल की बैठक होने पर उसकी स्वीकृति ले लेने पर ही, यह कानून स्थाई हो सकेगा, लेकिन इससे इस अधिकार का महत्त्व कम नहीं होता है।

भारतीय संविधान के अनुसार न्यायपालिका को सर्वोच्च स्थान दिया गया है (Supremacy of the Judiciary)। इंगलैंड में वहाँ की संसद को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और वह जैसा चाहे वैसा कानून बना सकती है। वहाँ के न्यायालयों का काम सिर्फ देखना है कि संसद द्वारा बनाये गये कानून का ठीक-ठीक पालन होता है या नहीं। अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में ऐसी बात नहीं है। वहाँ संविधान द्वारा सब के अधिकार निश्चित कर दिये गये हैं और अगर वहाँ के विधान-मंडल द्वारा कोई कानून बनता है, तो न्यायालय में इस बात की जाँच हो सकती है, कि वह कानून संविधान के अनुसार जायज है कि नहीं। भारत में भी न्यायालयों को यह अधिकार दिया गया है। संविधान लागू होने के एक साल के भीतर ही यहाँ के उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय संघ की संसद और कई राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाये गये कितने कानूनों को यह कह कर अवैध करार दे चुके, कि वे संविधान के अनुच्छेदों के अनुकूल नहीं हैं। इस तरह यहाँ के न्यायालय संविधान के संरक्षक हैं, और विधान-मंडल द्वारा बनाये गये कानूनों को अवैध घोषित कर सकते हैं।

इस संविधान के अनुसार नागरिकों की व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा की गई है। संविधान में नागरिकों को अपना विचार व्यक्त करने, संघ बनाने, सभा करने इत्यादि की आजादी दी गई है। यह ठीक है कि इन अधिकारों

के साथ तरह-तरह की शर्तें लगा दी गई हैं और विशेष परिस्थिति में सरकार को इन अधिकारों पर रुकावट डालने का भी अधिकार दे दिया गया है। लेकिन इससे इनका महत्त्व नहीं खतम होता है। न्यायपालिका को सर्वोच्च स्थान देकर संविधान ने नागरिकों को व्यक्तिगत स्वाधीनता पर अनुचित प्रतिबन्ध से मुक्ति पाने का रास्ता दे दिया है। पिछले एक साल में इस रास्ते का उपयोग भी किया गया है और इससे व्यक्तिगत स्वाधीनता को सुरक्षित करने में सहायता मिली है। कई अवसरों पर उच्चतम न्यायालय और उच्च-न्यायालयों ने कई कानूनों या उनके कुछ अंशों को यह कह कर अवैध करार दिया है कि उनसे संविधान द्वारा सुरक्षित व्यक्तिगत स्वाधीनता पर रुकावट पड़ती है।

किसी संविधान की विशेषताओं पर विचार करते समय यह प्रश्न भी उठता है कि वह संविधान आसानी से संशोधित किया जा सकता है या कठिनाई से (Flexible or Rigid Constitution)। आसानी से संशोधित किये जाने वाले संविधान में संशोधन के लिए किसी विशेष प्रक्रिया (Procedure) की आवश्यकता नहीं पड़ती; संविधान में संशोधन और साधारण विधेयक के पास होने के एक ही तरीके रहते हैं।[1] इंगलैंड का संविधान ऐसा ही है। वहाँ संविधान में संशोधन करने वाला विधेयक भी संसद में उसी तरह पास किया जाता है। जिस तरह और साधारण विधेयक; इसके लिए कोई दूसरा तरीका नहीं है। लेकिन अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र के संविधान को कठिनाई से संशोधित होनेवाले संविधानों की श्रेणी में रखा जायगा; क्योंकि इसके लिए वहाँ एक विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है। अब प्रश्न है कि भारतीय संविधान किस श्रेणी में रखे जाने लायक है। जो अनुच्छेद बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उनका संशोधन तो संसद विधान-मंडल साधारण रीति से कर सकती है। लेकिन अधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेदों के संशोधन के लिए विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है (जिसे ऊपर संविधान की रूपरेखा देते समय बताया गया है)। इसलिए इस संविधान को कठिनाई से बदले जा

---

१. C. F. Strong. Modern Political Constitutions. पृष्ठ ६५।

सकने वाले संविधानों की श्रेणी में रखना ही अधिक उचित होगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय संविधान में संशोधन करना ठीक उतना ही कठिन है जितना अमेरिकन संविधान में।

संविधान के कुछ दोष

भारतीय संविधान में कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं। संविधान के अनुसार भारत एक प्रजातंत्र देश है। लेकिन यह प्रजातंत्र अभी अधूरा है। दूसरी श्रेणी के राज्यों (पहले की देशी रियासतों) में जो व्यक्ति राजप्रमुख के पद पर रखे गये हैं वे पहले के देशी नरेश ही हैं। यह ठीक है कि इन राज्यों में शासन का काम मंत्रिपरिषद करेगी जो विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होगी। लेकिन इससे राजप्रमुख के पद का महत्त्व नहीं खतम हो जाता। और यह स्पष्ट है कि ये राजप्रमुख अपने पद पर इसीलिए हैं चूँकि राजवंश में उनका जन्म हुआ है और वे राजा होने के अधिकारी समझे गये हैं। उनके राजप्रमुख होने का कोई दूसरा कारण नहीं है। ऐसा राजतंत्र में होता है, गणतंत्र में नहीं। भारत के एक हिस्से में जब तक राजतंत्र रहेगा, तब तक इसे पूर्ण गणतंत्र नहीं कहा जा सकता।

भारतीय संविधान में लोकतंत्र (Democracy) भी अधूरा रखा गया है। लोकतंत्र के दो रूप होते हैं—राजनीतिक और आर्थिक। युरप, अमेरिका इत्यादि के अधिकांश देशों में राजनीतिक लोकतंत्र है, लेकिन अभी वहाँ आर्थिक लोकतंत्र नहीं है। इसी तरह रूस में आर्थिक लोकतंत्र तो बहुत कुछ है, लेकिन राजनीतिक लोकतंत्र नहीं है। जिस तरह राजनीतिक लोकतंत्र का अर्थ होता है शासन पर जनता का अधिकार, उसी तरह आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ होता है धन का न्यायोचित बँटवारा और उत्पादन के साधनों पर सब का समान अधिकार। दोनों के साथ रहने के बिना लोकतंत्र पूरा नहीं हो सकता। यही क्यों, एक के बिना दूसरा भी अधूरा रह जाता है। भारतीय संविधान राजनीतिक दृष्टि से तो बहुत कुछ लोकतंत्रात्मक है, लेकिन आर्थिक दृष्टि से नहीं। वोट के जरिए शासन-तंत्र पर जनता को अधिकार मिल गया है, लेकिन उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार नहीं है। सम्पत्ति को एक मूल

अधिकार मान लिया गया है और किसी को बिना मुआवजा दिये उसकी सम्पत्ति से वञ्चित नहीं किया जा सकता। इस देश के उत्पादन के साधनों पर अभी सरकार या समाज का नहीं; कुछ व्यक्तियों का अधिकार है और वे भी उनकी सम्पत्ति के ही भाग हैं। इसलिए सम्पत्ति को बुनियादी अधिकार क़रार देने का यह अर्थ हुआ कि देश का धन और इसके उत्पादन के साधन मुट्ठी भर लोगों के हाथ में रहेंगे। यह आर्थिक लोकतंत्र के विरुद्ध है।

राजनीतिक दृष्टि से भी लोकतंत्र पर कई रुकावटें डाल दी गई हैं। संघ सरकार को आवश्यकता से अधिक अधिकार दे दिये गये हैं। संघ और राज्यों के अधिकारों की सीमा निर्धारित करते समय संघ को ही अधिक अधिकार मिले हैं। इसके बाद राज्य के अधिकार-क्षेत्र में भी संघ सरकार को हस्तक्षेप करने का काफी मौका दिया गया है। राज्य के विधान-मंडल द्वारा पास किये गये। बहुत से विधेयकों के अधिनियम बनने के पहले राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता होगी। इसका फल यह होगा कि राज्य के क्षेत्र में भी राज्य की जनता के प्रतिनिधियों को अपना निर्णय करने की स्वतंत्रता नहीं रहेगी। यह लोकतंत्र के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। संघ और कुछ राज्यों के विधान मंडलों में दो सदनों का रहना भी व्यर्थ और हानिकारक ही है। नीचे के सदन में जनता के प्रतिनिधि बैठेंगे। ऊपर के सदन का चुनाव सीधे जनता द्वारा नहीं होगा। इसमें अधिकतर वैसे ही लोग आने की कोशिश करेंगे जो सीधे जनता के सामने जाने की हिम्मत नहीं रखते। इस सदन को कोई विशेष कार्य भी नहीं सौंपा गया है। इसलिए नीचे के सदन में जनता के प्रतिनिधि जो निर्णय करेंगे, उसी की नुक्ताचीनी में इसका अधिकांश समय व्यतीत होगा।

भारत बराबर धर्म-निरपेक्ष राज्य रह सके इसके लिए भी समुचित व्यवस्था नहीं की गई है। सरकारी और सरकार से मदद पानेवाले स्कूलों में तो धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकेगी। लेकिन और स्कूल धार्मिक शिक्षा दे सकेंगे। इससे धार्मिक कट्टरता के फैलने की सम्भावना रह जाती है। चाहिए तो यह था कि किसी भी स्कूल में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। इसके अलावे संविधान में यह व्यवस्था भी रखनी चाहिए थी कि धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर कोई

राजनीतिक दल नहीं बन सकता। लेकिन इस तरह की व्यवस्था नहीं की गई है। अगर धर्म और सम्प्रदाय के अधार पर राजनीतिक दलों का निर्माण होता रहे, तो कौन कह सकता है कि भारत धार्मिक पक्षपात से बराबर के लिए बचा रह सकता है ! कम से कम खतरा तो रहता ही है।

न्यायपालिका के सम्बन्ध में संविधान में जो नियम बनाये गये हैं, वे भी दोषों से बिलकुल बचे नहीं हैं। न्यायाधीशों की बहाली और बर्खास्तगी के सम्बन्ध में जो नियम बनाये गये हैं, वे तो प्रशंसनीय हैं और उनके परिणाम-स्वरूप वे बहुत हद तक स्वतन्त्र और निष्पक्ष रह सकेंगे। लेकिन न्यायाधीश के पद से अवकाश-ग्रहण करने के बाद दूसरी नौकरी पाने पर कोई रोक नहीं लगाई गई है। इससे कुछ न्यायाधीश अवकाश-ग्रहण के बाद किसी दूसरी नौकरी की लालच में उच्च अधिकारियों को खुश रखने की बात सोच सकते हैं। इससे उनकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता में बाधा पड़ने की सम्भावना रह जाती है। एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों के तबादले की जो व्यवस्था रखी गई है, उसका भी किसी स्वाधीन न्यायाधीश को 'रास्ते पर लाने' के लिए प्रयोग किया जा सकता है। कार्यपालिका और न्यायपालिका को एक दूसरे से बिलकुल अलग करने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है और इसे राज्य-नीति के निर्देशक तत्वों में देकर सरकार की मर्जी पर छोड़ दिया गया है। यह सबसे बड़ा दोष है। जब तक यह नहीं किया जायगा, तब तक न्यायालय पूरी तरह से निष्पक्ष नहीं हो सकते।

इस संविधान में धनी वर्ग के स्वार्थों की रक्षा के लिए तो विशेष व्यवस्था की गई है, पर गरीबों के लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। संविधान के ३१ वें अनुच्छेद के अनुसार किसी की सम्पत्ति बिना मुआवजे के नहीं ली जा सकेगी। इससे बड़े-बड़े भूमिपतियों और पूञ्जीपतियों के स्वार्थों की रक्षा होती रहेगी। २९१ वें और ३६२ वें अनुच्छेदों के अनुसार देशी नरेशों के स्वार्थों की रक्षा की गई है। ३१४ वें अनुच्छेद के अनुसार बड़े-बड़े अफसरों का स्वार्थ सुरक्षित किया गया है। लेकिन संविधान में ऐसा एक भी अनुच्छेद नहीं है, जिससे गरीबों के आर्थिक स्वार्थों की रक्षा हो। न्याय तो यह कहता है कि जिस तरह बड़े बड़े अफसरों का वेतन सुरक्षित कर दिया गया है, उसी तरह साधारण

मजदूरों का कम से कम वेतन भी संविधान में सुरक्षित कर देना चाहिए था। नौकरी पाने, शिक्षा पाने इत्यादि अधिकारों की भी संविधान में चर्चा नहीं की गई है। हाँ, राज्यनीति के निर्देशक तत्वों में इन्हें अवश्य रखा गया है, लेकिन ये सिर्फ शुभ कामना की तरह हैं, इनको कानून का बल नहीं प्राप्त है। धनी वर्ग के आर्थिक स्वार्थों को संविधान में सुरक्षित कर देना सिर्फ अन्याय ही नहीं, आगे के सुधारकों और राष्ट्रनिर्माताओं के रास्ते में बड़ा रोड़ा अटकाना भी है। आज की परिस्थिति में सामाजिक और आर्थिक निर्माण की कोई योजना तभी सफल हो सकती है, जब कि धन का बँटवारा न्यायपूर्ण हो और सबको समान अवसर मिले। उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण अथवा सामाजीकरण भी आवश्यक है। लेकिन संविधान के इन अनुच्छेदों के रहते यह कैसे हो सकता है।

संविधान-सभा के सदस्यों के चुनाव में भारत की अधिकांश जनता ने कोई भाग नहीं लिया। १९३५ के अधिनियम के अनुसार करीब तेरह-चौदह प्रतिशत भारतीयों को ही वोट देने का अधिकार था। इनके वोट पर जो प्रान्तीय विधान-मंडलों के सदस्य चुने गये, उन्होंने ही संविधान-सभा के सदस्यों के निर्वाचन में भाग लिया। जब प्रान्तीय विधान-मंडलों का चुनाव हो रहा था, उस समय यह स्पष्टतया मालूम भी नहीं था कि यही उस संविधान-सभा का चुनाव करेंगे, जो स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बनावेगी। सिद्धान्त की दृष्टि से यह एक दोष है। व्यावहारिक दृष्टि से भी यह एक भूल है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो सांविधानिक रास्ते पर नहीं चलना चाहते। इस भूल का इस्तेमाल कर ये लोग अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की कोशिश यह कह-कर कर सकते हैं कि यह संविधान भारत की सम्पूर्ण जनता के नहीं, बल्कि इसके सिर्फ तेरह-चौदह प्रतिशत के प्रतिनिधियों द्वारा बनाया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे लोगों को संविधान के प्रति अश्रद्धा फैलाने में इस भूल से मदद मिलेगी। इस सम्बन्ध में कुछ सुधार हो जाता अगर संविधान में संशोधन करना आसान बना दिया गया होता। कम-से-कम पहले दस या पाँच बरसों के लिए तो ऐसा अवश्य कर देना चाहिए था। ऐसा कर देने से बालिग मताधिकार के आधार पर जो नया चुनाव होता, उसमें चुने गये प्रतिनिधियों को संविधान में संशोधन करने का मौका रहता। तब संविधान के दुश्मनों को

वह सहायता नहीं मिलती, जिसकी अभी सम्भावना है। न्याय भी यही कहता है। देश के संविधान के निर्माण-जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य में सम्पूर्ण जनता के प्रतिनिधियों को हाथ बँटाने का अवसर मिलना आवश्यक समझा जाना चाहिए था। अगर संविधान-सभा का बालिग मताधिकार के अनुसार जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन होता, तो उससे संविधान के सिद्धान्तों का सर्वत्र प्रचार होता, जनता की राजनीतिक चेतना बढ़ती और वह संविधान का महत्त्व और उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी समझती। लेकिन ऐसा नहीं किया गया और संविधान में संशोधन करना भी मुश्किल बना दिया गया।

सांविधानिक मार्ग से दोष परिहार सम्भव

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि इस संविधान से वर्तमान व्यवस्था ज्यों की त्यों कायम रहेगी। नये समाज का निर्माण तभी सम्भव हो सकेगा जब इसमें आमूल परिवर्तन किया जाय। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें सिर्फ दोष-ही-दोष है। संविधान में सबको वोट का अधिकार देकर भारत की जनता के सामने एक स्वर्णद्वार खोल दिया गया है। भारत के राज-सिंहासन पर अब भारत की सम्पूर्ण जनता है। शासन अब उन्हीं के हाथ में होगा जिन्हें जनता चाहेगी। संविधान में दोष जरूर हैं। लेकिन अगर जनता चाहे तो सांविधानिक रास्ते पर चलते हुए ही उन दोषों में सुधार भी हो सकता है। संविधान में संशोधन करना उतना आसान अवश्य नहीं है। लेकिन यह एकदम असम्भव या अत्यधिक कठिन भी नहीं है। देश के विधान-मंडल अगर चाहें, तो संविधान में दिये हुए तरीके के अनुसार संशोधन किया जा सकता है। और विधान-मंडलों में जनता के प्रतिनिधि ही बैठेंगे। इसलिए सांविधानिक मार्ग पर चलकर भी नये या वर्गहीन समाज की स्थापना की जा सकती है।

अध्याय ८

प्रस्तावना

भारतीय संविधान में सबसे पहले इसकी प्रस्तावना दी गई है। इसमें यह बतलाया गया है कि भारत में सर्वोपरि प्रभुता जनता में निहित रहेगी और सभी अधिकारों की उत्पत्ति जनता से होगी। प्रस्तावना के शब्द हैं:—

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए दृढ़-संकल्प होकर एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

इन शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'भारत के लोग' ही राजनीतिक सत्ता के अन्तिम अधिकारी हैं और संविधान उन्हीं के नाम में बनाया गया है। यह भी स्पष्ट है कि संविधान के अनुसार भारत एक "सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतंत्रात्मक, गण राज्य" रहेगा।

प्रस्तावना में संविधान के उद्देश्य भी दिये गये हैं। प्रस्तावना के शब्दों में ये उद्देश्य निम्नलिखित हैं:—

"अपने सब नागरिकों के लिए इन बातों को सुरक्षित रखना:
सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय;
विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता;
प्रतिष्ठा और अवसर की समानता;
और उन सब में,
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करनेवाला बन्धुत्व बढ़ाना।"

ये उद्देश्य सचमुच बहुत ऊँचे हैं। लेकिन किसी भी संविधान में प्रस्तावना का कोई कानूनी रूप नहीं होता है और इससे शासन को या जनता को कोई अधिकार नहीं मिल सकते। फिर भी, यह कहना ठीक नहीं होगा कि प्रस्तावना

का कोई महत्व ही नहीं है। इसमें जनता की प्रभुता की घोषणा की गई है। इस तरह यह प्रस्तावना भारतीय संविधान के लोकतंत्रात्मक स्वरूप की आधार-शिला का काम करती है। इसके अलावे जो उद्देश्य इस प्रस्तावना में रखे गये हैं, उनसे भारतीय संविधान पर आदर्शवादिता की मुहर सी पड़ जाती है। फिर इनको दृष्टि में रखे रहने से संविधान के अनुच्छेदों के अध्ययन में सहायता मिलेगी और यह देखना लाभदायक होगा कि वे कहाँ तक प्रस्तावना में दिये ये उद्देश्यों को पूरा करते हैं।

अध्याय. ९

संघ और उसका राज्यक्षेत्र

संविधान के अनुसार भारत राज्यों का संघ होगा। इन राज्यों की संख्या सब मिलाकर अट्टाइस है। इनके अलावे अन्दमान और निकोबार-द्वीप भी भारतीय संघ के ही अंग समझे जायँगे। इन राज्यों के नाम संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग (क), (ख), (ग) और (घ) में दिये हुए हैं। पहले तीन भाग के राज्य क्रमशः पहले के गवर्नरों के प्रांत, भारतीय रियासतें या उनके संघ और चीफ कमिश्नरों के प्रांत हैं। राज्यों के नाम नीचे दिये जाते हैं:—

भाग (क)

(१) आसाम
(२) बिहार
(३) बम्बई
(४) मध्य-प्रदेश
(५) मद्रास
(६) उड़ीसा
(७) पंजाब
(८) उत्तर-प्रदेश
(९) पश्चिमी बंगाल

भाग (ख)

(१) हैदराबाद
(२) जम्मू और काश्मीर
(३) मध्य भारत
(४) मैसोर
(५) पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ
(६) राजस्थान
(७) सौराष्ट्र
(८) त्रावणकोर-कोचीन
(९) विन्ध्य-प्रदेश

भाग (ग)

(१) अजमेर	(६) दिल्ली
(२) भोपाल	(७) हिमाचल-प्रदेश
(३) बिलासपुर	(८) कच्छ
(४) कूच-बिहार	(९) मनीपुर
(५) कुर्ग	(१०) त्रिपुरा

भाग (घ)

अन्दमान और निकोबर-द्वीप

इनके अलावे भारत के राज्य-क्षेत्र में ऐसे अन्य राज्य-क्षेत्र भी समाविष्ट होंगे जो कभी अर्जित किये जायँ।

संसद नये राज्यों को संघ में प्रविष्ट या स्थापित कर सकती है। इसके अलावे किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ाने, घटाने या किसी की सीमा या नाम बदलने का अधिकार भी संसद को दिया गया है। लेकिन इस सम्बन्ध में कोई विधि (कानून) संसद में तभी पेश की जा सकती है जब राष्ट्रपति इसके लिए सिफारिश करे; और राष्ट्रपति के लिए यह जरूरी है कि ऐसा करने के पहले वह प्रस्तावित परिवर्तन से प्रभावित होने वाले राज्यों के विधान-मंडलों के विचार इसके सम्बन्ध में क्या हैं इसकी जानकारी हासिल कर ले। इस तरह के किसी परिवर्तन को संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा।

भारतीय संघ का स्वरूप

इस तरह भारत का संविधान ब्रिटेन या फ्रांस के एकात्मक संविधानों की तरह नहीं, बल्कि अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र, कनाडा और अस्ट्रेलिया के संघीय संविधानों से मिलता-जुलता है। भारत ऐसे बड़े देश के लिए संघीय संविधान ही उपयुक्त भी है। कुछ लोगों नें भारतीय संविधान को संघीय मानने में सन्देह प्रकट किया था। लेकिन उनका यह सन्देह बिल्कुल निराधार है। संघीय संविधान के सभी मुख्य लक्षण भारतीय संविधान में पाये जाते हैं। भारतीय संघ का एक लिखित संविधान है। संविधान में संघ और राज्य दोनों के अधिकारों का बँटवारा भी कर दिया गया है। दोनों के अधिकार-क्षेत्र

अलग-अलग हैं और इन क्षेत्रों में उन पर कोई रोकटोक नहीं है। अगर संघ और राज्य में संविधान-सम्बन्धी किसी बात को लेकर कोई मतभेद पैदा हो जाय, तो उसे दूर करने के लिए और संविधान के सही अर्थ का निर्णय करने के लिए एक स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई है।

लेकिन संघीय संविधान के मुख्य लक्षणों से युक्त होते हुए भी भारतीय संविधान की अपनी विशेषताएँ भी हैं और बहुत बातों में यह और संघीय संविधानों से भिन्न है। इसमें ऐसे-ऐसे नियमों की व्यवस्था की गई है जिसमें देश की एकता तथा शक्ति में किसी तरह भी कमी नहीं आने पावे। रूस की तरह यहाँ के राज्यों को संघ से अलग हो जाने का अधिकार नहीं दिया गया है। अमेरिका की तरह यहाँ राज्यों को अलग-अलग अपना संविधान बनाने का अधिकार नहीं है। यहाँ सभी का एक ही संविधान है। भारतीय संविधान का नागरिकता सम्बन्धी नियम भी अमेरिका की तरह नहीं है। वहाँ पर दुहरी नागरिकता की व्यवस्था है। भारत में ऐसी बात नहीं है। यहाँ राज्यों की अलग नागरिकता नहीं है। कोई किसी भी राज्य में निवास करे, सभी की एक ही, भारतीय नागरिकता है। इसके साथ ही साथ राज्यों के उच्च न्यायालय और संघ के सर्वोच्च न्यायालय को साथ कर एक सुगठित न्यायपालिका का निर्माण किया गया है। अखिल भारतीय नौकरियों की व्यवस्था कर संघ के सभी राज्यों के शासन में एकता कायम करने की कोशिश की गई है। सभी राज्यों में एक ही तरह के दिवानी और फौजदारी कानून (व्यवहार-विधि और दंड-विधि) भी रहेंगे।

इसके अलावे संघ और राज्यों के बीच अधिकारों का विभाजन करते समय संघ-सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया गया है। संघ सूची में संतानवे विषय रखे गये हैं। इन पर संघ सरकार का एकमात्र अधिकार रहेगा। समवर्ती सूची में सैंतालीस विषय हैं। इन पर राज्य की सरकारों के साथ-साथ संघ सरकार का भी अधिकार होगा; इनमें से किसी विषय पर अगर संघ और राज्य की विधियों में भेद होगा, तो संघ की विधि ही जायज समझी जायगी। इसके अतिरिक्त, राज्य-सूची में छियासठ विषय रखे गये हैं। लेकिन इन तीनों सूचियों के अलावे जो विषय बच जाते हैं, उन पर भी संघ सरकार

का ही अधिकार रहेगा। यह व्यवस्था कनाडा के संविधान के समान है, क्योंकि वहाँ भी बचे हुए विषयों पर संघ का अधिकार है। इसके विपरित अमेरिका, अस्ट्रेलिया और स्वीट्ज़रलैंड में बचे हुए विषय राज्यों के अधीन हैं।

भारतीय संघ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे एकात्मक रूप भी दिया जा सकता है। साधारण समय में भी अगर राज्यपरिषद दो तिहाई बहुमत से यह इस तरह का प्रस्ताव पास कर दे, तो जबतक यह प्रस्ताव कायम रहेगा, तबतक के लिए राज्य-सूची में दिये हुए खास-खास विषयों पर भी विधि बनाने का अधिकार संसद को हो जायगा। और अगर आपात या संकटकाल हो, तब तो संघ सरकार को राज्य-सूची के सभी विषयों पर पूरा अधिकार हो जायगा और संसद् इनमें से किसी भी विषय पर विधि या कानून बना सकेगी।

संघ के राज्यक्षेत्र या उसके राज्यों के सम्बन्ध में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इन राज्यों की संख्या और सीमा में परिवर्तन की आशा है। ब्रिटिश भारत के प्रान्त जिस रूप में थे, वे अभी उसी रूप में रख दिये गये हैं। भाषा, संस्कृति इत्यादि के आधार पर उनका पुनर्विभाजन नहीं हुआ है। कभी न कभी यह करना होगा। पहले की भारतीय रियासतों से जो राज्य बनें हैं, उन पर यह बात और भी लागू है। शायद इसीलिए संसद को इस सम्बन्ध में पूरा अधिकार दिया गया है।

अध्याय १०

नागरिकता

तीन तरह के लोग भारत के नागरिक समझे जायँगेः—

(क) जो भारत में बसे हुए हैं।

(ख) जो पाकिस्तान से भारत में आये हैं। और

(ग) जो भारतीय विदेशों में रहते हैं।

जो भारत में बसे हुए हैं, उन्हें भारत का नागरिक होने के लिए तीन में से किसी एक शर्त को पूरा करना होगा। भारत में जिनका जन्म हुआ हो; या जिनके माता-पिता में से किसी एक का भारत में जन्म हुआ हो; या जो पाँच साल से लगातार भारत में रह रहे हों, वे भारत में बसनेवाले सभी लोग संविधान लागू होने के समय यहाँ के नागरिक होंगे।

दूसरी श्रेणी में वे लोग हैं जो पाकिस्तान से भारत में आये हैं। ये लोग भारतीय संविधान लागू होने के समय भारत के नागरिक माने जायँगे यदि इनका या इनके माता-पिता या दादा-दादी या नाना-नानी में से किसी का जन्म विभाजन के पहले के भारत में हुआ हो। लेकिन इसके साथ यह शर्त है कि अगर ये भारत में १९ जुलाई, १९४८ के पहले आये हों, तो आने के दिन से वे साधारणतः इसी देश में रहते हों। अगर ये इस तारीख के बाद आये हों, तो ये भारत के नागरिक तभी माने जायँगे जब वे संविधान लागू होने के पहले भारत के पदाधिकारियों को प्रार्थना-पत्र देकर अपने को भारत का नागरिक रजिस्टर या पंजीबद्ध करा चुके हों। इसके साथ यह शर्त जोड़ दी गई है कि इस तरह कोई भारत का नागरिक नहीं पंजीबद्ध किया जायगा अगर वह प्रार्थना-पत्र देने की तिथि के छः महीने पहले से भारत में रह नहीं रहा हो।

जो मार्च, १९४७ की पहली तिथि के बाद भारत से पाकिस्तान चले (या प्रव्रजन कर) गये हों, वे संविधान के अनुसार भारत के नागरिक नहीं माने जायँगे। लेकिन यह शर्त उन पर नहीं लागू होगा जो पाकिस्तान जाने के बाद फिर स्थायी निवास के लिए परमिट या अनुज्ञा लेकर भारत लौट आये हों और ये भी भारत के नागरिक उसी तरह होंगे जिस तरह वे दूसरे लोग जो १९ जुलाई, १९४८ के बाद पाकिस्तान से भारत में आये हैं।

अन्त में विदेशों में रहने वाले भारतीय आते हैं। अगर उनका या उनके माता-पिता, या दादा-दादी या नाना-नानी में से किसी का जन्म विभाजन के पहले के भारत में हुआ हो और अगर वे विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों में अपने को भारत का नागरिक पंजीबद्ध या रजिस्टर करा लें तो वे भारत के नागरिक माने जायँगें।

जिन लोगों ने अपने मन से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वीकार कर ली हो, उन्हें भारत का नागरिक नहीं समझा जायगा।

इन नियमों के रहते हुए भी संसद को नागरिकता के सम्बन्ध में सभी तरह का नियम बनाने का पूरा अधिकार रहेगा।

नागरिकता के सम्बन्ध में संविधान की यही व्यवस्था है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि और संघीय संविधानों की तरह यहाँ दोहरी नागरिकता नहीं रहेगी। कोई किसी राज्य का नागरिक नहीं होगा; सभी राज्यों के लोग सामान्य रूप से भारतीय नागरिक होंगे। इससे भारत में एकता की भावना कायम रखने में मदद मिलेगी। देश के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण के फलस्वरूप पाकिस्तान से बहुत लोग भारत आये और भारत से पाकिस्तान गए। नागरिकता के लिए नियम बनाते समय पाकिस्तान से भारत में आने वाले लोगों की सुविधा का ख्याल किया गया है और उन्हें कुछ शर्तों के साथ नागरिकता का अधिकार दिया गया है। बहुत से लोग विभाजन के समय साम्प्रदायिक तनातनी और बलवों के चलते भारत से पाकिस्तान चले गये, लेकिन फिर भारत वापस आ गये। इनके लिए भी संविधान में उचित व्यवस्था कर दी गई है और ये भारत के नागरिक मान लिए गये हैं। विदेशों में रहनेवाले भारतीयों को भी भारत का नागरिक बने

रहने की सुविधा दी गई है। विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान में लोगों का आना-जाना शुरू हुआ, उसका अभी एकदम अन्त नहीं हुआ है। इसके अलावे आगे चलकर नागरिकता के सम्बन्ध में और भी नई नई समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। इन्हीं को ध्यान में रखकर इस सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार नियम बनाने का पूरा अधिकार संसद को दे दिया गया है। यह भी उचित ही है।

अध्याय ११

मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान में भारत के सभी नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दिये गये हैं। उन्हें मौलिक कहे जाने के दो कारण हैं। सबसे पहले वे ऐसे अधिकार हैं, जिनका होना प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक विकास के लिए अनिवार्य है। इसके अलावे स्वयं संविधान में जगह पा जाने के कारण इन अधिकारों के साथ सरकार कभी आसानी के साथ छेड़-छाड़ नहीं कर सकती है। इन अधिकारों का उल्लेख संविधान के भाग ३ में किया गया है। वहाँ पर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संविधान के लागू होने के पहले या बाद की कोई भी विधि अगर इन अधिकारों पर कोई रुकावट डालती हो, तो उसे गैर-कानूनी या शून्य समझा जायगा। ये अधिकार निम्नलिखित श्रेणियों में रखे गये हैं:—

१. समता का अधिकार,

२. स्वतंत्रता का अधिकार,

३. शोषण के विरुद्ध अधिकार,

४. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार,

५. संस्कृति और शिक्षा का अधिकार,

६. सम्पत्ति का अधिकार, और

७. संवैधानिक उपचारों का अधिकार,

विधि या कानून की दृष्टि में सभी बराबर समझे जायँगे और सभी को समान रूप से विधि की रक्षा प्राप्त रहेगी। राज्य की तरफ से किसी के खिलाफ उसके धर्म, मूलवंश या नस्ल, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थान के कारण कोई भेदभाव नहीं किया जायगा। राज्याधीन नौकरियों में बहाल होने के लिए सभी नागरिकों को समान अवसर रहेगा। हाँ, कुछ नौकरियों के सम्बन्ध में निवास-सम्बन्धी योग्यता निर्धारित करने का अधिकार संसद को रहेगा। इसके साथ-ही-साथ जहाँ पर किसी अनुन्नत वर्ग या पिछड़ी जाति का प्रतिनिधित्व नौकरियों में पूरा नहीं है, वहाँ पर

उनके लिए कुछ स्थान रक्षित या रिजर्व रखने का अधिकार भी सरकार को होगा। किसी धार्मिक संस्था से सम्बन्धित पद पर, उसी धर्म के माननेवाले रहें, इस तरह की विधि भी लागू रह सकेगी। अस्पृश्यता या छुआछूत का अन्त कर दिया गया है और किसी भी रूप में इस पर आचरण नहीं किया जा सकता। अगर अस्पृश्यता के कारण कोई किसी को अयोग्य ठहरावेगा, तो उसे दंड दिया जायगा। धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी एक के कारण किसी नागरिक को दूकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश अथवा सार्वजनिक कुओं, तालावों, स्नान-घाटों, सड़कों तथा समागम स्थानों के उपयोग पर किसी तरह की रुकावट नहीं रहेगी। हाँ, स्त्रियों और बच्चों के लिए राज्य की तरफ से विशेष प्रबन्ध किया जा सकता है। सेना और विद्या-सम्बन्धी उपाधियों को छोड़कर और सभी तरह की उपाधियाँ उठा दी गई हैं।

सभी नागरिकों को बोलने और अपना विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता का, शान्तिपूर्वक और बिना हथियार के सभा करने का, संस्था या संघ बनाने का, भारत में सभी जगह बिना किसी रोक-टोक के आने-जाने का, भारत के किसी भाग में निवास करने और बसने का, सम्पत्ति हासिल करने, रखने और हटाने का और कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार रहेगा। संविधान में इन अधिकारों पर कई प्रतिबन्ध भी लगा दिये गये हैं। राज्य को अपमान-वचन, अपमान-लेख, मान-हानि और न्यायालय-अवमान के सम्बन्ध में कानून बनाने का पूरा अधिकार रहेगा। इसी तरह सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टाचार, सदाचार, राज्य की सुरक्षा और साधारण जनता या किसी अनुसूचित आदिम जाति के हित के लिए भी इन में से कई अधिकारों पर रोक लगाये जा सकते हैं। इसी आधार पर संविधान के लागू होने के समय ऊपर बताये गये व्यक्तिगत स्वतंत्रता-सम्बन्धी अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने वाले सभी प्रचलित कानूनों को भी पूर्ववत जायज करार दिया गया है।

किसी व्यक्ति को तब तक दंडित नहीं किया जा सकता जब तक यह साबित नहीं किया जाय कि जिस काम के करने के लिए उसे अपराधी करार दिया जा रहा है उस समय के किसी प्रचलित कानून को उसने तोड़ा है। अपराध करने के समय चालू कानून के अनुसार जिस दंड की व्यवस्था हो, उससे अधिक दंड किसी

व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता। किसी को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक सजा नहीं दी जायगी। किसी अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं अपने खिलाफ गवाह या साक्षी बनने के लिए नहीं विवश किया जा सकता। किसी को उसके प्राण अथवा व्यक्तिगत स्वाधीनता से, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (तरीके) के अलावे और किसी तरह से, नहीं वंचित किया जा सकता !

किसी गिरफ्तार व्यक्ति को, बिना शीघ्रातिशीघ्र उसे उसकी गिरफ्तारी का कारण बताए जेल में नहीं रखा जा सकता। उसे अपनी रुचि के वकील से परामर्श लेने या सफाई दिलाने के अधिकार से भी वंचित नहीं किया जा सकता। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जिसे गिरफ्तार कर जेल में रखा गया है, गिरफ्तारी की जगह से मैजिस्ट्रेट की कचहरी तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर चौबीस घंटे के भीतर मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायगा और बिना उसकी (मैजिस्ट्रेट की) आज्ञा के उसे इस अवधि के बाद जेल में नहीं रखा जायगा। ये सुविधाएँ सिर्फ उन्हें नहीं प्राप्त होंगी जो उस समय भारत के शत्रु-देश के नागरिक हों और जो ऐसे कानून के अनुसार जेल में रखे गये हैं जिसमें बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द रखने की व्यवस्था है।

बिना मुकदमे की नजरबन्दी वाले किसी कानून के अनुसार साधारणतः किसी व्यक्ति को तीन माह से अधिक अवधि के लिए नजरबन्द नहीं किया जा सकता। इस अवधि को तीन माह से अधिक, परामर्शदात्री-समिति की सिफारिश पर ही बढ़ाया जा सकता है। इस समिति में वे लोग रहेंगे जो अभी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हों या जो पहले इस पद पर रह चुके हों या जो इस पद पर बहाल होने के योग्य हों। लेकिन संसद को यह अधिकार दिया गया है कि अगर वह चाहे तो उन परिस्थितियों का निर्देश कर सकती है जिनमें किसी को बिना परामर्शदात्री-समिति की सिफारिश के भी तीन माह से अधिक नजरबन्द रखा जा सके। किसी भी हालत में किसी व्यक्ति को संसद द्वारा बनाई हुई विधि में दी हुई अधिक से अधिक अवधि के खतम होने के बाद नजरबन्द नहीं रखा जा सकता। अगर किसी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द किया गया हो, तो यह जरूरी है कि जल्द से जल्द उसे उसकी नज़रबन्दी के कारणों की सूचना और नजरबन्दी की आज्ञा के विरुद्ध आवेदन करने का अवसर दिया जाय। लेकिन इसका यह अर्थ

नहीं है कि सरकार जिन बातों को जाहिर या प्रकाशित करना सार्वजनिक हित के विरुद्ध समझे उसे प्रकाशित करने के लिए वह बाध्य की जा सकती है।

मनुष्यों का व्यापार, बेगार और इसी तरह के दूसरे बलात्श्रम प्रतिषिद्ध (बन्द) कर दिये गये हैं और इस नियम को नहीं मानने वालों को कानून के मुताबिक सजा दी जायगी। हाँ, राज्य को सार्वजनिक कामों के लिए अनिवार्य सेवा का आदेश जारी करने का अधिकार रहेगा। लेकिन ऐसा करते समय राज्य की तरफ से धर्म, नस्ल, जाति या वर्ग, या इनमें से किसी एक के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जायगा। चौदह बरस सेकम उम्र का कोई बच्चा किसी कार-खाने, खान या और किसी खतरनाक काम में नहीं भर्ती किया जायगा।

सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य और अन्य आवश्यक व्यवस्थाओं को मानते हुए सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वाधीनता का और स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने, उसके अनुसार आचरण करने तथा उसके प्रचार करने का अधिकार दिया गया है। सिक्खों को कृपाण धारण करने और उसे लेकर चलने का अधिकार रहेगा। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को धार्मिक और दातव्य उद्देश्यों के लिए संस्थाओं की स्थापना करने और चलाने का, धर्म-सम्बन्धी अपनी बातों का इन्तजाम करने का तथा सम्पत्ति हासिल करने, उसका स्वामित्व धारण करने और उसका प्रबन्ध करने का भी अधिकार रहेगा।

इसके साथ ही साथ राज्य को धार्मिक आचरण से सम्बन्ध रखनेवाले आर्थिक या राजनीतिक बातों और सामाजिक हित और सुधार की व्यवस्था करने या हिन्दुओं की धार्मिक सार्वजनिक संस्थाओं के दरवाजों को, हिन्दू जाति के भीतर के सभी तरह के लोगों के लिए खोलने का पूरा अधिकार है। (यहाँ हिन्दुओं में सिक्ख, जैन और बौद्ध भी शामिल हैं।)

किसी व्यक्ति को इस तरह के किसी कर देने के लिए नहीं बाध्य किया जा सकता जिसे किसी खास धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में खर्च किया जाय। किसी ऐसी शिक्षा-संस्था में, जिसका पूरा खर्च राज्यनिधि से चलता हो, धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायगी। लेकिन यह नियम उस शिक्षा-संस्था पर नहीं लागू होगा जिसका प्रबन्ध तो राज्य की तरफ से होता है, लेकिन जो किसी ऐसे धर्मस्व या न्यास (एण्डाउमेंट और ट्रस्ट) के अनुसार स्थापित किया गया हो

जिसमें धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था हो। कोई व्यक्ति राज्य द्वारा स्वीकृत और राज्यनिधि से सहायता पानेवाली शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में शरीक होने के लिए अपनी या अगर वह नाबालिग है तो अपने संरक्षक की सहमति के बिना नहीं बाध्य किया जा सकता है।

अगर भारत में रहने वाले किसी भी अल्पसंख्यक समूह की अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति हो, तो उसे उनको बनाये रखने का पूरा अधिकार रहेगा। राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्यनिधि से सहायता पाने वाली कोई भी शिक्षा-संस्था किसी नागरिक को, सिर्फ उसके धर्म, मूल, वंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी एक के आधार पर भर्ती करने से नहीं इनकार कर सकती है। सभी अल्पसंख्यकों को, चाहे उनका आधार धर्म हो या भाषा, अपनी पसन्द के अनुसार शिक्षा-संस्थाओं को स्थापित करने और उनका प्रबन्ध करने का अधिकार रहेगा। राज्य की तरफ से सहायता देते समय अल्पसंख्यकों की शिक्षा-संस्थाओं के खिलाफ किसी तरह का भेद-भाव नहीं रखा जायगा।

सम्पत्ति पर अधिकार के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि कोई व्यक्ति बिना कानून के अधिकार के अपनी सम्पत्ति से नहीं वञ्चित किया जा सकता। राज्य सार्वजनिक प्रयोजन के लिए किसी भी तरह की सम्पत्ति पर तभी कब्जा कर सकता है जब इस कब्जे के लिए बननेवाले कानून में ली जाने वाली सम्पत्ति के बदले में देने के लिए प्रतिकर या मुआवजे की व्यवस्था हो। इस कानून में या तो मुआवजे की रकम निश्चित कर दी जायगी या उन सिद्धान्तों और तरीकों का स्पष्टीकरण कर दिया जायगा जिनके मुताबिक मुआवजा दिया जायगा। इसके अलावे किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा पास किया गया ऐसा कानून जिसके अनुसार किसी सम्पत्ति पर कब्जा किया जा रहा हो, तब तक लागू होने लायक नहीं होगा जब तक उस पर राष्ट्रपति की अनुमति नहीं प्राप्त कर ली जाय।

लेकिन मुआवजा-सम्बन्धी यह व्यवस्था ऐसे बिलों पर नहीं लागू होगी जो संविधान के आरम्भ होने के समय किसी राज्य के विधान-मंडल के सामने पेश हों। राज्य के वे कानून भी, जो संविधान के आरम्भ होने के अठारह महीने से अधिक पहले नहीं बनाये गये हों, इसी तरह इस व्यवस्था से मुक्त रहेंगे। इन दोनों के लिए सिर्फ यही जरूरी है कि वे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर लें। इसके बाद

किसी भी न्यायालय में इस आधार पर उनकी आलोचना नहीं की जा सकती कि उन्होंने मुआवज़ा-सम्बन्धी व्यवस्था को भंग किया है।

यह व्यवस्था कोई कर या दंड लगाने, सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति, प्राण और सम्पत्ति पर से खतरे को हटाने, भारत और किसी दूसरे देश के बीच में हुए किसी समझौते को लागू करने और निष्क्रान्त्यणार्थी सम्पत्ति (Evacuee property) के सम्बन्ध में बने हुए कानूनों पर भी नहीं लागू होगी।

ऊपर दिये गये मौलिक अधिकारों की रक्षा की व्यवस्था संविधान में की गई है। अगर कभी इनमें से किसी अधिकार पर कोई रुकावट डालने की कोशिश करे तो प्रत्येक नागरिक को उच्चतम न्यायालय से उसकी रक्षा की माँग करने का हक है। उच्चतम न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह उन अधिकारों की रक्षा करे। इसके लिए वह अपनी सभी साधारण शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। लेकिन उनके साथ ही साथ उसे सरकार, पुलिस, न्यायालय इत्यादि के नाम 'रिट' या विशेष-लिखित आज्ञायें (लेख) जारी करने का भी अधिकार है। ये लेख कई प्रकार के हैं; यथा—हैबियस कारपस, अथवा बन्दी-प्रत्यक्षीकरण अर्थात् बन्दी किये गये व्यक्ति को सामने पेश करना; मैन्डेमस अथवा परमादेश, अर्थात् अधीन न्यायालय के नाम ऊपर के न्यायालय का आदेश; प्रोहीबीशन अथवा प्रतिषेध; कोंवारन्टो अथवा अधिकारपृच्छा अर्थात् इस आशय की आज्ञा कि हमें बतलाओ कि अमुक कार्रवाई किस अधिकार पर की गई; सर्टिओरारी अथवा उत्प्रेषण अर्थात् अधीन न्यायालय से उच्च न्यायालय में कागजात भेजने की आज्ञा। उच्चतम न्यायालय की इन शक्तियों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले, संसद किसी दूसरे न्यायालय को, अपने अधिकार-क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर, इनके प्रयोग का अधिकार प्रदान कर सकती है। सांविधानिक उपचार के इन अधिकारों को संकट-काल के अतिरिक्त और किसी समय में स्थगित नहीं किया जा सकता।

लेकिन जहाँ तक सशस्त्र सेनाओं पर इन मौलिक अधिकारों के लागू होने का सवाल है, संसद को इसका पूरा अधिकार है कि वह विधि द्वारा यह तय कर दे कि उनके लिए इन अधिकारों को कहाँ तक कम अथवा खतम किया जाय। ऐसा

ही नहीं रह जाती। इस तरह संविधान के समानता सम्बन्धी अधिकार पूरे नहीं कहे जा सकते।

स्वतंत्रता-सम्बन्धी अधिकारों की सबसे अधिक आलोचना की गई है। आलोचकों का कहना है कि भाषण देने, सभा करने, संघ बनाने इत्यादि अधिकारों पर इतने प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं कि उनका कुछ भी मूल्य नहीं रह जाता। इसी तरह व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा को भी वे अपूर्ण समझते हैं। मनमानी गिरफ्तारी को रोकने की व्यवस्था को भी वे सन्तोषजनक नहीं मानते। इस सम्बन्ध में उनको सबसे अधिक आपत्ति संविधान के उन अनुच्छेदों से है जिनमें कुछ शर्तों के साथ संसद को बिना मुकदमा चलाये किसी व्यक्ति को नजरबन्द करने के लिए विधि बनाने का अधिकार दिया गया है। ऊपर से देखने पर यह आलोचना ठीक जान पड़ती है। लेकिन कुछ देर विचार करने के बाद इसमें अधिक तथ्य नहीं दिखाई पड़ता। जो कुछ भी हो, इन आलोचनाओं पर अलग-अलग विचार कर लेना ठीक होगा।

सबसे पहले भाषण देने, सभा करने, संघ बनाने इत्यादि अधिकारों पर लगाये गए प्रतिबन्धों को लीजिए। संविधान के आलोचक इन प्रतिबंधों से बहुत घबड़ाते हैं। कुछ तो किसी भी तरह के प्रतिबन्ध को उचित नहीं समझते। लेकिन राजनीति शास्त्र के अध्ययन का अब तक जो विकास हो चुका है उसके आधार पर कोई निष्पक्ष समीक्षक यह नहीं कह सकता कि कोई भी अधिकार सर्वथा निरविच्छिन्न होता है। सभी तरह के अधिकार बराबर "समाज और जनता के व्यापक हितों को सुरक्षित तथा समुन्नत करने के लिए राज्य द्वारा लगाये हुए निर्बन्धों या पाबन्दियों के अधीन होते हैं।" इसलिए सिर्फ प्रतिबन्धों के रहने से ही किसी अधिकार का मूल्य नहीं घट जाता। हाँ, यह जरूर देखना चाहिए कि प्रतिबन्ध उचित हैं अथवा अनुचित। भारतीय संविधान के अनुसार राज्य को इन अधिकारों पर, अपमान-वचन, अपमान-लेख, मानहानि और न्यायालय-अवमान को रोकने, और सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टाचार, सदाचार, राज्य की सुरक्षा और साधारण जनता या किसी अनुसूचित आदिम जाति के हित की रक्षा के लिए प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है। कौन कह सकता है इन परिस्थितियों में प्रतिबन्ध

लगाने का अधिकार राज्य को देकर संविधान ने गलती की है। चाहे शब्द जो भी हों लेकिन करीब-करीब प्रत्येक देश की सरकार इन परिस्थितियों में जनता के अधिकारों पर रोक लगा सकती है, इसे कौन इनकार कर सकता है ? यह ठीक है कि सार्वजनिक व्यवस्था, राज्य की सुरक्षा इत्यादि शब्द बहुत व्यापक और कई अर्थों में प्रयोग करने लायक हैं। इसलिए इसकी सम्भावना जरूर रहती है कि कभी कोई सरकार इन शब्दों की आड़ में इस अधिकार का अनुचित प्रयोग करे। लेकिन किसी चीज के अनुचित प्रयोग की सम्भावना से उसकी आवश्यकता नहीं खतम हो जाती। यह बराबर याद रखना चाहिए कि किसी अधिकार के प्रयोग की शक्ति का होना और उस अधिकार का अनुचित प्रयोग करना, ये दोनों दो चीजें हैं। आजकल भारत में संघीय तथा भिन्न भिन्न राज्य की सरकारों की तरफ से इस अधिकार का जो प्रयोग हो रहा है उसे कुछ लोगों की राय में अनुचित कहा जा सकता है। लेकिन ऐसे अवसर भी तो आ सकते हैं जब इसका प्रयोग उचित और आवश्यक जान पड़े। इसलिए अनुचित प्रयोग के खतरे के रहते हुए भी भारतीय सरकार को यह प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार देकर संविधान ने ठीक ही किया है। नहीं तो यह स्थिति तो कल्पना से परे जान पड़ती है कि सार्वजनिक व्यवस्था और राज्य की सुरक्षा पर खतरा पैदा हो, और सरकार कुछ व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने के डर से चुपचाप बैठी रहे। यह तो कुछ व्यक्तियों के अधिकारों के लिए ज्यादातर व्यक्तियों के अधिकारों का होम करना होगा। और जहाँ तक इसके अनुचित प्रयोग की आशंका है, तो उससे बचाव के लिए हमें सरकार की ईमान्दारी, संसद और राज्य के विधान-मंडलों में विरोधी दलों की शक्ति और जनता की राजनीतिक चेतना के विकास पर निर्भर करना पड़ेगा। अगर इनका अभाव रहा, तो सरकार द्वारा इस अधिकार के दुरुपयोग का खतरा रहेगा ही। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि अधिक होता कि संविधान में राज्य या सरकार को यह अधिकार ही नहीं दिया जाता—ऐसा करना तो इससे भी बड़ा खतरा खरीदना होता।

आलोचकों की और दलीलों के सम्बन्ध में भी कम या वेश यही बातें कही जासकती हैं। उनकी दूसरी दलील यह है व्यक्तिगत स्वाधीनता की संविधान में पूरी-पूरी रक्षा नहीं की गई है। संविधान में यह कहा

गया है कि किसी को उसके प्राण अथवा व्यक्तिगत स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर (Except according to procedure established by law) और किसी तरह से नहीं वंचित किया जा सकता। कुछ लोगों का यह ख्याल है कि यह अधिक अच्छा होता अगर "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" की जगह पर 'विधि की समुचित कार्यवाही को छोड़कर' (Without due process of law) दिया गया होता। ब्रिटेन और अमेरिका में यही नियम प्रचलित है। दोनों में वास्तविक भेद क्या है यह देखना चाहिए। भारतीय संविधान की व्यवस्था के अनुसार संसद को अधिक अधिकार है। उच्चतम न्यायालय सिर्फ इसी की जाँच कर सकता है कि विधि द्वारा स्थापिता प्रक्रिया का अनुसरण किया गया है अथवा नहीं। दूसरी तरफ अमेरिका की व्यवस्था के अनुसार न्यायालय को यह भी देखने का हक है कि कोई विधि कहाँ तक उपयुक्त है। भारतीय संविधान में इसे लिख देने से यहाँ के न्यायालय को इस सम्बन्ध में संसद से अधिक अधिकार हो जाता और वह संसद के काम के औचित्य पर फैसला देता। अमुक परिस्थिति में व्यक्तिगत स्वाधीनता को कहाँ तक सीमित किया जाय इसका अन्तिम फैसला न्यायालय के हाथ में रहे या संसद के, यह सचमुच में एक बहुत विवादास्पद विषय है और इस पर दो रायें हो सकती हैं। न्यायालय के हाथ में यह अधिकार दे देने से व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा कुछ अधिक अवश्य होगी, क्योंकि तब इसको सीमित करने के लिए संसद का एक मात्र विधि बना देना ही काफी नहीं होगा बल्कि न्यायालय की स्वीकृति की भी जरूरत पड़ेगी। लेकिन न्यायालयों का रुख बराबर अनिश्चित रहता है, वे देश की परिस्थिति को नहीं बल्कि कानून के सिद्धान्तों को ध्यान में रख कर अपना फैसला देते हैं, और दूसरी बातों के साथ-साथ न्यायाधीशों के व्यक्तिगत विचारों का भी इस पर असर पड़ता है। संसद में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि बैठते हैं। उन्हें देश की परिस्थिति को दृष्टि में रख कर अपना फैसला करना पड़ता है। जनता के प्रति उत्तरदायी होने के कारण ये आसानी से जनमत की अवहेलना भी नहीं कर सकते। इसलिए यह अधिकार संसद को देना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है, और इस सम्बन्ध में भारतीय संविधान की व्यवस्था कोई बहुत दोषपूर्ण नहीं मालूम पड़ती।

बिना मुकदमा चलाये लोगों को नजरबन्द करने के सम्बन्ध में संविधान में जो व्यवस्था है, उसकी भी बहुत कड़ी आलोचना की गई है। यह कहा जा सकता है कि इस समय किसी ऐसे कानून की जरूरत नहीं है जिसके मुताबिक लोगों को बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द रखा जा सके। लेकिन यह कोई नहीं कहेगा कि कभी ऐसी परिस्थिति ही नहीं पैदा हो सकती जब इस तरह के कानून की जरूरत पड़े। आलोचकों की तरफ से यह कहा जाता है कि जब आपात या संकट-काल की घोषणा हो, तभी इस तरह के कानून प्रचलित रहने चाहिए और साधारण समय में देश के साधारण कानूनों से ही काम चलाना चाहिए। इसे हम आदर्श मान सकते हैं, लेकिन व्यवहार में बराबर इस सिद्धान्त का अनुसरण करते रहना सम्भव हो सकेगा इसकी गारन्टी कोई नहीं कर सकता। आपात या संकट-काल की घोषणा करना बहुत बड़ी चीज है। इसे बराबर नहीं किया जा सकता। ऐसी भी परिस्थिति आ सकती है जो इतनी भयंकर तो नहीं है कि संकट-काल की घोषणा कर दी जाय, लेकिन जिसमें राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था को कायम रखने के लिए कुछ लोगों को नजरबन्द करना जरूरी है। ऐसे अवसरों पर संविधान द्वारा दिये गये नजरबन्दी-सम्बन्धी अधिकारों का उपयोग कर परिस्थिति को काबू में लाया जा सकता है। हाँ, अधिकार के अनुचित प्रयोग का खतरा भी रहता है। लेकिन इसके सम्बन्ध में ऊपर ही कह दिया गया है। इसके लिए देश की राजनीतिक परिस्थिति या सरकार को दोषी बनाना चाहिए, संविधान को नहीं।

लेकिन फिर भी स्वतंत्रता-सम्बन्धी अधिकारों की व्यवस्था में कुछ दोष रह गये हैं जिनका निराकरण भारत में लोकतंत्र की प्रगति के लिए आवश्यक है। संस्था या संघ बनाने की आजादी सभी को दी गई है। सिर्फ सार्वजनिक व्यवस्था और सदाचार के हित में ही इस आजादी पर रोक लगाई जा सकती है। सभी को संस्था या संघ बनाने का अधिकार दे देना सर्वथा उचित जान पड़ता है। लेकिन बहुत से ऐसे लोग भी हैं जिनको यह अधिकार नहीं देना ही अधिक बुद्धिमानी का काम होता। कुछ लोग राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए हिंसात्मक तरीकों में विश्वास करते हैं। अगर इनको अपना संघ बनाने की आजादी रहे, तो यह आजादी भारत में लोकतंत्र की हत्या के काम में ही लाई जायगी। इसी तरह ऐसे लोग भी हैं जो किसी विदेशी राष्ट्र की शक्ति बढ़ाने के लिए संघ बनाना

चाहते हैं। अगर ये बिना किसी बाधा के अपना संघ बना सकें, तो एक दिन देश की आजादी को ही बाधा पहुँच सकती है। देश में धर्म, सम्प्रदाय, प्रान्त, जाति आदि की भावना भी कम जोरदार नहीं है और ऐसे लोग हमारे बीच में मौजूद हैं जो इनके आधार पर राजनीतिक दलों का संगठन चलाना चाहते हैं या चला रहे हैं। अगर धार्मिक आधार पर राजनीतिक संगठन चलते रहे, तो भारत के धर्म-निरपेक्ष रूप पर एक-न-एक दिन अवश्य बहुत बड़ा खतरा आ खड़ा होगा और इसके बदले में हिन्दू राष्ट्र की स्थापना की सम्भावना सामने आ जायगी। इसी तरह प्रान्तीयता और जातीयता के आधार पर कायम हुए राजनीतिक दल भारत में लोकतंत्र के विकास में बाधा उपस्थित करेंगे और राज्य राज्य के बीच वैमनस्य पैदा करेंगे। पूंजीपतियों के संघ से भी कम खतरा नहीं है। यह ठीक है कि जब तक देश के सभी उद्योग-धंधे समाज के हाथ में नहीं चले आते और उनकी प्रगति पूंजीपतियों के सहयोग पर निर्भर करती है, तब तक कुछ खास-खास कामों के लिए इन्हें संघ बनाना पड़ सकता है और इनके संघ से देश का कुछ लाभ भी हो सकता है। लेकिन इस अधिकार को बिलकुल अनियंत्रित छोड़ना ठीक नहीं होगा। कभी-कभी ये संघ देश के समूचे धन को अपने ही हाथों में केन्द्रित करने की कोशिश करने और देश की औद्योगिक और आर्थिक नीति की सफलता में बाधा पहुँचाने लगते हैं। इसलिए सरकार को इनके संघों पर नियंत्रण रखने का अधिकार रहना चाहिए। वास्तव में अमेरिका में और यूरप के कई देशों में पूंजीपतियों के संघों पर तरह-तरह की रोक लगानी पड़ी थी। बलगेरिया के नये संविधान में तो इन्हें बिलकुल ही मिटा दिया गया है। जहाँ तक हिंसात्मक तरीकों में विश्वास करने वालों के संघ का सवाल है, उन पर तो 'सार्वजनिक व्यवस्था' के नाम पर रोक लगाई जा सकती है। लेकिन विदेशी हितों के लिए काम करने वाले और धर्म, जाति या प्रान्त के आधार पर बने हुए राजनीतिक संघों को कायम करने का अधिकार बिलकुल ही नहीं रहना चाहिए। इसी तरह पूंजीपतियों के संघों पर परिस्थिति के अनुसार प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार भी राज्य को दे देना चाहिए।

शोषण के विरुद्ध अधिकारों में भी कुछ संशोधन की आवश्यकता है। चौदह साल से कम उम्र के बच्चों को खान इत्यादि खतरनाक कामों में भर्ती

करने की मनाही की गई है। स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यही व्यवस्था रहनी चाहिए। मनुष्यों के क्रय-विक्रय, बेगार और सभी तरह के बलात् श्रम को वर्जित अवश्य कर दिया गया है। लेकिन सिर्फ इतने से ही सभी तरह के शोषण का अन्त नहीं हो सकता। जब तक समाज में एक व्यक्ति के श्रम का फायदा दूसरे व्यक्ति को मिलेगा, तब तक शोषण का अन्त नहीं माना जा सकता। इसलिए संविधान में यह साफ कर देना चाहिए कि किसी को उसके श्रम के फल से वञ्चित नहीं किया जा सकता। तब यह सम्भव नहीं होगा कि खेतों में काम दूसरे लोग करें और फसल का अधिक हिस्सा खेतों से दूर बैठे हुए उसके मालिक को मिल जाय या मिलों में मजदूर मिहनत करें और उसका सभी नफा मिल-मालिक को मिल जाय जो कभी मिल में कोई काम भी न करता हो। तभी शोषण का सही अर्थ में अन्त होगा।

धार्मिक स्वतंत्रता-सम्बन्धी अधिकारों में भी कुछ दोष रह गये हैं। सरकारी शिक्षा-संस्थाओं में तो धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायगी। यह ठीक है। लेकिन यह नियम उन शिक्षा-संस्थाओं पर नहीं लागू होता जो किसी धर्मस्व के अनुसार स्थापित किये गये हों। इसी तरह गैर-सरकारी शिक्षा-संस्थाएँ भी धार्मिक शिक्षा दे सकेंगी। हाँ, इनमें से जो राज्य द्वारा स्वीकृत या राज्यनिधि से सहायता पाती होंगी उनमें किसी को इस धार्मिक शिक्षा में शरीक होने के लिए उसकी इच्छा के खिलाफ वाध्य नहीं किया जा सकता। यह बहुत दोषपूर्ण व्यवस्था है। शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने से जो हानि होगी उसे बताने की जरूरत नहीं जान पड़ती। इससे व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में भेद-भाव बढ़ेगा। हाँ, नैतिकता या सदाचार की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए। स्वयं संविधान में सरकारी शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का बिलकुल निषेध कर इससे होने-वाली हानि को स्वीकार कर लिया गया है। तब क्या गैर-सरकारी या धर्मस्व के अनुसार कायम की गई शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा के होने से हानि नहीं होगी? स्पष्ट है कि सभी तरह की शिक्षा-संस्थाओं में, चाहे वे सरकारी हों या गैर-सरकारी, धार्मिक शिक्षा का दिया जाना एकदम निषिद्ध कर देना चाहिए। अपने-अपने धर्म को मानने, उस पर चलने और उसका प्रचार करने का सभी को अधिकार देकर उचित किया गया है। लेकिन प्रचार के अधिकार का दुरुप-

योग भी हो सकता है। इस दुरुपयोग को रोकने के लिए इसके साथ यह भी जोड़ देना चाहिए कि अपने धर्म का प्रचार करते समय किसी को दूसरे धर्म की निन्दा या दूसरों को अपना धर्म मनवाने की चेष्टा नहीं की जा सकती। इससे अल्प-संख्यकों के धर्म पर किसी तरह की बाधा पड़ने का डर नहीं रहेगा।

संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों पर भी यही बात लागू है। संविधान में सभी अल्प-संख्यकों को, चाहे उनका आधार धर्म हो या भाषा, अपनी पसन्द के अनुसार शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और उनका प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया है। यह अधिकार बहुत व्यापक है और इसे सीमित करने की आवश्यकता है। धर्म पर आधारित अल्प-संख्यकों को तो यह अधिकार कभी नहीं देना चाहिए। साम्प्रदायिक शिक्षा-संस्थाओं से देश की क्या हानि हुई है, इसे सभी जानते हैं। ये साम्प्रदायिक शिक्षा-संस्थाएँ संकीर्णता का अखाड़ा बन जाती हैं और राष्ट्रीय एकता को बाधा पहुँचाती हैं। इसलिए संविधान में यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि कोई भी साम्प्रदायिक शिक्षा-संस्था नहीं स्थापित की जा सकती। भाषा के आधार पर बने हुए अल्पसंख्यकों की बात दूसरी है। बच्चों की शिक्षा सब से अच्छी तरह उनकी मातृभाषा के माध्यम से ही दी जा सकती है। इसलिए इन अल्पसंख्यकों को अपनी इच्छा के मुताबिक शिक्षा-संस्थाओं को स्थापित करने का अधिकार होना चाहिए। लेकिन इस अधिकार को प्राथमिक पाठशालाओं तक ही सीमित कर रखना चाहिए। यह ठीक है कि इसके बाद भी, कम-से-कम माध्यमिक श्रेणी तक मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देना कहीं अधिक अच्छा होगा। लेकिन माध्यमिक श्रेणी तक बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों की शिक्षा-संस्थाओं के अलग-अलग रहने से उनके बीच भेद-भाव बढ़ेगा। इसलिए माध्यमिक श्रेणी के स्कूल सबके लिए एक ही तरह के रहें, यही ठीक होगा। हाँ, इन स्कूलों में अल्पसंख्यकों की भाषा की पढ़ाई की पूरी सुविधा रहनी चाहिए।

संविधान के इस अध्याय की सबसे अधिक दोषपूर्ण व्यवस्था सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में है। आज कल उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण के बिना आर्थिक उन्नति की कोई सफल होने लायक योजना बनाना

अगर असम्भव नहीं तो कम-से-कम बहुत कठिन अवश्य है। जो लोग इस सिद्धान्त में नहीं विश्वास करते वे भी इतना तो जरूर मानेंगे कि एक समय ऐसा आ सकता है जब समाज के लोग या वे लोग जिनके ऊपर देश का शासन चलाने की जिम्मेदारी हो, राष्ट्रीयकरण में ही विश्वास करें। अगर भविष्य की बात को छोड़ भी दिया जाय तो जमीन्दारी-उन्मूलन-सम्बन्धी बिलों के पास हो जाने के लिए संविधान में विशेष सुविधा का आयोजन कर स्वयं संविधान के निर्माताओं ने यह स्वीकार कर लिया है कि सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण की जरूरत पड़ सकती है। ऐसी दशा में संविधान में कोई ऐसी व्यवस्था करना उचित नहीं था जिससे भविष्य में सामाजिक और आर्थिक उन्नति में बाधा उपस्थित हो। लेकिन संविधान में यही किया गया है। सम्पत्ति के अधिकार को एक मौलिक अधिकार मान लिया गया है। संविधान के अनुसार किसी सम्पत्ति पर सार्वजनिक प्रयोजन के लिए राज्य तभी कब्जा कर सकता है जब इसके लिए बननेवाले कानून में ली जाने वाली सम्पत्ति के बदले में देने के लिए प्रतिकर या मुआवजे की व्यवस्था हो। इस नियम के रहते हुए कभी भी राष्ट्रीयकरण की कोई योजना सफल हो सकेगी इसकी तनिक भी आशा नहीं दिखाई पड़ती। पहले तो यही निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किसी राष्ट्रीयकरण की योजना को देश के न्यायालय सार्वजनिक प्रयोजन के हित में समझेंगे या नहीं। न्यायालयों का फैसला जो भी हो, इस 'सार्वजनिक प्रयोजन' (Public perposes) वाले वाक्यांश के चलते राष्ट्रीयकरण की प्रत्येक विधि के पास होने के बाद मुकदमेबाजी खूब होगी, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। फिर राज्य के पास मुआवजा देने के लिए काफी रकम का होना तो बिलकुल असम्भव है। यह तो इसीसे सिद्ध है कि इस समय भारत के किसी भी राज्य के पास जमीन्दारों को मुआवजा देने के लिए भी काफी रुपया नहीं है और यह उस हालत में जब जमीन्दारों से सिर्फ रैयतों से मालगुजारी वसूलने का अधिकार लिया जा रहा है। संविधान में राष्ट्रीयकरण के मार्ग में रखी हुई बाधाओं का यहीं तक अन्त नहीं है। अगर किसी राज्य का विधानमंडल किसी सम्पत्ति पर कब्जा करने के लिए कोई कानून बनावे, तो वह कानून तबतक नहीं लागू हो सकता जबतक उसपर राष्ट्रपति की अनुमति नहीं मिल जाय। इसका नतीजा यह होगा कि अगर किसी राज्य की सरकार

पर राष्ट्रीयकरण में विश्वास रखनेवाले दल का कब्जा हो भी जाय, तब भी बिना संघीय सरकार की सहानुभूति के उस दल का अपने प्रोग्राम को कार्यान्वित कर सकना निश्चित नहीं रहेगा। इससे राष्ट्रीयकरण में तो बाधा पड़ेगी ही; संघ और राज्य की सरकारों में भी कटुता पैदा होगी। यह राष्ट्रीय भावना के विकास में अवश्य ही बाधक होगा।

कुछ लोगों का यह भी ख्याल हो सकता है कि सम्पत्ति पर मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है और उसे उससे बिना मुआवजे का वंचित करना अन्याय होगा। इस विचार का कोई युक्तिसंगत आधार नहीं है। मानव-इतिहास में सम्पत्ति पर मनुष्य के अधिकार को कभी भी प्राकृतिक नहीं समझा गया और न यह अधिकार कभी बिना प्रतिबन्ध के रहा है। इस अधिकार का आधार बराबर समाज द्वारा स्वीकृत कानून रहा है और समाज के हित में समय-समय पर इस पर प्रतिबन्ध लगाए गए हैं या इसे हस्तान्तरित किया गया है। आज भी कई देशों में व्यक्ति की सम्पत्ति आंशिक रूप में राज्य द्वारा मृत्यु-कर (Death duty) के जरिए ले ली जाती है। इसके बदले में मुआवजा देने का सिद्धान्त भी निराधार है। सभी सम्पत्ति समाज की है और समाज उसे जिसे चाहे, दे सकता है और जब चाहे, उसे वापस भी ले सकता है। इतिहास से भी यही सिद्ध होता है। जब गुलामीप्रथा मिटाई गई थी और गुलामों पर से उनके मालिकों का अधिकार हटा दिया गया था तो इसके लिए उनको कोई मुआवजा नहीं दिया गया था। हाँ, कभी बेरोजगारी को रोकने के लिए कुछ मुआवजा देना जरूरी हो सकता है। लेकिन यह परिस्थिति पर निर्भर करेगा और इसका निर्णय संसद या विधानमंडल पर छोड़ देना चाहिए। इस तरह हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि संविधान में राज्य को बिना किसी रुकावट के कानून द्वारा किसी भी तरह की सम्पत्ति पर कब्जा करने और उसे हस्तान्तरित करने का पूरा अधिकार दे देना चाहिए था।

यह सब तो संविधान में दिए गए अधिकारों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। कुछ ऐसे भी अधिकार हैं जिनकी संविधान में मौलिक अधिकारों के भीतर कोई चर्चा नहीं की गई है। यह जरूर अच्छा होता अगर भारतीय संविधान में सभी को मजदूरी पाने; बुढ़ापे में या किसी दूसरे कारण से

असहाय हो जाने पर भरण-पोषण की सुविधा पाने इत्यादि अधिकार दे दिए गए होते। भारत-ऐसे देश के लिए जहाँ ज्यादा लोग गरीबी, बेरोजगारी और भूखमरी से परीशान हैं, ये अधिकार और सभी अधिकारों से किसी अर्थ में कम आवश्यक नहीं हैं। भारत के अधिकांश लोगों के लिए इन अधिकारों के अभाव में संविधान में दिए गए दूसरे मौलिक अधिकारों का मूल्य बहुत घट जाता है। जब किसी को काम पाने और भरपेट भोजन पाने का ही अधिकार नहीं है, तो भाषण देने, सभा करने, संघ बनाने, अपने धर्म पर चलने इत्यादि अधिकारों को लेकर वह क्या करेगा? कुछ लोग इसका जवाब यह कहकर देते हैं कि आज की परिस्थिति में यहाँ पर व्यवहारिक दृष्टि से राज्य के लिए यह जिम्मेदारी निभा सकना सम्भव नहीं जान पड़ा। इसीलिए इनको मौलिक अधिकारों में नहीं देकर राजनीति के निर्देशक तत्त्वों में शामिल कर लिया गया। लेकिन यह कोई जवाब नहीं है। 'आज की परिस्थिति' के कारण ही तो इन अधिकारों की जरूरत पड़ी है और अब तो राजनीति शास्त्र के आचार्यों को यह भी सोचना पड़ेगा कि इस जिम्मेदारी को निभाने के अयोग्य राज्यों को सही अर्थ में 'राज्य' कहलाना चाहिए या नहीं।

अध्याय ११

राज्यनीति के निर्देशक तत्त्व

राजनीति के निर्देशक तत्त्व भारतीय संविधान की एक अपनी विशेषता है। आयरलैंड के संविधान को छोड़कर संसार के और किसी देश के संविधान में इनकी चर्चा नहीं की गई है। इनमें उन बातों का जिक्र किया गया है जिनका करना राज्य के लिए श्रेयस्कर समझा गया है। भारतीय संविधान के दूसरे अध्यायों के अनुच्छेदों से ये भिन्न हैं। इनको मानना या नहीं मानना राज्य की इच्छा पर है, इसके लिए देश के न्यायालय उसे बाध्य नहीं कर सकते। फिर भी देश के शासन में इन्हें बुनियादी करार दिया गया है और इस बात की आशा प्रकट की गई है कि देश के लिए विधि बनाते समय यहाँ पर दिए हुए सिद्धान्तों को लागू करने की कोशिश की जायगी।

कुछ लोगों का यह विचार है कि जब कोई राज्य को इन्हें कार्यरूप में परिणत करने के लिए बाध्य ही नहीं कर सकता, तब इनका कोई महत्त्व नहीं है। उन लोगों के अनुसार इन्हें अधिक-से-अधिक शुभकामना का स्थान दिया जा सकता है। लेकिन ऐसा सोचना उचित नहीं जान पड़ता। इनको लागू करने के लिए कानूनी रूप से राज्य भले ही जिम्मेवार न हो, लेकिन नैतिक जिम्मेवारी तो हो ही जाती है। इनको यहाँ पर दे देने से संविधान पर आदर्शवाद की छाप पड़ गई है। ये सिद्धान्त एक तरह से भारत में प्रत्येक शासन की कसौटी का काम करेंगे और यहाँ की जनता इन्हीं को दृष्टि में रखकर किसी शासन की सफलता

या विफलता पर अपना निर्णय देगी। इसलिए यह देखना लाभदायक होगा कि ये सिद्धान्त कहाँ तक भारत में एक आदर्श समाज की नींव बनने के योग्य हैं।

संविधान के आदेश के अनुसार राज्य जनता की भलाई करने की कोशिश करेगा। इसके लिए वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और रक्षा करेगा जिससे राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सभी तरह के न्याय से पूर्ण हों। विशेष कर राज्य अपनी नीति का ऐसा संचालन करेगा ताकि नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो; समाज की सम्पत्ति अथवा साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस तरह से बँटा रहे और जिससे अधिक-से-अधिक सामूहिक हित हो; आर्थिक अवस्था इस तरह चले जिससे सर्वसाधारण के हितों के विरुद्ध धन और उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण न हो; पुरुषों और स्त्रियों को समान काम के लिए समान वेतन मिले; श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बच्चों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसा काम न करना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो; और बच्चों और कुमारों की शोषण तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग (Abandonment) से रक्षा हो।

राज्य ग्राम-पञ्चायतों का संगठन करने की कोशिश करेगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जिससे वे स्वायत्त शासन के एककों के रूप में कार्य कर सकें।

राज्य ऐसी व्यवस्था कायम करने की कोशिश करेगा जिससे सभी को काम, शिक्षा और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, अंगहानि तथा अनुचित अभाव की दूसरी अवस्थाओं में सार्वजनिक सहायता पाने का अधिकार मिल जाय। राज्य की तरफ से ऐसा बन्दोबस्त होगा ताकि काम करने की अवस्था न्यायपूर्ण और मानवोचित हो और स्त्रियों को प्रसूति-अवस्था में सहायता मिले। हर तरह से राज्य यह कोशिश करेगा कि खेती, उद्योग-धंधे या और किसी भी क्षेत्र में काम करनेवाले सभी मजदूरों को काम और निर्वाहयोग्य वेतन मिल सके। मजदूरों

के काम करने की अवस्था ऐसी हो जिसमें वे अपना जीवनस्तर ऊँचा रख सकें और अवकाश तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों का पूरा उपभोग कर सकें।

राज्य द्वारा, दिहातों में घरेलू उद्योग-धंधों की उन्नति करने, समूचे देश के नागरिकों के लिए एक तरह की व्यवहारसंहिता बनाने, और संविधान लागू होने के दस साल के भीतर चौदह बरस से कम आयु के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने की कोशिश की जायगी।

राज्य उन लोगों के जो समाज में पिछड़े हुए हैं, और विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा-सम्बधी और आर्थिक हितों की उन्नति करने के लिए विशेष प्रयत्न करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी तरह के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

राज्य, लोगों के आहार को और पुष्टिकारक बनाने, उनके जीवनस्तर को और ऊँचा उठाने और जन-स्वास्थ्य में सुधार लाने को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में स्थान देगा। विशेषतया राज्य की तरफ से दवादारू के काम को छोड़कर, मादक द्रव्यों के प्रयोग के निषेध की चेष्टा की जायगी।

कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके के अनुसार संगठित करने की कोशिश की जायगी। विशेष तौर पर राज्य इसके लिए प्रयत्न करेगा कि गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्ल कायम रहे और उसमें सुधार हो तथा उनके वध का निषेध हो जाय।

जिन्हें संसद ने विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर दिया हो, उन कलात्मक या ऐतिहासिक महत्त्व के सभी स्मारकों, जगहों और चीजों की, दूषित होने, नष्ट होने, बेचे जाने, बाहर भेजे जाने, स्थानान्तरित किए जाने इत्यादि से, रक्षा करना राज्य का कर्तव्य होगा।

राज्याधीन नौकरियों में न्यायविभाग को कार्यकारिणी से अलग करने की कोशिश की जायगी।

राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति करने, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने, अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा संधि-बन्धनों

के प्रति आदर बढ़ाने और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों या झगड़ों के मध्यस्थता द्वारा निपटारे को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करेगा।

निर्देशक तत्त्वों का स्वरूप

यही सब राज्यनीति के निर्देशक तत्त्व हैं। ये सिद्धान्त बहुत ऊँचे और अनुसरण करने योग्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। इनको ध्यान में रखकर देश के लिए विधि बनाने से सचमुच में देश का कल्याण होगा। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में भारत की उन्नति होगी और वह विश्वशान्ति कायम करने में भी सहायक होगा। लेकिन फिर भी ये सिद्धान्त सभी दृष्टियों से पूर्ण नहीं कहे जा सकते। उदाहरण के लिए यह कहा गया है कि समाज के सम्पत्ति अथवा साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस तरह से बँटा रहे जिससे अधिक-से-अधिक सामूहिक हित हो और आर्थिक व्यवस्था इस तरह चले जिससे सर्व-साधारण के हितों के विरुद्ध धन और उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण न हो। लेकिन यह कैसे सम्भव हो सकेगा इसपर कुछ भी नहीं कहा गया है। ऐसी दशा में यह उद्देश्य भी अस्पष्ट रह जाता है। इससे यह कहीं अच्छा होता अगर यह कह दिया गया होता कि उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व और नियंत्रण रहेगा। तब इनके केन्द्रीयकरण का सवाल ही नहीं उठता। इसके अभाव में और चाहे जो कुछ किया जाय, धन का केन्द्रीयकरण नहीं रुक सकता। जहाँ-जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था है, उन सभी देशों में आज यही हालत है। इसलिए संविधान में राज्यनीति के निर्देशक तत्त्वों में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना को स्पष्ट रूप से रख देना चाहिए था। तभी आर्थिक विषमता दूर होती और सामूहिक हित की अधिक-से-अधिक सिद्धि होती।

इसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राज्य की नीति के सम्बन्ध में दिए हुए आदेश भी सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। जो उद्देश्य राज्य के सामने रखे गए हैं, वे ऊँचे जरूर हैं, लेकिन सिर्फ उन्हीं से विश्वशान्ति और सुरक्षा की स्थापना नहीं की जा सकती। जबतक कुछ देशों पर दूसरे देशों का आधिपत्य रहेगा, जबतक देश-देश की आर्थिक स्थिति में विषमता रहेगी, तबतक विश्व-

शान्ति नहीं कायम की जा सकती। यही क्यों, अब तो कुछ लोगों का यह भी विचार हो रहा है कि जबतक विश्व-सरकार की स्थापना नहीं हो जाती, तबतक युद्ध की सम्भावना बनी रहेगी। इसलिए राज्यनीति के निर्देशक तत्त्वों में यह भी लिख देना चाहिए था कि भारत दुनिया के सभी भागों से साम्राज्यवादी शासन हटाने, देश-देश के बीच से आर्थिक विषमता दूर करने और एक विश्व-सरकार की स्थापना के लिए सचेष्ट होगा।

अध्याय १३

संघीय कार्यपालिका

कई दृष्टियों से आधुनिक शासन के अंगों में कार्यपालिका का महत्त्व सबसे अधिक है। वैसे तो आज की तरह सांविधानिक शासन के युग में प्रत्येक देश में विधानमंडल को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। लेकिन वास्तविकता यही है कि लोकतंत्रात्मक शासन का ज्यों-ज्यों विकास होता जा रहा है, विधान-मंडल के अधिकारों और कामों में ज्यों-ज्यों वृद्धि होती जा रही है, त्यों-त्यों सभी जगह कार्यपालिका की शक्ति और काम का क्षेत्र कम होने के वजाय बढ़ता ही चला जा रहा है। शासन-यंत्र को चलाते रहना, सेना का प्रबन्ध करना, देश के लिए नीति निर्धारित करने और विधि बनाने में विधानमण्डल का नेतृत्व करना, विशेष परिस्थिति में अभियुक्तों को न्यायालय द्वारा दी हुई सजा से मुक्त करना और दूसरे देशों से सम्बन्ध कायम रखना—ये सभी काम आजकल कार्यपालिका के जिम्मे ही रहते हैं। संकटकाल में तो समूचे देश का नेतृत्व कार्यपालिका ही करती है।

कार्यपालिका शब्द का व्यवहार दो अर्थों में किया जाता है। इसके व्यापक अर्थ में इससे राष्ट्रपति, मंत्री, सरकारी नौकर, सैनिक इत्यादि सभी का बोध होता है। लेकिन संकीर्ण या सीमित अर्थ में इसका प्रयोग सिर्फ कार्यकारिणी विभाग के सर्वोच्च अधिकारी के लिए होता है। यहाँ पर इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

आजकल जिन देशों में सांविधानिक शासन कायम है, वहाँ की कार्यपालिका मुख्यतः दो में से किसी एक तरह की होती है। संसद के अधीन या संसद से स्वतन्त्र। अक्सर यह देखा जाता है कि जहाँ की कार्यपालिका संसद के अधीन होती है, वहाँ मन्त्रिपरिषद् रहती है, जैसे ब्रिटेन में; और जहाँ स्वतन्त्र, वहाँ राष्ट्रपति, जैसे अमेरिका में। लेकिन सिर्फ नाम देखकर ही उसका ठीक-ठीक

निर्णय नहीं किया जा सकता कि अमुक देश की कार्यपालिका किस तरह की है। क्योंकि कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि जहाँ राष्ट्रपति है, वहाँ की कार्यपालिका भी स्वतंत्र न होकर संसद के अधीन है, जैसे फ्रांस में। इसी तरह अमेरिका में भी मंत्रियों के समूह को मंत्रिपरिषद् कहकर ही पुकारा जाता है; लेकिन वहाँ की कार्यपालिका संसद से स्वतंत्र है। इसलिए कहीं की कार्यपालिका के स्वरूप को पहचानने के लिए नामों के नीचे तह में जाना होगा और यह देखना होगा कि नाम के लिए कोई भी संस्था क्यों न हो, असल में कार्यकारिणी विभाग का सर्वोच्च अधिकारी कौन है। भारतीय संघ की कार्यपालिका का स्वरूप क्या है, यह भी इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है। इसलिए इसका निर्णय करने के पहले संविधान में कार्यपालिका के सम्बन्ध में जो व्यवस्था दी गई है उसे देखना चाहिए।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति

भारत का एक राष्ट्रपति होगा। अमेरिका में जनता निर्वाचकों को चुनती है और ये निर्वाचक राष्ट्रपति को चुनते हैं। फ्रांस में संसद के दोनों सदनों के सदस्य संयुक्त बैठक में राष्ट्रपति को चुनते हैं। भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचकगण के सदस्यों द्वारा होगा। यह निर्वाचकगण संसद के दोनों सदनों और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनेगा। निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व-पद्धति के अनुसार सकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा (in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.)। मतदान गुप्त रहेगा। इस निर्वाचकगण के सभी सदस्यों के मत की संख्या एक दूसरे के बराबर नहीं होगी। संविधान में राज्यों की विधानसभाओं और संसद के सदस्यों के मतों की संख्या के सम्बन्ध में अलग-अलग व्यवस्था की गई है। भिन्न-भिन्न राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य जितनी जन-संख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी के अनुसार प्रत्येक सदस्य को मत देने का हक होगा। संसद के एक सदस्य के मत की संख्या इतनी रखी जायगी ताकि राज्यों की विधानसभाओं के सभी सदस्यों के मतों का योग संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के मतों के योग के

बराबर हो। भारतीय संघ के सभी राज्यों की जन-संख्या एक दूसरे के बराबर नहीं है; और संविधान में यह उद्देश्य सामने रखा गया कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में जहाँ तक सम्भव हो सके, भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के मापमान में समानता हो। इसीलिए प्रत्येक सदस्य के मत के सम्बन्ध में ऊपर दिया हुआ निर्णय किया गया।

निर्वाचकगण के प्रत्येक सदस्य के मत की संख्या के निर्धारण की विधि भी संविधान में दे दी गई है। राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों के सम्बन्ध में यह विधि है कि राज्य की जनसंख्या में उस राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग दिया जायगा; जो भागफल आयेगा उसमें फिर १००० से भाग दिया जायगा। इस बार जो भागफल आयेगा, उस राज्य की विधानसभा का प्रत्येक सदस्य उतने ही मत देने का हकदार होगा। अगर १००० से भाग देने पर अन्तिम शेषफल ५०० या इससे अधिक होगा तो सदस्य के मत की संख्या में एक और मत की वृद्धि हो जायगी और अगर ५०० से कम होगा तो उसे यों ही छोड़ दिया जायगा। इसी तरह संसद के सदस्यों के मत के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि राज्यों की विधानसभाओं के सभी सदस्यों के समस्त मतों को जोड़कर उसमें संसद के दोनों सदनों के सदस्यों की संख्या से विभाजित कर दिया जायगा और जो भागफल आयेगा, उतने ही मत देने का अधिकार संसद के प्रत्येक सदस्य को प्राप्त होगा। भाग देने पर अन्तिम शेषफल अगर आधे से अधिक होगा तो मतों की संख्या में एक और जोड़ दिया जायगा; और अगर आधे से कम होगा, तो उसे यों ही छोड़ दिया जायगा।

कोई व्यक्ति राष्ट्रपति चुने जाने का पात्र नहीं होगा अगर वह भारत का नागरिक न हो, उसकी आयु पैंतीस साल की न हो चुकी हो और वह लोकसभा का सदस्य चुने जाने के योग्य नहीं हो। कोई सरकारी पदाधिकारी या सेवक राष्ट्रपति चुने जाने का पात्र नहीं समझा जायगा।

अमेरिका में राष्ट्रपति की अवधि चार और फ्रान्स में सात बरस है। भारत में राष्ट्रपति के पद की अवधि पाँच बरस होगी। हाँ, इसके पहले अगर वह चाहे तो त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो सकता है। इसी तरह संविधान का अतिक्रमण करने के अपराध में उसे महाभियोग द्वारा पाँच साल से पहले भी

राष्ट्रपति के पद से हटाया जा सकता है। एक बार राष्ट्रपति रह चुकने के बाद अमेरिका की तरह यहाँ भी कोई व्यक्ति फिर इस पद के लिए उम्मीदवार हो सकता है।

अपना कार्यारम्भ करने के पहले राष्ट्रपति को भारत के मुख्य न्यायाधिपति के सामने श्रद्धापूर्वक राष्ट्रपति के कर्तव्यों का पालन करने, अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का संरक्षण करने और भारत की जनता की सेवा और कल्याण में लगे रहने की शपथ लेनी होगी। राष्ट्रपति संसद या राज्य के विधान-मंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा और अगर ऐसा कोई सदस्य राष्ट्रपति चुन लिया जायगा तो उसकी यह सदस्यता खतम समझी जायगी। राष्ट्रपति दूसरे किसी लाभ के पद पर भी नहीं रहेगा।

राष्ट्रपति का एक सरकारी निवासस्थान रहेगा जिसका किराया उसे नहीं देना पड़ेगा। उसके वेतन, भत्ते, विशेषाधिकार इत्यादि का निर्णय संसद विधि द्वारा करेगी। जबतक यह निर्णय नहीं हो जाता तबतक राष्ट्रपति को दस हजार रुपये मासिक वेतन के रूप में मिलेंगे और उसके भत्ते और विशेषाधिकार वही रहेंगे जो संविधान लागू होने के पहले गवर्नर जेनरल को प्राप्त थे। किसी राष्ट्रपति के वेतन और भत्ते को उसके पद की अवधि के भीतर नहीं घटाया जा सकता।

राष्ट्रपति का पद विशेष सम्मान और प्रतिष्ठा से युक्त रहेगा। महाभियोग के अतिरिक्त राष्ट्रपति अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के पालन में अपने द्वारा किए गए किसी कार्य के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा। जबतक वह अपने पद पर रहेगा, तबतक उसके खिलाफ किसी न्यायालय में कोई फौजदारी कार्रवाई नहीं की जा सकेगी और न उसे बन्दी करने या कैद में रखने की ही आज्ञा निकाली जा सकेगी। अपने वैयक्तिक रूप में किए गए किसी कार्य के बारे में राष्ट्रपति के खिलाफ किसी अनुतोष या रिलीफ का दावा करने के लिए तबतक कोई व्यावहारिक या दीवानी कार्यवाही नहीं की जा सकती, जबतक उसको इसकी लिखित सूचना दिए हुए दो मास नहीं बीत गए हों।

संविधान में राष्ट्रपति पर संविधान के भंग करने के अपराध में महाभियोग

लगाने का तरीका भी दे दिया गया है। इस आशय का प्रस्ताव संसद के दो में से किसी एक सदन में रखा जा सकता है। लेकिन यह तभी हो सकेगा जब उस सदन के एक चौथाई सदस्य प्रस्ताव रखने के कम-से-कम चौदह दिन पहले इसकी सूचना देंगे। इसके बाद अगर उस सदन में उसके तीन चौथाई सदस्यों द्वारा यह प्रस्ताव पास कर दिया जाता है, तब संसद के दूसरे सदन द्वारा इस प्रस्ताव में लगाए गए अपराध की जाँच का प्रबन्ध किया जायगा। इस जाँच के अवसर पर राष्ट्रपति को उपस्थित रहने और अपना प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। इस जाँच के बाद अगर जाँच करानेवाले सदन में, इसके तीन चौथाई सदस्यों के बहुमत से यह प्रस्ताव पास हो जाय कि राष्ट्रपति पर लगाया गया दोष साबित हो गया है, तब राष्ट्रपति तुरत अपने पद से पृथक् समझा जायगा।

राष्ट्रपति की अवधि समाप्त होने के पहले ही दूसरे राष्ट्रपति का चुनाव कर लिया जायगा। राष्ट्रपति की मृत्यु होने, त्यागपत्र देने या पदच्युत किये जाने के कारण जो जगह खाली होगी, उसे भरने के लिए जल्द-से-जल्द और हर हालत में छः महीने बीतने के पहले राष्ट्रपति-पद के लिए दूसरा निर्वाचन कर लिया जायगा। इस तरह जो राष्ट्रपति चुना जायगा वह पाँच बरस की पूरी अवधि भर अपने पद पर रहेगा। यह अमेरिका की व्यवस्था से भिन्न है। वहाँ पर इस तरह एक राष्ट्रपति की अवधि समाप्त होने के पहले जब राष्ट्रपति की जगह खाली होती है, तब इसके लिए कोई नया चुनाव नहीं होता है। उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति बन जाता है। वह पूरी अवधि भर इस पद पर नहीं रहता है, वरन उतने ही दिनों के लिए जो पिछले राष्ट्रपति की अवधि में बाकी रह गए थे।

संविधान के अनुसार भारत में अमेरिका की तरह एक उपराष्ट्रपति भी रहेगा। अमेरिका के उपराष्ट्रपति का निर्वाचन भी राष्ट्रपति की तरह जनता द्वारा चुने हुए निर्वाचक ही करते हैं। भारत के उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्य संयुक्त बैठक में करेंगे। निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व-पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा और मतदान गुप्त रहेगा। वही व्यक्ति उपराष्ट्रपति चुने जाने का पात्र होगा जो सरकारी नौकर नहीं हो और जो भारत का नागरिक हो, पैंतीस बरस की आयु पूरा कर चुका हो और

राज्यपरिषद् का सदस्य चुने जाने के योग्य हो। उपराष्ट्रपति संसद या राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा और अगर कोई ऐसा सदस्य इस पद के लिए चुना जायगा, तो उसके चुनाव के बाद उसकी सदस्यता खतम समझी जायगी।

प्रत्येक उपराष्ट्रपति अपना कार्यारम्भ करने के पहले राष्ट्रपति के सम्मुख संविधान के प्रति वफादार रहने और अपने कर्तव्य का श्रद्धापूर्वक पालन करने की शपथ लेगा। उपराष्ट्रपति के पद की अवधि पाँच बरस होगी। लेकिन अगर कोई उपराष्ट्रपति चाहे तो त्यागपत्र देकर इस अवधि के खतम होने के पहले भी अपने पद से अलग हो सकता है। इसी तरह अगर राज्यपरिषद् सर्वसम्मति से इस आशय का प्रस्ताव पास करे और लोकसभा उससे सहमत हो जाय तो उपराष्ट्रपति अपने पद से पृथक् भी किया जा सकता है। लेकिन इस तरह का कोई प्रस्ताव नहीं पेश किया जा सकेगा, अगर कम-से-कम चौदह दिन पहले इसकी सूचना न दे दी गई हो।

जबतक किसी उपराष्ट्रपति का उत्तराधिकारी पद ग्रहण न कर ले, तबतक वह अपनी अवधि खतम हो जाने पर भी अपने पद पर बना रहेगा। किसी उपराष्ट्रपति की अवधि समाप्त होने के पहले ही उस पद के लिए निर्वाचन पूरा कर लिया जायगा। किसी उपराष्ट्रपति की मृत्यु होने, उसके त्यागपत्र देने या पदच्युत होने या और किसी कारण से हुए रिक्त स्थान की पूर्ति जल्द-से-जल्द कर ली जायगी। जो व्यक्ति इस तरह किसी रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए निर्वाचित होगा वह पाँच साल की पूरी अवधि भर अपने पद पर रह सकेगा।

किसी आकस्मिक परिस्थिति में राष्ट्रपति को क्या करना चाहिए—इस सम्बन्ध में अगर संविधान में कोई व्यवस्था नहीं हो तो संसद अपनी इच्छानुसार यह व्यवस्था कर सकती है। राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में उठनेवाले सभी विवादों की जाँच उच्चतम न्यायालय द्वारा होगी और उसका निर्णय सबको मान्य होगा। अगर किसी राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति का निर्वाचन उच्चतम न्यायालय द्वारा शून्य या नाजायज घोषित किया जाय तो इस फैसले के पहले किए गए राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के कामों की मान्यता नहीं खतम हो जायगी।

संविधान में राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ दी गई हैं। संघ की कार्यपालिका

के सभी अधिकार राष्ट्रपति में निहित रहेंगे। इन अधिकारों का प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा। इसमें वे सभी बातें शामिल हैं, जिनके सम्बन्ध में संसद को विधि बनाने का अधिकार है। और वे अधिकार भी हैं जो भारत-सरकार को किसी सन्धि या समझौते द्वारा प्राप्त हुए हैं। देश की सभी सेनाओं का सर्वोच्च समादेश भी राष्ट्रपति में ही निहित रहेगा, अर्थात् वह इनका प्रधान होगा। देश के सभी बड़े-बड़े पदाधिकारियों, जैसे उच्चतम तथा उच्चन्यायालयों के न्यायाधीशों, भारत के महान्यायवादी, भारत के महा-लेखा परीक्षक, संघीय लोकसेवा-आयोग के सभापति और सदस्यों, राज्यपालों इत्यादि की बहाली राष्ट्रपति ही करेगा।

राष्ट्रपति को न्याय-सम्बन्धी अधिकार भी दिए गए हैं। उन सभी अवस्थाओं में जिनमें सेना-न्यायालय द्वारा सजा दी गई हो, जिनमें किसी ऐसे विषयसम्बन्धी विधि को तोड़ने के अपराध में सजा दी गई हो जो संघीय कार्यपालिका के अधिकारक्षेत्र के भीतर हैं और जिनमें मृत्यु का दंडादेश दिया गया हो, राष्ट्रपति को किसी व्यक्ति को क्षमा कर देने, उसके दंड को स्थगित या कम करा देना इत्यादि का अधिकार है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति की वित्तीय और विधायिनी शक्तियाँ (Financial and Legislative Powers) भी महत्त्वपूर्ण हैं। सभी तरह के सङ्कटकाल (Emergency) में देश का शासन चलाने के लिए उसे बहुत-से विशेषाधिकार दिए गए हैं। पिछड़े या अनुसूचित क्षेत्रों के शासन की व्यवस्था के लिए विनियम या रेगुलेशन बनाने की भी उसे शक्ति रहेगी। राष्ट्रपति की इन सभी शक्तियों पर यथास्थान विस्तार में विचार किया जायगा। यहाँ उनका संकेतमात्र किया गया है, जिसमें उनकी व्यापकता का बोध हो जाय।

उपराष्ट्रपति, पदेन राज्यपरिषद् का सभापति होगा। वह किसी दूसरे लाभ के पद पर नहीं रहेगा। राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग, पदच्युत होने अथवा किसी दूसरे कारण से उसके पद के रिक्त होने की अवस्था में उपराष्ट्रपति उस तारीख तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा जिस तारीख को संविधान की व्यवस्था के अनुसार निर्वाचित नया राष्ट्रपति अपने पद पर आ जाय। अनुपस्थिति,

बीमारी, अथवा अन्य किसी कारण से जब राष्ट्रपति अपने कामों को करने में असमर्थ हो तब उपराष्ट्रपति उसके कामों को सँभालेगा। उपराष्ट्रपति को उस समय के लिए, जबकि वह राष्ट्रपति के रूप में इस प्रकार कार्य करता है अथवा उसका काम सँभालता है, राष्ट्रपति की सब शक्तियाँ और उन्मुक्तियाँ (Powers and Immunities) प्राप्त होंगी। इस समय उसे वही वेतन, भत्ते और विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, जो संसद विधि-द्वारा तय करें और जबतक संसद ऐसा नहीं करे तबतक ये सब वही रहेंगे, जो राष्ट्रपति को प्राप्त थे। परन्तु इस समय वह राज्य-परिषद् के सभापति-पद के कर्तव्यों को नहीं करेगा और उसे इस पद के लिए दिया जानेवाला कोई वेतन अथवा भत्ता पाने का भी हक नहीं होगा।

मंत्रि-परिषद्

राष्ट्रपति को उसके कामों में सहायता और परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् रहेगी, जिसका प्रधान प्रधान-मंत्री होगा। क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई परामर्श दिया और यदि दिया तो क्या दिया, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जाँच न की जायगी। प्रधान मन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री के परामर्श से करेगा। मन्त्री लोग राष्ट्रपति के प्रसाद या उसकी इच्छापर्यन्त (During the pleasure of the President) अपने पदों पर रहेंगे। मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप से लोकपरिषद् के प्रति उत्तरदायी रहेगी।

किसी मन्त्री के अपने पदग्रहण करने के पहले राष्ट्रपति उससे पद की तथा गोपनीयता (Oaths of office and of secrecy) की शपथें करायेगा। इन शपथों के प्रपत्र (forms) संविधान की तृतीय अनुसूची में दे दिए गए हैं। पद-शपथ में इसे शपथ लेना या प्रतिज्ञा करना पड़ेगा कि वह विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखेगा, संघ के मन्त्री के रूप में श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अन्तःकरण से अपने कर्तव्यों का पालन करेगा और भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष से रहित होकर सब प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करेगा। गोपनीयता-शपथ

में वह शपथ लेगा या प्रतिज्ञा करेगा कि संघमंत्री के रूप में उसे जो विषय मालूम होगा, उसे वह किसी व्यक्ति के सामने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नहीं प्रकट करेगा। हाँ, उस अवस्था में यह शपथ नहीं लागू होगी जबकि उसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्य के पालन के लिए ही ऐसा करना अपेक्षित हो।

ऐसे मंत्री को जो कभी लगातार छः महीने तक संसद के किसी सदन का सदस्य न रहे, इस अवधि की समाप्ति पर मंत्रि-पद से हट जाना पड़ेगा। मंत्रियों को वही वेतन तथा भत्ते मिलेंगे जो संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करेगी। जबतक संसद यह निर्धारित नहीं करेगी, तबतक उनके वेतन और भत्ते वही रहेंगे जो उन्हें संविधान लागू होने, अर्थात् २६ जनवरी १९५० के पहले मिलते थे।

सरकारी कार्य का संचालन

भारत-सरकार के कार्यपालिका-सम्बन्धी सभी काम राष्ट्रपति के नाम में किए गए कहे जायँगे। भारत-सरकार का काम अधिक सुविधापूर्वक किए जाने के लिए, तथा मंत्रियों में उस काम के बँटवारे के लिए राष्ट्रपति नियम बनाएगा। प्रधान मंत्री का यह कर्तव्य होगा कि वह प्रशासन तथा विधान (Administration and Legislation) सम्बन्धी मंत्रि-परिषद् के सभी फैसलों को राष्ट्रपति के पास पहुँचाए, संघ के शासन तथा विधानविषयक प्रस्थापनाओं (Proposals) सम्बन्धी जिस जानकारी को राष्ट्रपति चाहे उसको दे और किसी विषय को जिसपर किसी मंत्री ने निर्णय कर दिया हो, किन्तु मंत्रि-परिषद् ने विचार नहीं किया हो, राष्ट्रपति के चाहने पर परिषद् के सामने विचार के लिए रखे।

संघीय कार्यपालिका का स्वरूप

संविधान में संघीय कार्यपालिका के सम्बन्ध में ऊपर लिखी हुई व्यवस्था की गई है। अब इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ा जा सकता है कि इसका वास्तविक स्वरूप क्या है: यह संसद के अधीन है, या संसद से स्वतन्त्र। इसको जानने के लिए यह निश्चय करना पड़ेगा कि वास्तव में कार्यपालिका की शक्ति राष्ट्रपति

में निहित है या मन्त्रि-परिषद् में। संविधान के अनुच्छेदों को ऊपर से देखने पर तो जान पड़ेगा कि राष्ट्रपति को ही कार्यपालिका-सम्बन्धी सभी शक्तियाँ हैं। मन्त्रि-परिषद् का काम राष्ट्रपति को सिर्फ सहायता और परामर्श देना कहा गया है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करेगा। मन्त्री लोग अपने पद पर भी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त ही रह सकेंगे। लेकिन असल में शासन का काम राष्ट्रपति के हाथ में नहीं, बल्कि मन्त्रि-परिषद् के हाथ में रहेगा। संविधान में यह कहा गया है कि मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप से लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। इसका अर्थ यह है कि वही मन्त्री अपने पद पर रह सकेंगे जिनमें लोक-सभा के बहुमत का विश्वास हो। ऐसी दशा में राष्ट्रपति जिसको चाहे उसे प्रधान मन्त्री नहीं नियुक्त कर सकता। उसे तो उसीको प्रधान मन्त्री नियुक्त करना पड़ेगा जिसमें लोकसभा के बहुमत का विश्वास हो। दूसरे व्यक्ति के प्रधान मन्त्री नियुक्त किए जाने पर उसे लोकसभा के बहुमत का समर्थन नहीं प्राप्त होगा और उसे अपने पद से अलग होना पड़ेगा। इसी तरह शासन का काम भी राष्ट्रपति के नहीं, बल्कि मन्त्रि-परिषद् की इच्छा के अनुसार चलेगा। अगर मन्त्रिपरिषद् द्वारा किए गए निर्णय को कभी राष्ट्रपति नहीं स्वीकार करे, तो प्रधान मन्त्री इस्तीफा देकर राष्ट्रपति के सामने एक संवैधानिक सङ्कट उपस्थित कर दे सकता है। जबतक उसमें लोकसभा के बहुमत का विश्वास है, तबतक दूसरा व्यक्ति प्रधान मन्त्री के पद पर अधिक दिनों तक नहीं रह सकता। लोक-सभा की बैठक होते ही, वह उसमें अपना अविश्वास प्रकट कर देगी और उसे अपने पद से अलग होना पड़ेगा। और संविधान के अनुसार बिना मन्त्रि-परिषद् के शासन नहीं चल सकता। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति को मजबूर होकर उसी पुराने व्यक्ति को प्रधान मन्त्री का पद स्वीकार करने के लिए निमन्त्रित करना पड़ेगा और उसकी बात माननी पड़ेगी। इस तरह यह निष्कर्ष निकलता है कि नाम के लिए तो कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है, जो संसद से स्वतन्त्र है, लेकिन असल में यह शक्ति मन्त्रिपरिषद् को प्राप्त है, जो संसद के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए भारत की कार्यपालिका अमेरिका के संयुक्तराष्ट्र की कार्यपालिका की तरह संसद से स्वतन्त्र नहीं, बल्कि ब्रिटेन, फ्रांस इत्यादि की तरह संसद के अधीन है। संक्षेप में यहाँ की कार्यपालिका संसदमूलक है।

वैसे तो स्वतंत्र कार्यपालिका की भी अपनी विशेषताएँ हैं, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि भारत की वर्तमान अवस्था में संसदमूलक कार्यपालिका की व्यवस्था करना ही उचित था। संसदमूलक कार्यपालिका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इससे कार्यपालिका और, विधानमंडल में संघर्ष की सम्भावना बहुत घट जाती है। दोनों बराबर साथ मिलकर काम करते हैं। मंत्रिपरिषद् पर संसद का बराबर प्रतिबन्ध रहता है और संसद को भी विधि बनाने के काम में मंत्रियों के नेतृत्व से लाभ होता है। संविधानसभा में बोलते हुए, प्रारूपसमिति के सदस्य श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने इसी बात पर जोर दिया था—"आजकल की परिस्थिति में हमारे देश के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भ में विधानमण्डल और कार्यपालिका में बहुत निकट सम्बन्ध रहे। इसी कारण से संघ संविधानसमिति और इस सभा ने संसदमूलक कार्यपालिका स्वीकार किया है।"[1] राजनीतिशास्त्र के विद्वानों ने भी नए राज्यों के लिए संसदमूलक कार्यपालिका को ही अधिक अच्छा बतलाया है। इससे शासन पर विधानमंडल की देख-रेख रहती है और विधान-मण्डल भी अपने कामों के जरिए अनुभव प्राप्त करता जाता है[2]। इससे लोकतन्त्र की स्थापना में भी आसानी होती है। मन्त्रि-परिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी रहती है और संसद को जनता चुनती है। इस तरह शासन के कामों पर जनता का अधिकार हो जाता है। मकीवर के शब्दों में—"इसके (संसदमूलक कार्यपालिका के) बिना विधानमण्डल के सर्वोच्च स्थान का कोई आश्वासन नहीं है। यह संसद को शासन का केन्द्र बना देती है, जिससे जनता (Ultimate Sovereign) संसद पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण द्वारा बिना किसी विशद सांविधानिक यंत्र के, समूचे राज्य के शासन पर नियन्त्रण रख सकती है।"[3]

यही सोचकर कि शासन पर असल अधिकार तो राष्ट्रपति का नहीं, बल्कि मन्त्रि-परिषद् का रहेगा, संविधानसभा ने राष्ट्रपति के जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था नहीं की। यह उचित भी था। प्रत्यक्ष रूप में जनता

---

1. Constituent Assembly Debates, 10th December. 1948.
2. C. F. Strong: Modern Political Constitution 253.
3. MacIver: The Modern State. P. 374.

द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति नाम की शक्तियों से सन्तुष्ट रह सके इसकी सम्भावना कम रहती है, और ऐसी व्यवस्था करने पर राष्ट्रपति और मन्त्रिपरिषद् के बीच संघर्ष की आशंका बनी रहती। लेकिन राष्ट्रपति का पद बिलकुल अधिकार-शून्य नहीं है। इस सम्बन्ध में संविधानसभा में बोलते हुए श्रीजवाहरलाल नेहरू ने जो संविधानसभा के संघसंविधानसमिति के प्रधान थे—कहा था "हम लोग इसपर जोर देना चाहते हैं कि वास्तव में शक्ति का निवास मंत्रिपरिषद् और विधानमंडल में हो, राष्ट्रपति में नहीं। साथ-ही-साथ हमलोग राष्ट्रपति को फ्रांस के राष्ट्रपति की तरह सिर्फ दिखलाने के लिए (Just a mere figure-head) नहीं बनाना चाहते हैं। हमलोगों ने उसे कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी, लेकिन हमने उसके पद को अधिकार और गरिमा (authority and dignity) से युक्त बनाया है।"[४] इसीलिए राष्ट्रपति का निर्वाचन फ्रांस की तरह संसद के दोनों सदनों द्वारा नहीं रखकर एक विशेष निर्वाचकगण द्वारा रखा गया जिसमें राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य भी भाग लेंगे। मंत्रिपरिषद् के सभी निर्णयों की सूचना भी राष्ट्रपति को मिलती रहेगी। इसके अलावे देश के शासन के सम्बन्ध में जो जानकारी राष्ट्रपति चाहेगा उसे वह पहुँचाना प्रधान मंत्री का कर्तव्य होगा। अगर कोई बात एक खास मंत्री द्वारा तय की गई हो और पूरे मंत्रिपरिषद् ने उसपर विचार नहीं किया हो, तो राष्ट्रपति अगर चाहे तो उसपर मंत्रिपरिषद् द्वारा पुनः विचार करवा सकता है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति में तो उसको कोई विशेष अधिकार अवश्य नहीं रहेगा और उसे उसी को इस पद के लिए निमंत्रित करना पड़ेगा जिसमें लोकसभा के बहुमत का विश्वास हो। लेकिन विशेष परिस्थिति में राष्ट्रपति के इस अधिकार का महत्त्व बढ़ जा सकता है। अगर लोकसभा में कई छोटे-छोटे दल हों और किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत नहीं हो, तब प्रधान मंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति की इच्छा का बहुत प्रभाव पड़ेगा, जैसा कि अकसर फ्रांस में होता है। ऐसी परिस्थिति में कई दलों में मध्यस्थता करने और उन्हें साथ मिलकर संयुक्त मंत्रिमंडल (Coalition Ministry) बनाने

---

4. Constituent Assembly Debates, 21st July, 1947.

पर राजी करना राष्ट्रपति का कर्त्तव्य होगा और इससे उसका प्रभाव और भी बढ़ेगा। इसके अलावे राष्ट्रपति देश की एकता का प्रतीक होगा। वह सभी राजनीतिक दलबन्दी से ऊपर रहने के कारण विशेष सम्मान का पात्र होगा। शासन पर राष्ट्रपति का प्रभाव उसके व्यक्तित्व के अनुसार होगा। श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने बहुत ठीक लिखा है—"भारतीय संविधान ने संसद-मूलक कार्यपालिका की व्यवस्था की है। वर्तमान काल में इंगलैंड की कैबिनेट प्रणाली की कार्यपद्धति से यह प्रकट होता है कि यद्यपि सिद्धान्त में मंत्रिगण राजा के परामर्शदाता हैं, वास्तविक व्यवहार में, अगर राजा को उपयोगी बनकर काम करना है, तो इसे मंत्रिमंडल को परामर्श देना और मंत्रिमंडल के सदस्यों पर नैतिक और सामाजिक प्रभाव डालना पड़ता है। भारतीय संविधान में राष्ट्रपति का भी इसी तरह का स्थान रहेगा। राष्ट्रपति के व्यक्तित्व, सम्मान और भीतर और बाहर उसके नैतिक प्रभाव का उसके और मंत्रिपरिषद् के बीच के पारस्परिक सम्बन्ध पर बहुत बड़ा असर पड़ेगा।"[5]

भारतीय संविधान में संघीय कार्यपालिका के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है, उसमें एक दोष रह गया है। संविधान के उपबन्ध के अनुसार मंत्री लोग राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त ही अपने पदों पर रह सकते हैं। जब मंत्रियों को लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है, तब इस तरह की व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं थी। विशेष परिस्थिति में इस व्यवस्था से उत्तरदायी शासन में बाधा पड़ सकती है और यह सांविधानिक संकट का कारण बन सकती है। जबतक देश में और लोकसभा में एक दल का बहुत अधिक बहुमत हो, तब-तक तो राष्ट्रपति की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन अगर कभी दो दलों की शक्ति में बहुत अधिक अन्तर नहीं हो और राष्ट्रपति की सहानुभूति किसी एक दल के साथ हो, तो वह उस दल के लाभ के लिए इस व्यवस्था का प्रयोग कर सकता है। इस तरह अगर इस व्यवस्था का प्रयोग नहीं हो, जैसा कि आशा की जाती है, तो यह अनावश्यक है और अगर इसका कभी प्रयोग हो, जिसे सर्वथा असम्भव नहीं कहा जा सकता, तब यह हानिकारक है।

---

5. Article on the Indian Constitution, Amrit Bazar Patrika Republic Supplement, January 26, 1950.

भारत का महान्यायवादी
(The Attorney General for India)

भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखता हो। महान्यायवादी का कर्तव्य होगा कि भारत-सरकार को कानूनी बातों में सलाह दे। इनके सम्बन्ध में उन सभी कामों को करे जो राष्ट्रपति उसे समय-समय पर सौंपे। महान्यायवादी उन दूसरे कामों को भी करेगा जो संविधान अथवा अन्य किसी कानून द्वारा उसे दिए गए हों। अपने कर्तव्यों के पालन के लिए महान्यायवादी को भारत के सभी न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा। महान्यायवादी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहेगा। उसके कामों के लिए उसे ऐसा पारिश्रमिक मिलेगा जैसा राष्ट्रपति तय करे।

अध्याय १४

संघीय विधानमंडल

पहले शासन करने और विधि बनाने के लिए अलग-अलग संस्थाएँ नहीं रहती थीं। जिनके हाथ में शासन का काम रहता था, वही कानून भी बनाते थे। लेकिन आधुनिक युग में कानून बनाने के लिए विधानमण्डल रहते हैं। इन विधानमंडलों में जनता के प्रतिनिधि बैठते हैं और जनता की इच्छा के मुताबिक उसीके लाभ के लिए कानून बनाते हैं। लोकतन्त्र के विकास के साथ-साथ विधानमंडल का महत्त्व भी बढ़ता गया है। देश के लिए कानून बनाना, शासन के खर्च के लिए धन मंजूर करना, मंत्रिपरिषद् के काम की देखभाल करना, संविधान का अतिक्रमण करने के लिए राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाना—ये सभी काम इसके जिम्मे अक्सर रहते हैं। विधानमंडल जनता की शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए लोकतन्त्र के युग में इसका महत्त्वपूर्ण समझा जाना स्वाभाविक ही है। किसी देश के विधानमंडल की विशेषताओं पर विचार करते समय यह देखा जाता है कि इसके निर्वाचन में मत देने का अधिकार सभी को है या कुछ सीमिति लोगों को, इसमें एक सदन है या दो, इसके काम करने का तरीका क्या है, इसकी शक्तियों पर कोई रुकावट है या नहीं। भारत के संघीय विधानमंडल पर भी इन्हीं दृष्टियों से विचार किया जायगा।

संसद : रचना, अवधि, सदस्यों के अधिकार

संविधान के अनुसार संघीय विधानमंडल को संसद (पार्लियामेंट) कहा जायगा। यह संसद राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। इन सदनों के नाम क्रमशः राज्यपरिषद् और लोकसभा होंगे। राज्यपरिषद् द्वारा नामजद किये जानेवाले बारह सदस्यों तथा राज्यों के अधिक-से-अधिक दो सौ अड़तीस

प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगी। राज्यपरिषद् में राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जानेवाले स्थानों का बँटवारा निम्नलिखित ढंग से किया गया है—आसाम ६, बिहार २१, बम्बई १७, मध्यप्रदेश १२, मद्रास २७, उड़ीसा ९, पंजाब ८, उत्तरप्रदेश ३१, पश्चिमी बंगाल १४, जम्मू और काश्मीर ४, तिरुवांकुर-कोचीन ६, पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य ३, मध्यभारत ६, मैसूर ६, राजस्थान ९, विन्ध्यप्रदेश ४, सौराष्ट्र ४, हैदराबाद ११, अजमेर और कुर्ग मिलाकर १, कच्छ १, कोच-बिहार १, दिल्ली १, बिलासपुर और हिमाचलप्रदेश मिलाकर १, भोपाल तथा मनीपुर और त्रिपुरा मिलाकर १। राज्यपरिषद् के लिए प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) के राज्यों के प्रतिनिधि उन राज्यों की विधानसभाओं द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व-पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा चुने जायँगे। भाग (ग) के राज्यों के प्रतिनिधि ऐसी रीति से चुने जायँगे जैसी कि संसद विधि द्वारा तय करे। राष्ट्रपति द्वारा नामजद किए जानेवाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जो साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा की तरह के विषयों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखते हों।

लोकसभा के सदस्यों की संख्या पाँच सौ से अधिक नहीं होगी। ये सदस्य राज्यों के मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होंगे। इस काम के लिए सभी राज्यों को प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित किया जायगा। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से कितने सदस्य चुने जायँ, यह इस प्रकार तय होगा जिसमें प्रति ७,५०,००० जनसंख्या के लिए कम-से-कम एक सदस्य और प्रति ५,००,००० जनसंख्या के लिए एक से अधिक सदस्य न हों। प्रत्येक निर्वाचनक्षेत्र से चुने जानेवाले सदस्यों की संख्या का उस निर्वाचनक्षेत्र की जनसंख्या से अनुपात समूचे देश में जहाँ तक सम्भव हो—एक ही होगा।

भारत का प्रत्येक नागरिक संसद का सदस्य हो सकेगा, लेकिन राज्यपरिषद् का सदस्य होने के लिए उसका कम-से-कम तीस साल का और लोकसभा के लिए कम-से-कम पचीस साल का होना जरूरी है। संसद को विधि द्वारा सदस्यों की दूसरी योग्यताएँ निर्धारित करने का अधिकार रहेगा और अगर कभी संसद ऐसा करे, तब वही इसके सदस्य हो सकेंगे जो इन योग्यताओं से युक्त हों। कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के योग्य

नहीं होगा अगर वह भारत-सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर है, पागल है, दिवालिया है, भारत का नागरिक नहीं है या संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के अनुसार अयोग्य कर दिया गया है। इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए कोई व्यक्ति भारत-सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करनेवाला केवल इसीलिए नहीं समझा जायगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है।

कोई व्यक्ति एक ही साथ संसद के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकेगा। अगर कोई व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य चुन लिया गया हो, तो वह संसद द्वारा बनाई गई विधि के अनुसार एक या दूसरे सदन के स्थान को रिक्त कर देगा। कोई व्यक्ति एक ही साथ संसद और किसी राज्य के विधानमण्डल के किसी सदन, इन दोनों का सदस्य नहीं होगा। यदि कोई व्यक्ति इन दोनों का सदस्य चुन लिया जाय, तो उसे राष्ट्रपति द्वारा निश्चित समय के भीतर राज्य के विधानमण्डल से त्यागपत्र दे देना पड़ेगा। अगर वह ऐसा नहीं करेगा, तो संसद में उसका स्थान रिक्त समझा जायगा। संसद का कोई सदस्य अपनी स्वेच्छा से त्याग पत्र देकर भी संसद से अलग हो सकता है। यदि संसद के किसी सदन का सदस्य सदन की अनुमति के बिना लगातार साठ दिन तक उसके सभी अधिवेशनों में अनुपस्थित रहे, तो उसका स्थान रिक्त समझा जायगा।

राज्यपरिषद् का कभी विघटन न होगा, लेकिन उसके सदस्यों में से एक तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष के खतम होने पर इससे हट जाया करेंगे। एक बार चुने जाने पर लोकसभा पाँच साल तक रहेगी। हाँ, वह इससे पहले भी विघटित की जा सकती है। इसी तरह जब आपात की उद्घोषणा लागू हो, तब संसद विधि द्वारा इस अवधि को जितना चाहे, बढ़ा सकती है। लेकिन इस तरह लोकसभा की अवधि एक बार एक साल से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। किसी भी अवस्था में आपात की उद्घोषणा खतम हो जाने पर यह अवधि छः मास से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती।

संसद में भाषण की स्वतंत्रता रहेगी। संसद या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात अथवा दिए गए किसी मत के सम्बन्ध में संसद के किसी

सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायाल में कोई सुनवाई नहीं होगी। अन्य बातों में संसद के प्रत्येक सदन की, तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों को वे शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्राप्त होंगी जो समय-समय पर विधि-द्वारा संसद स्थिर करे। जबतक संसद ऐसा नहीं करे तबतक ये वही होंगी जो इंगलैंड के हाउस आफ कामन्स' को तथा उसके सदस्यों और समितियों को प्राप्त हैं। संसद के प्रत्येक सदन के सदस्यों को ऐसे वेतन और भत्ते मिलेंगे जिन्हें संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करे। जबतक संसद इस सम्बन्ध में कोई विधि नहीं बनाती, तबतक ये वेतन और भत्ते वही रहेंगे, जो भारत-डोमीनियन की संविधानसभा के सदस्यों को इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले मिलते थे।

संसद के पदाधिकारी

भारत का उपराष्ट्रपति पदेन राज्यपरिषद् का सभापति होगा। राज्यपरिषद् यथा-सम्भव शीघ्र अपने किसी सदस्य को अपना उपसभापति चुनेगी। जब-जब उपसभापति का पद रिक्त हो, तब-तब राज्यपरिषद् किसी अन्य सदस्य को अपना उपसभापति चुनेगी। राज्यपरिषद् के उपसभापति के रूप में पद धारण करनेवाला सदस्य, यदि इसका सदस्य नहीं रहे, तब वह अपना पद छोड़ देगा। वह कभी भी त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग होने के लिए स्वतंत्र रहेगा। वह परिषद् के सभी सदस्यों के बहुमत से पास किए हुए प्रस्ताव द्वारा अपनें पद से हटाया भी जा सकता है। लेकिन इस तरह का कोई प्रस्ताव तबतक नहीं पेश किया जा सकेगा जब तक कि कम-से-कम चौदह दिन पहले इसकी सूचना नहीं दे दी गई हो। जब सभापति का पद खाली हो अथवा वह अनुपस्थित हो, तब उपसभापति उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा। यदि उपसभापति का पद भी खाली हो, तो राज्यपरिषद् का ऐसा सदस्य जिसे राष्ट्रपति इस काम के लिए नियुक्त करे, उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा। यदि राज्यपरिषत् की किसी बैठक में उपराष्ट्र-पति अनुपस्थित हो, तो ऐसा व्यक्ति जो परिषद् के नियमों द्वारा निर्धारित हो, सभापति के रूप में कार्य करेगा और यदि ऐसा व्यक्ति भी अनुपस्थित हो तब वह जिसे परिषद् तय करे। राज्य परिषद की किसी बैठक में जब उपराष्ट्रपति को

उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो तब सभापति अथवा जब उपसभापति को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो तब उपसभापति, उपस्थित रहने पर भी सभापतित्व नहीं करेगा। जबकि उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव राज्यपरिषद् में विचाराधीन हो, तब सभापति को परिषद् में बोलने तथा दूसरी तरह से उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होगा, लेकिन उसे ऐसे प्रस्ताव पर या इस सम्बन्ध में किसी अन्य विषय पर मत देने का कोई अधिकार नहीं होगा।

लोकसभा यथासम्भव शीघ्र अपने दो सदस्यों को क्रमशः अपना अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के सम्बन्ध में अन्य बातें करीब करीब वैसी ही होंगी जैसी राज्यपरिषद् के सभापति और उपसभापति के सम्बन्ध में हैं। यहाँ एक व्यवस्था यह भी है कि जब कभी लोकसभा का विघटन हो, तो विघटन के पश्चात् नई लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के ठीक पहले तक अध्यक्ष अपने पद को रिक्त नहीं करेगा। यहाँ दूसरी विशेषता यह रहेगी कि जब अध्यक्ष को उसके पद से हटाने के लिए कोई प्रस्ताव लोकसभा में विचाराधीन हो, तब उसको लोकसभा में बोलने तथा दूसरे प्रकार से उसकी कार्यवाही में भाग लेने के साथ-साथ पहली बार अपना मत देने का भी अधिकार रहेगा। हाँ, जब दोनों तरफ बराबर-बराबर मत रहे, तब उसे अपना मत देने का अधिकार नहीं होगा।

राज्यपरिषद् के सभापति और उपसभापति को तथा लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को वही वेतन और भत्ते दिए जाएँगे, जो संसद विधि द्वारा तय करे। जबतक संसद ऐसा नहीं करे तबतक ये वही होंगे जो संविधान के प्रारम्भ होने के ठीक पहले क्रमशः संविधानसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को मिलते थे। संसद के प्रत्येक सदन का अपना पृथक् साचविकवृन्द (Seperate Secretarial Staff) रहेगा। लेकिन संसद के दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पद भी कायम किए जा सकते हैं। संसद विधि द्वारा इन कर्मचारियों की भर्ती-सम्बन्धी बातों को और इनकी सेवा की शर्तों को तय कर सकेगी। जबतक संसद ऐसा नहीं करती तबतक राष्ट्रपति यथास्थिति, लोक-

सभा के अध्यक्ष से या राज्यपरिषद् के सभापति से परामर्श कर इनके सम्बन्ध में नियम बना सकेगा।

अधिवेशन और कार्यसंचालन

संसद के सदनों का हर साल कम-से-कम दो बार अधिवेशन बुलाया जायगा। उनके एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक और आगामी अधिवेशन की पहली बैठक की तारीख के बीच छः मास से कम का ही अन्तर रहेगा। इस उपबन्ध (Provision) के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति समय-समय पर आवश्यकतानुसार संसद के दोनों सदनों का अथवा किसी एक सदन का ऐसे समय तथा स्थान पर जैसा वह उचित समझे, अधिवेशन बुला सकेगा। राष्ट्रपति सदनों का सत्रावसान (Prorogne) अर्थात् उनको अनिश्चित काल के लिए स्थगित, और लोकसभा का विघटन कर सकेगा।

राष्ट्रपति संसद के किसी एक सदन में अथवा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाषण दे सकेगा और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों को उपस्थित होनेका आदेश दे सकेगा। वह संसद के किसी भी सदन को, उस समय संसद में विचाराधीन किसी विधेयक या अन्य किसी बात के सम्बन्ध में, सन्देश भेज सकेगा। जिस सदन को कोई सन्देश इस प्रकार भेजा गया हो, वह सदन उस सन्देश द्वारा अपेक्षित विचारणीय विषय पर यथासुविधा शीघ्रता से विचार करेगा। राष्ट्रपति प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाषण देगा। इस भाषण में वह विविध विषयों के सम्बन्ध में सरकार की नीति पर प्रकाश डालेगा और संसद के अधिवेशन में आनेवाले कामों की चर्चा करेगा। प्रत्येक सदन में ऐसा नियम बनाया जायगा जिसमें सबसे पहले राष्ट्रपति के अभिभाषण में कही गई बातों पर विचार हो।

भारत के प्रत्येक मन्त्री और महान्यायवादी को अधिकार होगा कि वह संसद के किसी भी सदन में, सदनों की किसी संयुक्त बैठक में तथा संसद की किसी समिति में, जिसका वह सदस्य हो, बोले तथा दूसरे प्रकार से कार्यवाहियों में भाग ले। लेकिन इस अनुच्छेद के आधार पर उसको मत देने का अधिकार नहीं होगा। संसद के प्रत्येक सदन के प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण

करने के पहले राष्ट्रपति के अथवा राष्ट्रपति द्वारा इस काम के लिए नियुक्त व्यक्ति के सामने शपथ लेना या प्रतिज्ञा करना पड़ेगा कि वह भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखेगा तथा अपने पद के कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक पालन करेगा।

संविधान में जिन बातों के सम्बन्ध में विशेष व्यवस्था की गई है उनको छोड़कर, किसी सदन की किसी बैठक में या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में सभी प्रश्नों का उपस्थित तथा मत देनेवाले सदस्यों के बहुमत से, निर्णय किया जायगा। राज्यपरिषद् का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष या उनमें से किसी के रूप में कार्य करनेवाला व्यक्ति पहले अपना मत नहीं देगा, लेकिन जब किसी बात पर पक्ष और विपक्ष में मत देनेवालों की संख्या समान हो जाय, तब उसका निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा। सदस्यता में कोई रिक्तता रहने पर भी, संसद के किसी सदन को कार्य करने की शक्ति होगी। यदि कभी बाद में यह पता चले कि कोई व्यक्ति जिसे ऐसा करने का अधिकार नहीं था, कार्यवाहियों में उपस्थित रहा, उसने मत दिया अथवा अन्य प्रकार से भाग लिया, तो भी संसद की वह कार्यवाही मान्य होगी।

जबतक संसद विधि द्वारा दूसरी व्यवस्था नहीं करे तबतक संसद के प्रत्येक सदन के अधिवेशन के लिए गणपूर्ति (quorum) उस सदन के सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश होगी। यदि किसी सदन के अधिवेशन में कभी गणपूर्ति नहीं रहे, तो सभापति या अध्यक्ष या उस रूप में कार्य करने-वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य होगा कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या बैठक को तबतक के लिए रोक दे जबतक कि गणपूर्ति न हो जाय।

विधान-प्रक्रिया (Legislative Procedure)

धन-विधेयकों तथा अन्य वित्तीय विधेयकों (Money Bills and other Financial Bills) को छोड़कर कोई विधेयक संसद के किसी सदन में आरम्भ हो सकेगा। कोई विधेयक संसद के सदनों द्वारा पास किया हुआ तबतक नहीं समझा जायगा जबतक कि दोनों सदनों द्वारा वह स्वीकार न कर लिया गया हो। अगर इस विधेयक में किसी

सदन में कोई संशोधन पेश किया जाय, तो वह भी तभी पास हुआ समझा जायगा जब वह दोनों सदनों को स्वीकृत हो। यदि किसी विधेयक के एक सदन से पास होने तथा दूसरे सदन को पहुँचाए जाने के बाद, दूसरे सदन द्वारा वह विधेयक अस्वीकार कर दिया जाय, अथवा विधेयक में किए जानेवाले संशोधनों पर दोनों सदन सहमत नहीं हों, अथवा दूसरे सदन के विधेयक पाने की तारीख से बिना इसके पास हुए ६ मास से अधिक बीत जाय, तो राष्ट्रपति इस विधेयक पर विचार करने और मत देने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकेगा। यदि सदनों की इस संयुक्त बैठक में वह विधेयक, दोनों सदनों के उपस्थित तथा मत देनेवाले समस्त सदस्यों के बहुमत से पास हो जाय, तो वह दोनों सदनों से पास किया हुआ समझा जायेगा।

धन-विधेयकों के सम्बन्ध में इससे कुछ भिन्न प्रक्रिया है। धन-विधेयक राज्य-परिषद् में नहीं पेश किया जायेगा। लोकसभा से पास हो जाने के बाद यह राज्यपरिषद् में भेजा जायगा। राज्यपरिषद् विधेयक की प्राप्ति से चौदह दिन के भीतर, इसे अपनी सिपारिशों सहित लोकसभा को लौटा देगी। इसके बाद लोक-सभा राज्य-परिषद् की सिफारिशों में से सबको या किसी को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी। यदि राज्य-परिषद् की सिपारिशों में से किसी को लोकसभा स्वीकार कर ले, तो धन-विधेयक इन संशोधनों के साथ दोनों सदनों से पास हुआ समझा जायेगा। यदि लोकसभा राज्य-परिषद् की सिपारिशों में से किसी को भी स्वीकार नहीं करे, तो धन-विधेयक इन संशोधनों में से किसी के बिना, उसी रूप में दोनों सदनों द्वारा पास हुआ समझा जायेगा, जिसमें कि वह लोक-सभा द्वारा पास किया गया था। यदि लोकसभा द्वारा पास किया हुआ और राज्य-परिषद् में उसकी सिपारिशों के लिए भेजा हुआ धन-विधेयक चौदह दिन की अवधि के भीतर लोकसभा को लौटाया नहीं जाय, तो इस अवधि की समाप्ति पर यह दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पास समझा जायगा जिसमें लोकसभा ने उसको पास किया था।

कोई विधेयक धन-विधेयक समझा जायेगा जब उसमें निम्नलिखित विषयों में से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखनेवाली बातें हों :—

(क) किसी कर का लगाना, हटाना, कम करना, बदलना या विनियमन (Regulation);

(ख) भारत-सरकार द्वारा धन उधार लेने का अथवा कोई प्रत्याभूति (Guarantee) देने का अथवा भारत-सरकार द्वारा लिए गए या लिए जानेवाले किन्हीं वित्तीय आभारों से सम्बद्ध विधि के संशोधन करने का विनियमन ;

(ग) भारत की संचित निधि (Consolidated fund of India) या आकस्मिकता-निधि (Contingency fund of India) की रक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना ;

(घ) भारत की संचित निधि से धन का विनियोग (Appropriation);

(ङ) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि (Amount) को बढ़ाना ।

(च) भारत की संचित निधि के या भारत के लोकलेखे (Public Account of India) के मध्ये (On account of) धन प्राप्त करना, अथवा ऐसे धन की रक्षा या निकासी करना अथवा संघ या राज्य के लेखाओं का लेखा-परीक्षण ; अथवा

(छ) ऊपर दिए हुए विषयों में से किसी का आनुषंगिक (Incidental) कोई विषय ।

कोई विधेयक केवल इस कारण से धन-विधेयक नहीं समझा जायगा कि वह जुर्मानों या दूसरे अर्थ-दंडों (Pecuniary penalties) के लगाने का, अथवा लाइसेन्सों या की हुई सेवाओं के लिए फीसों को लगाने या देने का अथवा किसी स्थानीय प्राधिकारी या संस्था (Local authority or body) द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए कर के लगाने, खतम करने, कम करने, बदलने या विनियमन का उपबन्ध करता है। यदि कभी यह प्रश्न उठे कि कोई विधेयक धन-विधेयक है या नहीं, तो उसपर लोकसभा के अध्यक्ष

का निर्णय सबको मान्य होगा और अन्तिम समझा जायगा। लोकसभा द्वारा पास किये हुए प्रत्येक धन-विधेयक पर इसके अध्यक्ष के हस्ताक्षर-सहित यह प्रमाण अंकित रहेगा कि वह धन-विधेयक है।

सभी तरह के विधेयकों पर उनके अधिनियम बनाने के लिए, राष्ट्रपति की अनुमति (Assent) आवश्यक है। जब संसद के सदनों से कोई विधेयक पास हो जाय, तब वह राष्ट्रपति के सामने उसकी अनुमति के लिए रखा जायेगा। राष्ट्रपति तब यह घोषित करेगा कि वह विधेयक पर या तो अनुमति देता है या अनुमति रोक लेता है। परन्तु वह, अनुमति के लिए अपने सामने विधेयक रखे जाने के बाद यथाशीघ्र उस विधेयक को, यदि वह धन विधेयक न हो तो, सदनों को अपने संदेश के साथ लौटा सकेगा। इस संदेश में वह सदनों से उस विधेयक पर या उसमें दी गई खास-खास बातों पर पुनर्विचार करने तथा विशेषतः किन्ही ऐसे संशोधनों को पेश करने की वांछनीयता पर विचार करने को कहेगा, जिनकी उसने अपने संदेश में सिपारिश की हो। जब विधेयक इस प्रकार लौटा दिया गया हो, तब सदन इसपर तदनुसार पुनर्विचार करेंगे। यदि इस पुनर्विचार के बाद यह विधेयक सदनों द्वारा संशोधन-सहित या बिना संशोधन के पुनः पास हो जाय, तथा राष्ट्रपति के सामने फिर अनुमति के लिए रखा जाय, तो इस बार वह अपनी अनुमति नहीं रोकेगा।

वित्तीय विषयों में प्रक्रिया
(Procedure in financial matters)

राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में संसद के दोनों सदनों के सामने उस वर्ष के लिए भारत-सरकार की आमदनी और खर्च के अन्दाज (प्राक्कलित प्राप्तियों और व्ययों, estimated income and expenditure) का विवरण रखवावेगा। इसे वार्षिक वित्त-विवरण (Annual financial statement) कहा जायगा। इस विवरण में दो तरह के खर्च अलग-अलग दिखलाए जायँगे—एक वे जो भारत की संचित निधि पर भारित (Charged upon the Consolidsted fund of India) होंगे और दूसरे वे जो भारत की संचित निधि से किये जायेंगे। साथ-ही-साथ राजस्व-लेखे

(Revenue Account) पर होनेवाले व्यय का अन्य व्यय से भेद किया जायगा।

भारत की संचित निधि पर भारित व्यय ये सब होंगे—राष्ट्रपति की उपलब्धियाँ और भत्ते तथा उसके पद से सम्बन्धित दूसरे खर्च; राज्यपरिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते; ऐसे ऋणभार जिनका दायित्व भारत सरकार पर है; उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को दिये जानेवाले वेतन, भत्ते और पेन्शन; फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को दी जानेवाली पेंशन; उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को दी जानेवाली पेन्शन; भारत के नियन्त्रक महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor-General of India) को दिये जानेवाले वेतन, भत्ते और पेन्शन; किसी न्यायालय के निर्णय के मुताबिक दिये जानेवाले रुपये; वे दूसरे व्यय जो भारतीय संविधान द्वारा या संसद द्वारा इस प्रकार भारित घोषित किए जायँ।

भारत की संचित निधि पर भारित व्यय से सम्बद्ध प्राक्कलनों (Estimates) पर संसद में मतदान नहीं होगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इनपर वाद-विवाद भी नहीं हो सकेगा। इन प्राक्कलनों में से जो दूसरे व्यय से सम्बद्ध हैं, वे लोकसभा के सामने अनुदानों की माँगों (Demands for Grants) के रूप में रखी जायँगी। इनमें से किसी माँग को स्वीकार या अस्वीकार करना लोकसभा की मर्जी पर निर्भर रहेगा। लोकसभा को किसी माँग में रखी गई राशि को कम करके स्वीकार करने की भी शक्ति होगी। लेकिन लोकसभा को स्वयं किसी माँग को बढ़ाने या कोई नई माँग रखने की शक्ति नहीं होगी। संविधान में स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति की सिपारिश के बिना किसी भी अनुदान की माँग नहीं की जायेगी।

लोकसभा द्वारा इस प्रकार अनुदान किए जाने के बाद यथाशीघ्र विनियोग-विधेयक (Appropriation Bill) पेश किया जायगा। इसमें लोकसभा द्वारा किए गए अनुदानों तथा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित सब धनों के भारत की संचित निधि में से विनियोग के लिए व्यवस्था की जायगी। ऐसे विधेयक में इस तरह का कोई

शोधन नहीं पेश किया जा सकेगा जिससे इस तरह किए गए अनुदान की अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि में फेरफार हो, अथवा कसी अनुदान का लक्ष्य बदल जाय। कोई संशोधन पेश किए जाने लायक है या नहीं—इसपर लोकसभा के अध्यक्ष का या उस रूप में काम करते हुए किसी दूसरे व्यक्ति का निर्णय अन्तिम होगा। इस तरह से पास हुई विधि द्वारा किए गए विनियोग के अनुसार ही भारत की संचित निधि में से कोई धन निकाला जा सकेगा। ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में भी इसी प्रक्रिया के अनुसार काम होता है।

संविधान में अनुपूरक, अपर या अधिकाई अनुदानों (Supplementary, additional or excess grants) के सम्बन्ध में भी व्यवस्था की गई है। लोकसभा को किसी अनुदान को पेशगी देने की (Votes on Account, लेखानुदान) भी शक्ति होगी। लोकसभा प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान (Votes of Credit and exceptional grants) भी मंजूर कर सकेगी।

साधारणतया प्रक्रिया
(Procedure Generally)

संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद का प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन के लिए नियम बना सकेगा। जबतक ये नियम नहीं बनाए जाते, तबतक इस संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले भारत-डोमिनियन के विधानमण्डल के सम्बन्ध में जो प्रक्रिया के नियम लागू थे, वे ही ऐसे परिवर्तनों के साथ जिन्हें यथास्थित राज्यपरिषद् का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष करे, संसद के सम्बन्ध में लागू रहेंगे। राज्य-परिषद् के सभापति और लोकसभा के अध्यक्ष से परामर्श लेने के बाद राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों तथा उनमें परस्पर संचार (Communications) के सम्बन्ध में प्रक्रिया के नियम बना सकेगा। दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में लोकसभा का अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में ऐसा व्यक्ति जो इस प्रकार बनाई गई प्रक्रिया के अनुसार उचित समझा जाय, सभापतित्व करेगा।

संसद में कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में किया जायगा। परन्तु यथास्थित राज्य-परिषद् का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष अथवा ऐसे रूप में कार्य करनेवाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में पूरी तरह से अपना भाव नहीं प्रकट कर सकता, अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुज्ञा दे सकेगा। जबतक संसद विधि द्वारा कुछ दूसरी बात नहीं तय करे, तबतक इस संविधान के प्रारम्भ से १५ वर्ष के बाद संसद के कार्य की भाषा 'हिन्दी या अंग्रेजी' की जगह सिर्फ हिन्दी रहेगी।

उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को, आगे दी हुई रीति से हटाने की प्रार्थना करनेवाले समावेदन (Address) को राष्ट्रपति के सामने रखने के प्रस्ताव पर वादविवाद के अतिरिक्त, कोई और वाद-विवाद संसद में ऐसे किसी न्यायाधीश के अपने कर्तव्यपालन में किये गए आचरण के विषय में नहीं होगा। प्रक्रिया में किसी कथित (Alleged) अनियमितता के आधार पर संसद की किसी कार्यवाही की मान्यता पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकेगी।

राष्ट्रपति की विधायिनी शक्तियाँ

देश में लागू होनेवाली सभी विधियाँ संसद द्वारा बनाई जायँगी। लेकिन विशेष परिस्थिति में आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति भी थोड़े दिनों के लिए विधि बना सकेगा। इसको अध्यादेश (Ordinance) कहा जायगा। संविधान के अनुसार, उस समय को छोड़कर जबकि संसद के दोनों सदनों का अधिवेशन चल रहा हो, यदि किसी समय राष्ट्रपति यह समझे कि ऐसी परिस्थितियाँ वर्तमान हैं जिनके चलते उसे तुरत कार्य करना जरूरी है, तो वह ऐसे अध्यादेशों को लागू कर सकेगा जो उसे परिस्थितियों को देखते हुए आवश्यक प्रतीत हो। इस तरह से लागू किए गए अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो संसद t) का होता है। किन्तु ऐसा प्रत्येक अध्यादेश संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जायगा तथा संसद की पुनः बैठक होने से छः सप्ताह की समाप्ति पर इसका लागू होना खतम हो जायगा। अगर ६ सप्ताह के पहले ही संसद के दोनों सदन इस अध्यादेश के विरुद्ध प्रस्ताव पास

कर दें, तब भी वही परिणाम होगा। इसके अलावे राष्ट्रपति द्वारा यह किसी समय लौटा लिया जा सकेगा। यदि किसी ऐसे अध्यादेश में इस तरह का उपबन्ध किया गया हो, जिसे अधिनियमित करना (Enact) संसद की शक्ति के बाहर हो, तो वह शून्य (Void) होगा।

भारतीय संसद का स्वरूप

भारतीय संविधान में संसद के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है, वह ऊपर दी जा चुकी है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि संसद जनता का प्रतिनिधित्व करेगी। इसके अधिकारों पर भी कोई रुकावट नहीं रहेगी। वैसे तो संविधान के उपबन्धों को ऊपर से देखने पर ऐसा लगेगा कि संसद द्वारा पास किया हुआ बिल तबतक अधिनियम नहीं बन सकेगा, जब तक कि उसपर राष्ट्रपति अपनी अनुमति नहीं दे दे। लेकिन यह सिर्फ कहने के लिए है, व्यवहार में इसका कोई महत्त्व नहीं है। राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार ही सभी काम करेंगा। मंत्रि-परिषद् की तरफ से राष्ट्रपति को संसद द्वारा पास किए हुए किसी बिल पर अनुमति नहीं देने के परामर्श दिये जाने की सम्भावना कम मालूम पड़ती है। मंत्री तभी तक अपने पदों पर रह सकते हैं जबतक कि उनमें लोकसभा के बहुमत का विश्वास हो। अगर उन्हें लोकसभा द्वारा पास किए हुए किसी बिल के विरोध में परामर्श देना पड़े, तो इसका स्पष्ट अर्थ यही होगा कि उनमें लोकसभा के बहुमत का विश्वास नहीं है। ऐसी दशा में वे मंत्रिपद पर रह ही नहीं सकते।

राष्ट्रपति को अध्यादेश निकालने का जो अधिकार दिया गया है, वह उचित ही है और उससे संसद के अधिकारों पर किसी तरह की रुकावट नहीं पड़ती है। ये अध्यादेश तभी निकाले जा सकते हैं, जब संसद का अधिवेशन नहीं चल रहा हो। ऐसी स्थिति में कोई विशेष परिस्थिति पैदा हो जा सकती है, जिसका सामना करने के लिये नए कानूनों की जरूरत हो। इस परिस्थिति का सामना राष्ट्रपति के अध्यादेश के अधिकार के प्रयोग से ही किया जा सकता है। संसद का अधिवेशन बुलाने में काफ़ी समय लगेगा और तबतक परिस्थिति काबू से बाहर चली जा सकती है। इसलिए राष्ट्रपति को अध्यादेश निकालने का

अधिकार देकर संविधान के निर्माताओं ने ठीक ही किया है। जब संसद का अधिवेशन होगा तब ये अध्यादेश उसके सामने रखे जायेंगे और अगर यह उन्हें नामंजूर कर दे तो वे तुरत खतम हो जायेंगे। इसलिए संसद के अधिकारों पर भी किसी तरह की रुकावट नहीं आयेगी।

राष्ट्रपति को संसद के पास संदेश भेजने का जो अधिकार दिया गया है, यह निरर्थक जान पड़ता है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति को ऐसा अधिकार है। वहाँ इसकी जरूरत भी है। वहाँ पर ससदमूलक व्यवस्था नहीं है और कार्यपालिका और विधानमंडल दोनों एक दूसरे से अलग-अलग रखे गये हैं। अगर राष्ट्रपति किसी विशेष तरह की विधि की आवश्यकता महसूस करे, तो उसके सामने सिवाय विधानमंडल में संदेश भेजने के कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है। यहाँ पर ऐसी अवस्था नहीं है। यहाँ की व्यवस्था संसदमूलक है। यहाँ पर कार्यपालिका-सम्बन्धी सभी अधिकार मंत्रि-परिषद् के हाथ में रहेंगे। सभी मंत्री संसद के सदस्य होंगे और लोकसभा के बहुमत का उनमें विश्वास होगा। इसलिए अगर वे किसी विधि की आवश्यकता का अनुभव करेंगे, तो वे तुरत उस सम्बन्ध में संसद के सामने इसके लिए बिल या विधेयक पेश कर सकेंगे। इसलिए यहाँ राष्ट्रपति के सन्देश की न कभी आवश्यकता पड़ने की सम्भावना है, न इसके कभी प्रयोग किए जाने की।

संसद-सम्बन्धी व्यवस्था में एक बहुत बड़ा दोष यह है कि इसमें दो सदन रहेंगे। वैसे तो आज दुनिया के करीब-करीब सभी प्रसिद्ध देशों की संसद में दो सदन ही हैं और राजनीतिशास्त्र में इस विषय पर बहुत विवाद के रहते हुए भी यह एक तरह से सभी जगह मान लिया जाता है कि दो सदनों का रहना ही उपयुक्त है। दूसरे सदन (Second Chamber) की कई उपयोगिताएँ बताई जाती हैं। पहला सदन जनता द्वारा सीधे तौर पर चुना जाता है। इसके ऊपर दूसरे सदन के रहने पर इसका संयत रास्ते पर चलना निश्चित हो जाता है; यह अपने जोश में आकर जल्दीबाजी में कोई काम नहीं कर सकता, क्योंकि इसके बाद इसके द्वारा पास किए हुए बिल पर दूसरे सदन में भी विचार होता है और वहाँ पास होने पर ही यह अधिनियम बन सकता है। जहाँ संघीय संविधान है, वहाँ पर इसकी एक और उपयोगिता पर जोर दिया जाता है।

ऐसे देशों में पहला सदन जनता का प्रतिनिधि होता है, तो दूसरा सदन संघ में शामिल हुए राज्यों का। इससे संघ के सभी राज्यों में समानता की भावना रहती है और प्रत्येक राज्य के स्वार्थों का पूरा प्रतिनिधित्व हो जाता है।

लेकिन इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर आज दूसरे सदन की कोई विशेष उपयोगिता नहीं मालूम पड़ती है। जहाँ तक पहले सदन पर एक रुकावट की आवश्यकता की बात है, आज यह रुकावट और दूसरे तरीकों से कहीं अधिक अच्छी तरह प्राप्त हो जाती है। किसी भी नए विचार पर सबकी स्वीकृति लेने में ऐसे ही काफी समय लग जाता है और यह स्वयं ही एक बहुत बड़ा प्रतिबन्ध है। फिर कोई भी संसद जनमत को ठुकराना उचित नहीं समझेगी और समाचारपत्रों, सभाओं इत्यादि के द्वारा प्रत्येक नए प्रस्ताव पर जनमत किधर है, यह मालूम ही हो जायेगा। भारत के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ किसी बिल के पास होने में देर हो, इसकी उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी इसकी कि देश के नव निर्माण के लिए जल्दी-जल्दी नए-नए कानून बनाए जायँ। इसलिए यहाँ की वर्तमान परिस्थिति में तो दूसरे सदन की और भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। रही बात संघ के राज्यों के स्वार्थों की रक्षा करने की। इस सम्बन्ध में भी यह विचारणीय है कि दूसरे सदन के सदस्य भी विभिन्न राजनीतिक दलों से उसी तरह सम्बन्धित रहेंगे, जिस तरह पहले सदन के सदस्य। ऐसी दशा में वे अपने-अपने राज्यों की नहीं, बल्कि अपने दलों की नीतियों के अनुसार चलेंगे, जैसा कि आज करीब-करीब सभी देशों में देखा जाता है। इसके अलावे भारत के राज्यों की तरफ से इस तरह की कोई माँग भी नहीं रखी गई थी। इसकी जरूरत वहाँ पड़ती है जहाँ पर स्वतन्त्र राज्यों का संघ बनाया जाय, जैसा कि संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के निर्माण में हुआ था। यहाँ पर तो ब्रिटिश-शासनकाल में एक लम्बे अर्से से एक केन्द्रीय शासन कायम था। देशी रियासतें ब्रिटिश भारत से अवश्य अलग थीं, लेकिन यह सिर्फ नाम के लिए था, असल में वे भी सभी महत्त्वपूर्ण बातों में केन्द्रीय सरकार के ही अधीन थीं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में दूसरे सदन की कोई आवश्यकता नहीं है।

यही नहीं, यहाँ पर दूसरे सदन का रहना हानिकारक भी है। राष्ट्रपति द्वारा

नामजद किए जानेवाले बारह सदस्यों के अलावे राज्यपरिषद् के और सभी सदस्य राज्यों की विधानसभाओं द्वारा चुने जायँगे। इस तरह इसका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष तौर पर नहीं होगा। इससे बहुत हानि होगी। प्रोफेसर लास्की ने बहुत ठीक ही लिखा है कि "भ्रष्टाचार बढ़ानेवाले सभी तरीकों में अप्रत्यक्ष निर्वाचन का तरीका सबसे बुरा है।"[१] इसके अलावे दूसरे सदन के रहने से कभी ऐसी परिस्थिति के पैदा हो जाने की भी सम्भावना है जब शासन का चलना मुश्किल हो जाय और लोक-सभा के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो जाय। अगर कभी एक पार्टी का लोकसभा में बहुमत हो और राज्यपरिषद् में इसकी विरोधी पार्टी का तब तो लोकसभा के द्वारा पास किए हुए बिल का बराबर राज्य-परिषद् द्वारा ठुकराया जाना स्वाभाविक हो जायगा। ऐसी अवस्था में मंत्रि-परिषद् अधिक-से-अधिक राष्ट्रपति को संयुक्त बैठक बुलाने का परामर्श दे सकता है, लेकिन इससे भी लोकसभा के बहुमत के लिए रास्ता साफ हो जायगा यह कोई जरूरी नहीं है। अगर विरोधी दल के सदस्य लोकसभा में मंत्रिपरिषद्-वाले दल के सदस्यों से बहुत थोड़ी ही संख्या में कम हों और राज्यपरिषद् में उनकी संख्या बहुत अधिक हो, तो संयुक्त बैठक में बराबर विरोधी दल की ही जीत हो जायगी। ऐसी अवस्था में मंत्रिपरिषद्वाला दल लोकसभा में बहुमत में रहते हुए भी कोई नया सुधार नहीं कर सकेगा और बार-बार राज्यपरिषद् और संयुक्त बैठक में हार खाते रहने पर मंत्रिपरिषद् की स्थिति भी अजीब हो जायगी। इसलिए राज्यपरिषद् का नहीं रहना ही उचित है।

लेकिन इतना कह लेने के बाद भी यह माना जा सकता है कि लोकसभा द्वारा पास किए जानेवाले बिलों का एक बार दूसरे लोगों द्वारा जाँच हो जाना अच्छा होगा। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर लास्की का सुझाव बहुत उपयुक्त जान पड़ता है।[२] उनकी राय में इस काम के लिए दूसरे सदन की आवश्यकता नहीं है और न तो वह विशेष उपयोगी ही होगा। दूसरे सदन में पहले सदन की अपेक्षा विशेष योग्य सदस्य रहेंगे, इसकी कोई गारण्टी नहीं है। अधिकतर बातों में यहाँ भी वही आलोचना होगी, जो पहले सदन में हो चुकी है। इसलिए

१. Laski—A-Grammar of Politics. P. 330.
२. वहीं, पृ. ३३२

प्रोफेसर लास्की की राय है कि संसद में पेश किए जानेवाले किसी बिल से जिन स्वार्थों का सम्बन्ध हो, उनके प्रतिनिधियों की एक परामर्शदात्री समिति से राय ले लेनी चाहिए। इस परामर्शदात्री समिति के सदस्य उस बिल पर विशेषज्ञ की तरह राय दे सकेंगे और उनकी राय के मुताबिक प्रत्येक विभाग अपने बिलों में जहाँ तक सम्भव हो, परिवर्तन ला सकता है। इस प्रद्धति से एक ही साथ दुबारा जाँच (Revision) का काम भी हो जायगा और प्रत्येक विषय के विशेषज्ञों की राय भी मिल जायगी। लास्की साहब की यह राय उचित जान पड़ती है और भारत में भी इसी के अनुसार अगर राज्यपरिषद् की जगह पर इस तरह की परामर्शदात्री समितियों की व्यवस्था रहे, तो वह अधिक अच्छा होगा।

अध्याय १५

भारत का नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक

(Comptroller and Auditor General of India)

भारत का एक नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक होगा। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। वह अपने पद से केवल उसी रीति और उन्हीं कारणों से हटाया जायेगा, जिस रीति और जिन कारणों से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक नियुक्त किया जाता है, अपने पदग्रहण से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस काम के लिए नियुक्त व्यक्ति के सामने शपथ या प्रतिज्ञान (oath or affirmation) करेगा कि वह भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखेगा, सम्यक् प्रकार से (duly) और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों को भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करेगा और संविधान और विधियों की मर्यादा को बनाए रखेगा।

नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक के वेतन तथा सेवा की शर्तें (Condition of Service) ऐसी होंगी जैसी कि संसद विधि द्वारा तय करे। जबतक संसद इस प्रकार तय नहीं करे, तबतक ये ऐसी होंगी जैसी कि संविधान की द्वितीय अनुसूची में दी गई हैं। इस अनुसूची के अनुसार भारत के नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक को चार हजार रुपए प्रति माह की दर से वेतन दिया जायगा। जो व्यक्ति इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के महालेखा-परीक्षक के पद पर था और ऐसे प्रारम्भ के बाद भारत का नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक बन गया है, उसे इस वेतन के अतिरिक्त विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस वेतन और ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले भारत के महालेखा-परीक्षक के रूप में उसे मिलनेवाले वेतन के अन्तर के बराबर है। छुट्टी, पेंशन तथा अन्य सेवा-शर्तों के बारे में उसके अधिकार वही होंगे जो इस संविधान के

प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के महालेखा-परीक्षक को प्राप्त थे। परन्तु न तो उसके वेतन में और न उसकी छुट्टी, पेंशन, अवकाश ग्रहण करने की उम्र-(Age of retirement) सम्बन्धी अधिकारों में उसकी नियुक्ति के बाद कोई ऐसा परिवर्तन किया जायगा जो उसके लिए अलाभकारी हो। अपने पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन और किसी पद पर नहीं नियुक्त किया जा सकेगा।

इस संविधान के तथा संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारतीय लेखापरीक्षा और लेखाविभाग (Indian Audit and Accounts Department) में काम करनेवाले व्यक्तियों की सेवा-शर्तें तथा नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक की शासन-सम्बन्धी शक्तियाँ ऐसी होंगी जैसी कि उससे सलाह लेने के बाद राष्ट्रपति नियमों द्वारा तय करे। नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक के कार्यालय के खर्च, जिनके भीतर उस कार्यालय में काम करनेवाले व्यक्तियों को दिए जानेवाले वेतन, भत्ते और पेंशन भी शामिल हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे।

नियंत्रक—महालेखा-परीक्षक संघ के और राज्यों के तथा किसी दूसरे अधिकारी या संस्था के लेखाओं (accounts) के सम्बन्ध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जैसे कि संसद-निर्मित विधि द्वारा तय किए जायँ। जबतक संसद द्वारा यह तय नहीं किया जाता, तबतक वह संघ के और राज्यों के लेखाओं के सम्बन्ध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जैसा कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमशः भारत डोमिनियन के और प्रान्तों के लेखाओं के सम्बन्ध में भारत का महालेखा-परीक्षक करता था।

संघ के और राज्यों के लेखाओं को ऐसे रूप में रखा जायेगा जैसा कि भारत का नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से तय करे। संघ के लेखाओं के सम्बन्ध में नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक की रिपोर्टें राष्ट्रपति के सामने उपस्थित की जायें और वह उनको संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखवावेगा। इसी तरह उसके राज्य की लेखा-सम्बन्धी रिपोर्ट को राज्यपाल या

राजप्रमुख के सामने उपस्थित किया जायेगा। और वह उनको उस राज्य के विधानमंडल के सामने रखवावेगा।

भारत के नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक के सम्बन्ध में संविधान में यही व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था सन्तोषपूर्ण है। संघ के और राज्यों के हिसाब-किताब की जाँच इससे ठीक तरह से हो सकेगी। नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक की नियुक्ति और पदच्युत किए जाने के सम्बन्ध की व्यवस्था विशेष महत्त्वपूर्ण है। इससे वह अपने पद की जिम्मेदारी बिना किसी भय के निभा सकेगा।

अध्याय १६

प्रथम अनुसूची के भाग (क) में के राज्य

किसी भी संघ के राज्यों का संविधान भी बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि जनता को रोजमर्रे के जीवन में राज्य की सरकार से ही अधिक सम्बन्ध रहता है। भारतीय संघ के भीतर के राज्य चार भाग में बाँटे गए हैं। इन्हें संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग (क), (ख), (ग), और (घ) में रखा गया है। और इनकी शासनव्यवस्था अलग-अलग दी गई हैं। भाग (क) में आसाम, बिहार, बम्बई, मध्यप्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब, उत्तरप्रदेश और पश्चिमी बंगाल—ये नौ राज्य हैं। ये पहले ब्रिटिश भारत के प्रान्त थे। यहाँ पर इन्हीं राज्यों की कार्यपालिका और विधानमंडल पर विचार किया जायगा। इस अध्याय में जहाँ-जहाँ राज्य शब्द का प्रयोग होगा, वहाँ इसका सम्बन्ध प्रथम अनुसूची के भाग (क) के राज्यों से ही होगा। इनकी शासनव्यवस्था संघ से बहुत-कुछ मिलती-जुलती ही है।

(१) कार्यपालिका

राज्यपाल

प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल रहेगा। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी। वह अपने पदग्रहण की तारीख से पाँच बरस की अवधि तक अपने पद पर रहेगा। लेकिन वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त ही अपने पद पर रहेगा। इसका अर्थ यह है कि पाँच बरस की अवधि खतम होने के पहले भी वह राष्ट्रपति द्वारा अपने पद से हटाया जा सकेगा। इसके अलावे वह स्वयं इस्तीफा देकर भी इस अवधि के पहले अपने पद से हट जा सकता है। कोई व्यक्ति तबतक राज्यपाल नियुक्त किए जाने के योग्य नहीं समझा जायगा जब

तक कि वह भारत का नागरिक न हो और उसकी उम्र पैंतीस बरस की न हो चुकी हो।

राज्यपाल न तो संसद के और न किसी राज्य के विधानमंडल के, किसी सदन का सदस्य होगा। यदि इस तरह का कोई सदस्य कभी राज्यपाल नियुक्त हो जाय, तो यह समझा जायगा कि राज्यपाल के पदग्रहण को तारीख से उसने अपना स्थान रिक्त कर दिया है और उसकी सदस्यता खतम हो गई है। वह दूसरे किसी लाभ के पद पर नहीं रहेगा। उसे बिना किराया दिये अपने पदावासों (Official Residences) के उपयोग का हक होगा। उसकी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का निर्णय संसद विधि द्वारा करेगी। जबतक संसद इस प्रकार निर्णय नहीं करे तबतक प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को ५,५०० रुपया मासिक वेतन मिलेगा; उसको वही भत्ता मिलेगा जो भारत डोमिनियन के तत्स्थानी (Corresponding) प्रान्त के गवर्नर को मिलता था; और उसके विशेषाधिकार भी पहले के प्रान्तीय गवर्नर की तरह ही होंगे। राज्यपाल की उपलब्धियाँ और भत्ते उसकी पद की अवधि में घटाये नहीं जायेंगे।

प्रत्येक राज्यपाल तथा प्रत्येक व्यक्ति, जो राज्यपाल का काम सँभालता हो, अपना पद ग्रहण करने के पहले उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के सामने श्रद्धापूर्वक राज्यपाल के कर्तव्यों का पालन करने, अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का संरक्षण करने और जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहने की शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा। किसी आकस्मिक परिस्थिति में, जिसके लिए संविधान में व्यवस्था नहीं की गई हो, राज्य के राज्यपाल का काम सँभाले जाने के लिए, राष्ट्रपति जैसी उचित समझे, वैसी व्यवस्था बना सकेगा।

राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी। वह इस शक्ति का प्रयोग या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा करेगा। जिस विषय पर किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, उस विषय-सम्बन्धी किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए सजा पाए हुए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा करने, उसे कम करने इत्यादि की, उस राज्य के राज्यपाल को

शक्ति होगी। राज्य के भीतर बड़ी-बड़ी नियुक्तियाँ भी राज्यपाल द्वारा ही की जायँगी। इसके अतिरिक्त राज्य के विधानमण्डल के सम्बन्ध में भी उसकी शक्तियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनपर यथास्थान विचार किया जायगा।

प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक होगा जिनके बारे में उस राज्य के विधानमंडल को विधि बनाने की शक्ति है। परन्तु जिस विषय के बारे में राज्य के विधानमण्डल और संसद दोनों को विधि बनाने की शक्ति है, उसमें संविधान या संसद निर्मित विधि द्वारा संघ या उसके प्राधिकारियों (Authorities) को भी शक्ति दी जा सकेगी। ऐसी अवस्था में राज्य की कार्यपालिका शक्ति इस तरह दी हुई शक्ति के अधीन रहेगी और इससे सीमित होगी।

मंत्रि-परिषद्

जिन बातों में संविधान में यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कामों को स्वविवेक (In his discretion) से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को उसके कामों में सहायता और सलाह देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् रहेगी। मन्त्रि-परिषद् का प्रधान मुख्य मन्त्री होगा। अगर कभी इस तरह का कोई प्रश्न उठे कि कोई विषय ऐसा है या नहीं जिसके सम्बन्ध में संविधान के अनुसार यह अपेक्षित है कि वह स्वविवेक से कार्य करे, तो इसपर राज्यपाल का स्वविवेक से किया हुआ निर्णय अन्तिम होगा। क्या मंत्रियों ने राज्यपाल को कोई सलाह दी और अगर दी तो क्या दी, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जाँच न की जायेगी। मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। अन्य मंत्रियों की नियुक्ति वह मुख्यमंत्री की सलाह से करेगा। मंत्री अपने पद पर राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त रहेंगे। उड़ीसा, बिहार और मध्यप्रदेश में आदिम जातियों के कल्याण के लिए एक मंत्री अवश्य रहेगा। वह साथ-साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण की, अथवा किसी अन्य विभाग के काम की देखभाल भी कर सकेगा।

मंत्रि-परिषद् राज्य की विधानसभा (Legislative Assembly) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी रहेगी। किसी मंत्री के पदग्रहण करने के पहले

राज्यपाल उससे पद और गोपनीयता की शपथें करायेगा। अगर कोई मंत्री लगातार छः महीने तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य नहीं रहे, तो वह अपने पद पर नहीं रह सकेगा। मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते ऐसे होंगे जैसे समय-समय पर उस राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा निर्धारित करे। जबतक यह इस प्रकार निर्धारित नहीं करे, तबतक वे ऐसे होंगे जैसे कि तत्स्थानी प्रान्त के मंत्रियों को नए संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले दिए जाते थे।

सरकारी कार्य का संचालन

किसी राज्य की कार्यपालिका-सम्बन्धी सभी कार्यवाही राज्यपाल के नाम से की हुई कही जायेगी। राज्य की सरकार का कार्य अधिक सुविधापूर्वक हो इसके लिए तथा मन्त्रियों के बीच इस कार्य के बँटवारे के लिए राज्यपाल नियम बनाएगा। प्रत्येक राज्य के मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य होगा कि वह राज्य के शासन और विधान-सम्बन्धी मंत्रि-परिषद् के सभी निर्णयों को राज्यपाल के पास पहुँचाए, इस सम्बन्ध में राज्यपाल जो जानकारी प्राप्त करना चाहे, वह उसे दे और ऐसे किसी विषय को, जिसपर किसी मंत्री ने कोई निर्णय किया हो; परन्तु मंत्रि-परिषद् ने विचार नहीं किया हो, राज्यपाल के चाहने पर मंत्रि-परिषद् के सामने विचार के लिए रखे।

राज्य का महाधिवक्ता

प्रत्येक राज्य का एक महाधिवक्ता रहेगा। उसकी बहाली उस राज्य का राज्यपाल करेगा। वही व्यक्ति महाधिवक्ता नियुक्त किया जायेगा जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखता हो। महाधिवक्ता का कर्तव्य होगा कि वह उस राज्य की सरकार को ऐसे विधि-सम्बन्धी विषयों पर परामर्श दे तथा ऐसे विधि-रूप (Of a legal character) दूसरे कर्तव्यों का पालन करे जो राज्यपाल उसे समय-समय पर भेजे या सौंपे। महाधिवक्ता राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहेगा तथा वही पारिश्रमिक पायेगा जो राज्यपाल तय करे।

(२) विधान-मंडल

रचना

प्रत्येक राज्य के लिए एक विधान-मण्डल रहेगा। यह राज्यपाल तथा पंजाब, पश्चिमी बंगाल, बिहार, बम्बई और उत्तरप्रदेश के राज्यों में दो सदनों से और अन्य राज्यों में एक सदन से मिलकर बनेगा। जिस राज्य के विधान-मंडल में दो सदन हों, वहाँ एक को विधानसभा (Legislative Assembly) और दूसरे को विधान-परिषद् (Legislative Council) कहा जायगा। जहाँ केवल एक सदन हो, वहाँ उसका नाम विधानसभा होगा। संसद विधि द्वारा किसी राज्य के राज्य-परिषद् को खतम या जहाँ पर राज्य-परिषद् नहीं है, वहाँ इसे कायम, कर सकती है। लेकिन संसद ऐसा तभी कर सकेगी जब उस राज्य की विधानसभा में इस उद्देश्य का प्रस्ताव सभा की समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत से और उपस्थित तथा मत देनेवाले सदस्यों की संख्याके कम-से-कम दो तिहाई बहुमत से पास कर दिया गया हो।

प्रत्येक राज्य की विधानसभा प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुए सदस्यों से मिलकर बनेगी। किसी राज्य की विधानसभा में प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व उस निर्वाचनक्षेत्र की जन-संख्या के आधार पर होगा। आसाम के स्वायत्त जिलों को और शिलाँग के नगरक्षेत्र तथा छावनी (Cantonment) से मिलकर बने हुए निर्वाचनक्षेत्र को, छोड़कर सभी जगह जन-संख्या के प्रत्येक पचहत्तर हजार के लिए एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं होंगे। परन्तु किसी राज्य की विधानसभा में सदस्यों की समस्त संख्या किसी भी अवस्था में पाँच सौ से अधिक अथवा साठ से कम नहीं होगी। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जानेवाले सदस्यों की संख्या का वहाँ की जनसंख्या से अनुपात (Ratio) सारे राज्य में यथासाध्य एक ही होगा।

जिस राज्य में विधान-परिषद् हो, वहाँ इस परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या उस राज्य की विधानसभा के सदस्यों की समस्त संख्या की एक चौथाई से अधिक नहीं होगी। परन्तु किसी भी अवस्था में यह संख्या चालीस से कम नहीं रहेगी। इस संख्या का एक तिहाई भाग ऐसे निर्वाचक-मण्डलों द्वारा चुना

जायगा जिसमें नगरपालिकाओं (Municipalities) जिला-मंडलियों (District Boards) तथा संसद-निर्मित विधि द्वारा तय किए हुए दूसरे स्थानीय प्राधिकारियों (Local authorities) के सदस्य रहेंगे। इसका (विधानपरिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या का) द्वादशांश ऐसे निर्वाचक-मण्डलों द्वारा चुना जायेगा, जो उस राज्य में रहनेवाले उन व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो भारत के किसी विश्वविद्यालय के कम-से-कम तीन साल से स्नातक हैं अथवा जो तीन साल से ऐसी योग्यता रखते हों, जिसे संसद स्नातक की योग्यता के बराबर मानती हो। इसका दूसरा द्वादशांश ऐसे व्यक्तियों से बने निर्वाचक-मण्डलों द्वारा चुना जायगा जो उस राज्य के भीतर माध्यमिक स्कूलों (Secondary Schools) से अनिम्नस्तर की शिक्षा-संस्थाओं में पढ़ाने के काम में कम-से-कम तीन साल से लगे हुए हों। ऊपर दी गई तीनों व्यवस्था के अधीन निर्वाचित होनेवाले सदस्य ऐसे प्रादेशिक निर्वाचनक्षेत्रों में चुने जायेंगे जैसे कि संसद द्वारा निर्धारित किए जावें। परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या का एक तिहाई भाग उस राज्य की विधानसभा द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से निर्वाचित होगा जो सभा के सदस्य नहीं हैं। इन सदस्यों का निर्वाचन अनुपाती-प्रतिनिधित्व-पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा। शेष सदस्य राज्यपाल द्वारा नामजद किए जायेंगे। ये नामजद किए जानेवाले सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन और समाज-सेवा की तरह के विषयों के बारे में विशेष ज्ञान का व्यावहारिक अनुभव हो।

सदस्यता के लिए योग्यता

कोई भी व्यक्ति, जो भारत का नागरिक हो, विधानमण्डल के किसी सदन की सदस्यता के लिए उम्मीदवार हो सकता है, लेकिन उसका विधान-सभा की सदस्यता के लिए कम-से-कम पचीस साल का और विधानपरिषद् के लिए कम-से-कम तीस साल का होना जरूरी है। कोई व्यक्ति किसी राज्य की विधानसभा या विधानपरिषद् का सदस्य चुने जाने के लिए तथा सदस्य होने के लिए योग्य नहीं समझा जायगा अगर : वह भारत-सरकार के अथवा

किसी राज्य के अधीन किसी लाभ के पद पर हो, विकृतचित्त हो, अनुन्मुक्त दिवालिया हो, भारत का नागरिक नहीं हो या संसद-निर्मित किसी विधि के द्वारा इस प्रकार अयोग्य कर दिया गया हो। इस तरह की योग्यता को जाँच करते हुए कोई व्यक्ति सिर्फ संघ का या राज्य का मंत्री होने के कारण ही भारत-सरकार के या उस राज्य की सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर रहनेवाला नहीं समझा जाएगा। इसके अतिरिक्त राज्य के विधानमंडल को भी यह अधिकार है कि वह विधि द्वारा दूसरे पदों के धारण करनेवाले लोगों को भी इस तरह अयोग्य नहीं समझा जाना घोषित कर दे। अगर कभी यह प्रश्न उपस्थित हो कि विधानमंडल का कोई सदस्य ऊपर दी हुई अयोग्यताओं का भागी हो गया है या नहीं, तो इसपर राज्यपाल का निर्णय अन्तिम माना जायेगा।

कोई व्यक्ति एक ही साथ राज्य के विधानमंडल के दोनों सदनों का सदस्य नहीं होगा। अगर कोई व्यक्ति एक ही साथ दोनों सदनों का सदस्य निर्वाचित हो जाय तो उसे किसी एक सदन का स्थान रिक्त कर देना पड़ेगा। उस राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा इस सम्बन्ध में व्यवस्था करेगा। कोई व्यक्ति एक ही साथ दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य नहीं हो सकेगा। यदि कोई इस तरह अधिक राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य चुन लिया जाय, तो उसे एक राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विधानमंडलों के अपने स्थान को त्याग देना पड़ेगा। यदि वह ऐसा नहीं करे, तो ऐसे समय की समाप्ति के बाद जो राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए नियमों में उल्लिखित हो, सभी राज्यों के विधानमंडलों में उसका स्थान रिक्त हो जाएगा। यदि किसी राज्य के विधान-मंडल के किसी सदन का सदस्य साठ दिन तक लगातार सदन की अनुमति के बिना उसके सभी अधिवेशनों से गैरहाजिर रहे, तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकेगा।

पदाधिकारी

राज्य की प्रत्येक विधानसभा यथासम्भव शीघ्र अपने दो सदस्यों को क्रमशः अपना अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी। इसी तरह विधानपरिषद् भी अपने दो

सदस्यों को क्रमशः सभापति और उपसभापति चुनेगी। विधानसभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष और विधानपरिषद् के सभापति या उपसभापत्ति तभी तक अपने पद पर रहेगें जबतक कि वे अपने-अपने सदन के सदस्य बने रहें। अपने-अपने सदन के समस्त सदस्यों के बहुमत से पास किए गए प्रस्ताव द्वारा अपने पद से हटाए भी जा सकते हैं। लेकिन इस तरह का कोई प्रस्ताव तबतक नहीं पेश किया जायेगा जबतक कम-से-कम चौदह दिन पहले इसकी सूचना नहीं दे दी गई हो। जब कभी विधानसभा का विघटन किया जाय, तो विघटन के बाद होनेवाले विधानसभा के प्रथम अधिवेशन के ठीक पहले तक अध्यक्ष अपने पद से नहीं हटेगा। जब-जब विधानसभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा विधानपरिषद् के सभापति या उपसभापति का पद रिक्त हो तब-तब यथास्थित विधानसभा या विधानपरिषद् किसी अन्य सदस्य को अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा सभापति या उपसभापति चुनेगी।

विधानसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को तथा विधानपरिषद् के सभापति और उपसभाति को ऐसे वेतन और भत्ते मिलेंगे जैसे क्रमशः राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा नियत करे। जबतक विधानमण्डल इस तरह तय नहीं करे तबतक उनको ऐसे वेतन और भत्ते मिलेंगे जैसे कि क्रमशः तत्स्थानी प्रान्त की विधानसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को तथा विधानपरिषद् के सभापति और उपसभापति को इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले मिलते थे। जहाँ ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले तत्स्थानी प्रान्त में कोई विधान-परिषद् नहीं थी, वहाँ उस राज्य की विधान-परिषद् के सभापति और उपसभापति को ऐसे वेतन और भत्ते दिए जायेंगे जैसे कि उस राज्य का राज्यपाल निर्धारित करे।

राज्य के विधानमण्डल के प्रत्येक सदन का अपना पृथक् साचविक वृन्द रहेगा। लेकिन जिस राज्य में विधानपरिषद् भी हो वहाँ दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पद कायम किए जाने पर किसी तरह की बाधा नहीं रहेगी। राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा इन कर्मचारियों की भर्ती-सम्बन्धी बातों को तथा इनकी सेवा की शर्तों को तय कर सकेगा। जबतक विधानमण्डल ऐसा नहीं करे तबतक राज्यपाल यथास्थित लोक-सभा के अध्यक्ष से या राज्य-परिषद् के सभापति से परामर्श कर इनके सम्बन्ध में नियम बना सकेगा।

अवधि, अधिवेशन और कार्य-संचालन

प्रत्येक राज्य की विधानसभा अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियुक्त तारीख से पाँच बरस तक चालू रहेगी। हाँ, वह इससे पहले भी विघटित की जा सकती है। इसी तरह जब आयात की उद्घोषणा लागू हो, तब संसद विधि द्वारा इस अवधि को जितना चाहे, बढ़ा सकती है। लेकिन इस तरह विधान-सभा की अवधि एक बार एक साल से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। किसी भी अवस्था में आपात की उद्घोषणा खतम हो जाने पर यह अवधि छः महीने से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। राज्य-परिषद् स्थायी संस्था रहेगी और इसका कभी विघटन नहीं होगा। लेकिन इसके सदस्यों में से एक तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष के खतम होने पर अपना स्थान रिक्त कर देंगे।

राज्य के विधानमण्डल के सदन या सदनों का हर साल कम-से-कम दो बार अधिवेशन बुलाया जायगा। उनके एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक और आगामी अधिवेशन की पहली बैठक की तारीख के बीच छः मास से कम का ही अन्तर रह सकेगा। इस उपबन्ध के अधीन रहते हुए राज्यपाल समय-समय पर आवश्यकतानुसार विधानमण्डल के दोनों सदनों का अथवा किसी एक सदन का ऐसे समय तथा स्थान पर जैसा वह उचित समझे, अधिवेशन बुला सकेगा। राज्यपाल किसी सदन या सदनों का सत्तावसान और विधानसभा का विघटन भी कर सकेगा।

राज्यपाल विधानमण्डल के किसी एक सदन में अथवा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाषण दे सकेगा और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों को उपस्थित रहने का आदेश दे सकेगा। वह विधानमण्डल के किसी भी सदन को, उस समय विधानमण्डल में विचाराधीन किसी बिल या अन्य किसी बात के सम्बन्ध में सन्देश भेज सकेगा। जिस सदन को इस प्रकार कोई सन्देश भेजा गया हो, वह सदन उस सन्देश द्वारा अपेक्षित विचारणीय विषय पर यथासुविधा शीघ्रता से विचार करेगा। राज्यपाल प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में विधानसभा में या जहाँ राज्यपरिषद् भी हो, वहाँ दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाषण देगा। इस भाषण में वह विविध विषयों के सम्बन्ध में सरकार की नीति पर प्रकाश

डालेगा और विधानमण्डल के सामने आनेवाले कामों की चर्चा करेगा। प्रत्येक सदन में ऐसा नियम बनाया जायगा जिसमें सबसे पहले राष्ट्रपति के अभिभाषण में कही गई बातों पर विचार हो।

राज्य के प्रत्येक मन्त्री और महाधिवक्ता को उस राज्य की विधानसभा में, और जहाँ विधानपरिषद् भी हो, वहाँ विधानमण्डल के दोनों सदनों में, तथा विधानमण्डल की किसी भी समिति में जिसके वे सदस्य हों, बोलने तथा दूसरी तरह से इनकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होगा। लेकिन इस अनुच्छेद के आधार पर उनको मत देने का अधिकार नहीं होगा। राज्य की विधानसभा और विधानपरिषद् के प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने के पहले राज्यपाल के अथवा राज्यपाल द्वारा इस काम के लिए नियुक्त व्यक्ति के सामने शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना पड़ेगा कि वह भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखेगा और अपने पद के कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक पालन करेगा।

इस संविधान में जिन बातों के सम्बन्ध में विशेष व्यवस्था की गई है, उनको छोड़कर अन्य सभी प्रश्नों का निर्णय राज्य के विधानमंडल के किसी सदन की किसी बैठक में उपस्थित तथा मत देनेवाले सदस्यों के बहुमत से किया जायगा। विधानसभा का अध्यक्ष या विधानपरिषद् का सभापति या उनमें से किसी के रूप में कार्य करनेवाला व्यक्ति पहले अपना मत नहीं देगा, लेकिन जब किसी बात पर पक्ष और विपक्ष में मत देनेवालों की संख्या समान हो जाय तब उसका निर्णायक मत होगा और वह इसका प्रयोग करेगा। सदस्यता में कोई रिक्तता रहने पर भी विधानमंडल के किसी सदन को कार्य करने की शक्ति होगी। यदि कभी बाद में यह पता चले कि कोई व्यक्ति जिसे ऐसा करने का अधिकार नहीं था, कार्यवाहियों में उपस्थित रहा, उसने मत दिया अथवा अन्य प्रकार से भाग लिया, तब भी विधानमंडल की कार्यवाही मान्य होगी। जबतक राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा कोई अन्य व्यवस्था नहीं करे, तबतक विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के अधिवेशन के लिए गणपूर्ति दस या उस सदन के सदस्यों की समस्त संख्या का दशांश—इनमें से जो अधिक हो—होगी। यदि किसी सदन के अधिवेशन में कभी गणपूर्ति नहीं रहे तो अध्यक्ष या सभापति या उस

रूप में कार्य करनेवाले व्यक्ति का यह कर्तव्य होगा कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या बैठक को तबतक के लिए रोक दे जबतक की गणपूर्ति न हो जाय।

शक्तियाँ और विशेषाधिकार

राज्य के विधानमंडल में भाषण की स्वतंत्रता रहेगी। विधानमंडल या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात अथवा दिए गए किसी मत के सम्बन्ध में विधानमंडल के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई सुनवाई नहीं होगी। अन्य बातों में विधानमंडल के प्रत्येक सदन को तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों को वे शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्राप्त होंगी जो विधानमंडल समय-समय पर विधि द्वारा स्थिर करे। जबतक विधानमंडल इस प्रकार स्थिर नहीं करे तबतक ये वही होंगी जो ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स को तथा उसके सदस्यों और समितियों को प्राप्त हैं। विधानमंडल के प्रत्येक सदन के सदस्यों को ऐसे वेतन और भत्ते मिलेंगे, जिन्हें विधानमंडल समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करे। जबतक विधानमंडल द्वारा इस सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं की जाती तबतक ये वेतन और भत्ते वही होंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले उस राज्य की प्रान्तीय विधानसभा के सदस्य पाते थे।

विधानमंडल के कई तरह के काम होंगे। राज्य की मंत्रिपरिषद् विधानसभा के प्रति उत्तरदायी रहेगी। इसका अर्थ यह है कि विधानसभा मंत्रियों के काम की देखरेख करती रहेगी और मंत्री तभी तक अपने पद पर रह सकेंगे, जबतक विधानसभा के बहुमत का उनमें विश्वास रहे। इसके अलावे राज्य के अधीन सभी विषयों पर कानून बनाना भी विधानमंडल का काम होगा। बजट या सरकार का वार्षिक वित्त-विवरण भी विधानमंडल ही पास करेगा। ये सब काम किस तरह किए जाएँगे, यह नीचे दिया जाता है।

विधान-प्रक्रिया

धन-विधेयकों तथा अन्य वित्तीय विधेयकों को छोड़कर कोई विधेयक विधान-परिषद्वाले राज्य के विधानमण्डल के किसी सदन में आरम्भ हो

सकेगा। कोई विधेयक इस तरह के विधानमण्डल के सदनों द्वारा पास किया हुआ तबतक नहीं समझा जाएगा, जबतक कि वह दोनों सदनों द्वारा स्वीकार न कर लिया गया हो। अगर इस विधेयक में किसी सदन में कोई संशोधन पेश किया जाय, तो वह भी तभी पास हुआ समझा जाएगा जब वह दोनों सदनों को स्वीकृत हो। लेकिन इस सम्बन्ध में विधानपरिषद् की शक्तियाँ बहुत सीमित कर दी गई हैं। यदि विधानसभा द्वारा किसी विधेयक के पास किए जाने और विधानपरिषद् को पहुँचाए जाने के बाद परिषद् द्वारा वह विधेयक अस्वीकार कर दिया जाय, अथवा परिषद् के विधेयक पाने की तारीख से बिना इसके पास हुए तीन महीने से अधिक बीत जाय, अथवा परिषद् द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पास हो, जिनसे सभा सहमत नहीं हो, तो विधान-सभा उस विधेयक को फिर पास कर सकेगी। अगर विधान-परिषद् ने उस विधेयक में कोई संशोधन पेश किया हो, तो सभा उसपर भी विचार करेगी और उसके साथ या उसके बिना वह विधेयक पास कर सकेगी। इसके बाद वह विधेयक फिर विधान-परिषद् के सामने रखा जाएगा। यदि विधानसभा द्वारा विधेयक के इस प्रकार दोबारा पास किए जाने तथा विधान-परिषद् के सामने रखे जाने के बाद परिषद् फिर इसे अस्वीकार कर दे, अथवा बिना पास किये हुए एक महीने से अधिक समय तक रखे रहे, अथवा ऐसे संशोधनों के साथ पास करे जो सभा को स्वीकृत नहीं हो, तो यह विधेयक राज्य के विधान-मंडलों द्वारा उस रूप में पास समझा जाएगा जिसमें कि वह विधान सभा द्वारा पास किया गया था। इसके साथ-साथ वे संशोधन भी पास हुए समझे जाएँगे जो विधान-परिषद् द्वारा रखे और सभा द्वारा स्वीकार कर लिये गए हों।

धन-विधेयकों के सम्बन्ध की प्रक्रिया इससे कुछ भिन्न है। धन-विधेयक विधान-परिषद् में नहीं पेश किया जाएगा। विधान-परिषद्वाले राज्य की विधान-सभा से पास हो जाने के बाद यह परिषद् में उसकी सिपारिशों के लिए भेजा जायेगा। विधान-परिषद् विधेयक पाने के चौदह दिन के भीतर इसे अपनी सिपारिशों सहित विधानसभा को लौटा देगी। इसके बाद विधानसभा परिषद् की सिपारिशों में से सबको या किसी को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी। यदि विधानपरिषद् की सिपारिशों में से किसी को सभा स्वीकार कर ले, तो धन-

विधेयक इन संशोधनों के साथ दोनों सदनों से पास हुआ समझा जाएगा। यदि विधानसभा परिषद् की सिफारिशों में से किसी को भी स्वीकार नहीं करे, तो धन-विधेयक इन संशोधनों में से किसी के बिना, उसी रूप में दोनों सदनों द्वारा पास हुआ समझा जाएगा, जिसमें कि वह विधानसभा द्वारा पास किया गया था। यदि विधान सभा द्वारा पास किया हुआ और विधान-परिषद् में उसकी सिफारिशों के लिए भेजा हुआ धन-विधेयक चौदह दिन की अवधि के भीतर सभा को लौटाया नहीं जाय, तो इस अवधि की समाप्ति पर यह दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पास समझा जाएगा जिसमें विधानसभा ने उसे पास किया था।

कोई विधेयक धन-विधेयक समझा जायगा जब उसमें निम्नलिखित विषयों में से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखनेवाले उपबन्ध हों :—

(क) किसी कर का लगाना, हटाना, कम करना, बदलना या विनियमन;

(ख) राज्य की सरकार द्वारा धन उधार लेने का अथवा कोई प्रत्याभूति देने का अथवा राज्य की सरकार द्वारा लिए गए या लिए जानेवाले किन्हीं वित्तीय आभारों से सम्बन्धित विधि के संशोधन करने का विनियमन;

(ग) राज्य की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की रक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना;

(घ) राज्य की संचित निधि से धन का विनियोग;

(ङ) किसी व्यय को राज्य की संचित निधि पर भारित घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि को बढ़ाना;

(च) राज्य की संचित निधि के या राज्य के लोक लेखे के मध्ये धन प्राप्त करना, अथवा ऐसे धन की रक्षा या निकासी करना; अथवा

(छ) ऊपर दिए हुए विषयों में से किसी का आनुषंगिक कोई विषय।

कोई विधेयक केवल इस कारण से धन-विधेयक नहीं समझा जाएगा कि वह जुर्मानों या दूसरे अर्थ-दंडों के लगाने का अथवा लाइसेन्सों या की हुई सेवाओं के लिए फीसों को लगाने या देने का अथवा किसी स्थानीय प्राधिकारी या संस्था द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए कर के लगाने, खतम करने, कम करने, बदलने या विनियमन का उपबन्ध करता है। यदि कभी यह प्रश्न उठे कि कोई

विधेयक धन-विधेयक है या नहीं, तो उस पर उस राज्य की विधानसभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा। विधानसभा द्वारा पास किए हुए प्रत्येक धन-विधेयक पर इसके अध्यक्ष के हस्ताक्षर-सहित यह प्रमाण अंकित रहेगा कि वह धन-विधेयक है।

सभी तरह के विधेयकों पर, उनके अधिनियम बनने के लिए, राज्यपाल की अनुमति आवश्यक है। जब राज्य की विधान-सभा द्वारा अथवा विधान-परिषद्वाले राज्य में विधानमण्डल के दोनों सदनों द्वारा कोई विधेयक पास कर दिया गया हो, तब वह राज्यपाल के सामने उसकी अनुमति के लिए रखा जाएगा। राज्यपाल तब, उस विधेयक पर या तो अनुमति देगा या अनुमति रोक लेगा अथवा उसको राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित (Reserve) कर लेगा। परन्तु राज्यपाल, अनुमति के लिए अपने सामने उपस्थित किए गए विधेयक को, यदि वह धन-विधेयक न हो तो, यथाशीघ्र सदन या सदनों को अपने संदेश के साथ लौटा दे सकेगा। इस संदेश में वह सदन से या दोनों सदनों से उस विधेयक पर या उसमें दी हुई खास-खास बातों पर पुनर्विचार करने तथा विशेषतः किन्हीं ऐसे संशोधनों की वांछनीयता पर विचार करने को कहेगा, जिनकी उसने अपने संदेश में सिपारिश की हो। जब विधेयक इस प्रकार लौटा दिया जाय, तब सदन या दोनों सदन इसपर तदनुसार पुनर्विचार करेंगे। इस पुनर्विचार के बाद यदि यह विधेयक सदन या सदनों द्वारा संशोधन-सहित या बिना संशोधन के पुनः पास हो जाय तथा राज्यपाल के सामने फिर अनुमति के लिए रखा जाय, तो इस बार वह अपनी अनुमति नहीं रोकेगा।

लेकिन अगर कभी राज्यपाल के सामने उसकी अनुमति के लिए उपस्थित किया हुआ कोई विधेयक उसकी राय में ऐसा हो जिसके विधि बन जाने से उस राज्य के उच्चन्यायालय की शक्तियाँ इतनी कम हो जायँगी, कि उसके उस स्थान के कायम रखने में बाधा खड़ी हो जाएगी जिसके लिए संविधान ने उसे बनाया है, तो उसपर वह अपनी अनुमति नहीं देगा; किन्तु उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित रखेगा। राज्यपाल द्वारा जब कोई विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर लिया जाय, तब वह इसपर या तो सम्मति देगा या सम्मति रोक लेगा। परन्तु जहाँ ऐसा विधेयक, धन-विधेयक नहीं है, वहाँ वह राज्यपाल

को यह आदेश दे सकेगा कि वह उसको यथास्थिति राज्य के विधानमंडल के सदन को या सदनों को उसके संदेश-सहित लौटा दे। इस संदेश में उसी तरह की बातें रहेंगी, जिस तरह की, ऐसी अवस्था में राज्यपाल के संदेश के सम्बन्ध में ऊपर दी गई हैं। जब कोई विधेयक इस प्रकार लौटा दिया जाय, तब ऐसे संदेश के मिलने की तारीख से ६ महीने के अन्दर सदन या दोनों सदन उसपर तदनुसार फिर से विचार करेंगे। इस पुनर्विचार के बाद यदि वह विधेयक संशोधन के सहित या इसके बिना फिर से पास हो जाय, तब वह राष्ट्रपति के सामने उसके विचार के लिए पुनः उपस्थित किया जाएगा।

वित्तीय विषयों में प्रक्रिया

राज्यपाल प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में राज्य के विधानमंडल के सदन अथवा सदनों के सामने, उस वर्ष के लिए उस राज्य की प्राक्कलित प्राप्तियों और व्ययों का विवरण रखवावेगा। इसे वार्षिक वित्त-विवरण कहा जाएगा। इसमें दो तरह के खर्च अलग-अलग दिखलाए जाएँगे—एक वे जो राज्य की संचित निधिपर भारित होंगे और दूसरे वे जो राज्य की संचित निधि से किए जाएँगे। साथ-ही-साथ राजस्व-लेखे पर होनेवाले व्यय का अन्य व्यय से भेद किया जायगा।

राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय ये सब होंगे—राज्यपाल की उपलब्धियाँ और भत्ते तथा उसके पद से सम्बन्धित दूसरे खर्च; विधानसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के, तथा जहाँ विधानपरिषद् हो, वहाँ इसके सभापति और उपसभापति के भी, वेतन और भत्ते; ऐसे ऋणभार जिनका दायित्व राज्य पर है; उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते; किसी न्यायालय के निर्णय के मुताबिक दिए जानेवाले रुपए; और वे दूसरे व्यय जो इस संविधान द्वारा या राज्य के विधानमंडल द्वारा इस प्रकार भारित घोषित किए जाएँ।

राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय से सम्बद्ध प्राक्कलनों पर विधानसभा में मतदान नहीं होगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इन पर वाद-विवाद भी नहीं हो सकेगा। इन प्राक्कलनों में से जो दूसरे व्यय से सम्बन्धित हैं, वे विधानसभा के सामने अनुदानों की माँगों के रूप में रखी जायँगी।

इनमें से किसी माँग को स्वीकार या अस्वीकार करना, विधानसभा की मर्जी पर निर्भर रहेगा। विधानसभा को किसी माँग में रखी गई राशि को कम करके स्वीकार करने की भी शक्ति होगी। लेकिन विधानसभा को स्वयं किसी माँग को बढ़ाने या कोई नई माँग रखने की शक्ति नहीं होगी। संविधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राज्यपाल की सिफारिश के बिना किसी भी अनुदान की माँग नहीं की जायेगी।

विधानसभा द्वारा इस प्रकार अनुदान किए जाने के बाद यथाशीघ्र विनियोग-विधेयक पेश किया जायेगा। इसमें विधान सभा द्वारा किए गए अनुदानों तथा राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित सब धनों के राज्य की संचित निधि में से विनियोग के लिए व्यवस्था की जायगी। ऐसे विधेयक में इस तरह का कोई संशोधन नहीं पेश किया जा सकेगा जिससे इस तरह किए गए अनुदान की अथवा राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि में फेरफार हो अथवा जिससे किसी अनुदान का लक्ष्य बदल जाय। कोई संशोधन पेश किए जाने लायक है अथवा नहीं, इसपर सदन के सभापतित्व का काम करते हुए व्यक्ति का निर्णय अन्तिम होगा। इस तरह से पास हुई विधि द्वारा किए गए विनियोग के अनुसार ही राज्य की संचित निधि में से कोई धन निकाला जा सकेगा।

संविधान में अनुपूरक, अपर या अधिकाई अनुदानों के सम्बन्ध में भी व्यवस्था की गई है। राज्य की विधानसभा को किसी अनुदान को पेशगी देने की भी शक्ति होगी। इसके अलावे विधानसभा प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान भी मंजूर कर सकेगी।

साधारणतया प्रक्रिया

संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के विधानमंडल का प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन के लिए नियम बना सकेगा। जबतक ये नियम नहीं बनाए जाते, तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी राज्य के प्रान्तीय विधानमंडल के सम्बन्ध में जो प्रक्रिया के नियम लागू थे, वे ही ऐसे परिवर्तनों के साथ यथास्थिति विधानसभा का अध्यक्ष या

विधानपरिषद् का सभापति करे, उस राज्य के विधानमंडल के सम्बन्ध में लागू रहेंगे। विधानपरिषद्वाले राज्य में, विधानसभा के अध्यक्ष तथा विधान-परिषद् के सभापति से परामर्श करने के बाद राज्यपाल उनमें परस्पर संचार के सम्बन्ध में प्रक्रिया के नियम बना सकेगा।

राज्य के विधानमंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या भाषाओं अथवा हिन्दी या अंग्रेजी में किया जाएगा। लेकिन यथास्थिति विधान-सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद् का सभापति अथवा ऐसे रूप में काम करनेवाला व्यक्ति, किसी सदस्य को, जो उपर्युक्त भाषाओं में से किसी में पूरी तरह से अपना भाव-नहीं व्यक्त कर सकता, अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुज्ञा दे सकेगा। जब-तक राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा कुछ दूसरी बात नहीं तय करे, तबतक इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह बरस के बाद विधानमंडल के कार्य की भाषा अंग्रेजी नहीं रहेगी।

उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च-न्यायालय के किसी न्यायाधीश के अपने कर्तव्यपालन में किए गए आचरण के विषय में राज्य के विधानमंडल में कोई चर्चा नहीं होगी। न्यायालय विधान मंडल की कार्यवाहियों की जाँच नहीं करेंगे और प्रक्रिया में किसी कथित अनियमितता के आधार पर विधानमंडल की किसी कार्यवाही की मान्यता पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकेगी।

राज्यपाल की विधायिनी शक्तियाँ

विशेष परिस्थिति में आवश्यकता पड़ने पर राज्यपाल को भी थोड़े दिनों के लिए विधि बनाने का अधिकार दिया गया है। ऐसे विधि को अध्यादेश कहा जाएगा। संविधान के अनुसार, उस समय को छोड़कर जबकि राज्य की विधान-सभा का, तथा विधानपरिषद्वाले राज्य में विधानमंडल के दोनों सदनों का अधिवेशन चल रहा हो, यदि किसी समय राज्यपाल यह समझे कि ऐसी परिस्थितियाँ वर्तमान हैं जिनके चलते उसे तुरत कार्य करना जरूरी है, तो वह ऐसे अध्यादेशों को लागू कर सकेगा जो उसे परिस्थितियों को देखते हुए आवश्यक प्रतीत हो। इस तरह से लागू किए गए अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि का होता

है। किन्तु ऐसा प्रत्येक अध्यादेश राज्य की विधान-सभा के, तथा जहाँ राज्य में विधानपरिषद् है वहाँ दोनों सदनों के सामने रखा जाएगा और विधान-मंडल की पुनः बैठक होने से छः सप्ताह की समाप्ति पर इसका लागू होना खतम हो जाएगा। अगर छः सप्ताह के पहले ही राज्य का विधानमंडल इस अध्यादेश के विरुद्ध प्रस्ताव पास कर दे, तब भी वही परिणाम होगा। इसके अलावे राज्यपाल द्वारा यह किसी समय भी लौटा लिया जा सकेगा।

किन्तु राष्ट्रपति के आदेश के बिना राज्यपाल कोई ऐसा अध्यादेश नहीं जारी कर सकेगा, यदि उसके उपबन्ध इस तरह के हों जिनके किसी बिल में रहने से उसके विधानमंडल में पेश किए जाने के लिए राष्ट्रपति की पूर्वमंजूरी आवश्यक होती अथवा उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित किया जाता। यदि राज्यपाल का कोई अध्यादेश या इसका कोई अंश ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में हो, जिसपर विधि बनाना राज्य के विधानमंडल की शक्ति के बाहर हो, तो यह अध्यादेश या इसका वह अंश शून्य होगा।

उपर्युक्त व्यवस्था पर विचार

प्रथम अनुसूची के भाग (क) में के राज्यों की कार्यपालिका और विधान-मंडल के सम्बन्ध में संविधान में जो व्यवस्था दी गई है, वह ऊपर दी जा चुकी है। मुख्यतः यह व्यवस्था संघीय कार्यपालिका और विधानमंडल के सम्बन्ध में की हुई व्यवस्था से मिलती-जुलती है। इसलिए जो विचार संघीय कार्यपालिका और विधानमंडल के सम्बन्ध में प्रकट किए गए हैं वही यहाँ भी लागू होंगे। यहाँ भी संघ की तरह शासन की जिम्मेदारी मंत्रि-परिषद् के ही हाथ में रहेगी। राज्यपाल राष्ट्रपति की तरह सिर्फ एक सांविधानिक प्रधान होगा। मंत्रिपरिषद् राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी रहेगी, राज्यपाल के प्रति नहीं। यह व्यवस्था उचित ही है। लेकिन राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ सुझाव रखने की जरूरत मालूम पड़ती है। संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। यह स्पष्ट है कि ऐसा करते समय वह संघीय मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार चलेगा। इसका परिणाम यह होगा कि राज्यपाल वही व्यक्ति होगा जो संघीय मंत्रिपरिषद् का विश्वासपात्र हो। इससे राज्य के शासन में बाधा उपस्थित होने की आशंका रह जाती है। यह ठीक है कि राज्य में शासन चलाने का काम मन्त्रिमंडल का

होगा। लेकिन सांविधानिक प्रधान की हैसियत से राज्यपाल को भी कई तरह की शक्तियाँ दी गई हैं। साधारणतः उनका प्रयोग नहीं होगा, इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि कभी भी उनका प्रयोग नहीं होगा। ऐसी अवस्था में राज्य की कार्यपालिका को शक्तिशाली बनाने और शासन के सुचारु रूप से चलाए जाने के लिए यह आवश्यक है कि राज्यपाल और राज्य की मंत्रिपरिषद् के बीच पूरा सहयोग और सद्भावना रहे। संविधान में राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है उससे इस सहयोग और सद्भावना में बाधा पड़ सकती है। जबतक संघ और राज्य दोनों में एक ही पार्टी का मन्त्रिमण्डल रहेगा, तबतक तो कोई कठिनाई नहीं होगी। लेकिन बराबर ऐसा ही रहेगा, यह कोई नहीं कह सकता। कभी ऐसा भी हो सकता है कि संघ में एक पार्टी का मंत्रिमंडल रहे और राज्य में किसी दूसरी पार्टी का। ऐसी अवस्था में संघीय मंत्रि-मंडल जिस पार्टी के हाथ में रहेगा, सम्भवतः उसी पार्टी का व्यक्ति राज्यपाल बहाल किया जायगा। ऐसे राज्यपाल में राज्य के मंत्रिमंडल को पूरा विश्वास रहेगा, यह कहना कठिन है। राज्यपाल और मंत्रिमंडल में सद्भावना की कमी के फलस्वरूप सांविधानिक संकट के बहुत-से अवसर उपस्थित हो सकते हैं और संघ और राज्य की सरकारों के बीच के सम्बन्ध पर भी इसका असर पड़ सकता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है वह दोषपूर्ण है।

अब प्रश्न यह है कि इस सम्बन्ध में उचित व्यवस्था क्या होगी? कुछ लोग यह कह सकते हैं कि राज्यपाल जनता द्वारा बालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचित किया जाना चाहिए। लेकिन यह उचित नहीं होगा। जब राज्यपाल का काम सिर्फ सांविधानिक प्रधान का है और जब शासन की जिम्मेदारी वास्तव में मुख्यमन्त्री और मंत्रिमंडल के कन्धों पर है, तब राज्यपाल को जनता द्वारा निर्वाचित कराना व्यर्थ ही नहीं, वल्कि संघर्ष का एक बड़ा कारण भी होगा। जनता द्वारा निर्वाचित राज्यपाल नाममात्र की शक्तियों से शायद ही सन्तुष्ट रहे। परिणाम यह होगा कि वह शासन में हस्तक्षेप करने की कोशिश करेगा और इस तरह उसमें और मन्त्रिमण्डल में बराबर संघर्ष चलता रहेगा।

ऐसी हालत में राज्यपाल के सम्बन्ध में दो में से कोई एक व्यवस्था की जा सकती है। अगर निर्वाचित राज्यपाल का रहना अधिक पसन्द हो, तो यह व्यवस्था की जा सकती है कि वह राज्य की विधानसभा के तथा उस राज्य से लोकसभा के लिए चुने हुए सदस्यों से मिलकर बने हुए निर्वाचक-मंडल द्वारा निर्वाचित किया जाय। अगर यह समझा जाय कि राज्यपाल के सम्बन्ध में निर्वाचन की आवश्यकता नहीं पड़े, तो यह व्यवस्था की जा सकती है कि उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा हो, लेकिन ऐसा करते समय राष्ट्रपति संघीय मंत्रिमंडल के नहीं, वल्कि राज्य के मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार चले। दोनों तरह की व्यवस्था उचित जान पड़ती है।

राज्य के विधानमण्डल के सम्बन्ध में विशेष तरह से विचार करने की बात यह है कि राज्य में भी दो सदन के विधानमंडल की व्यवस्था की गई है। जो बातें संघीय विधानमण्डल (संसद) में दो सदन रखे जाने के विरुद्ध लिखी गई हैं वे बातें राज्य के संबंध में भी लागू हैं। अगर कोई फर्क है तो यही कि यहाँ पर दो सदनों की उपयोगिता और भी नहीं है। संघ में दो सदन रखने के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि लोकसभा जनता का प्रतिनिधित्व करेगी तो राज्य-परिषद् अलग-अलग राज्यों का। अब यह सिद्धान्त सभी को मान्य नहीं है और जैसा कि संसद के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा गया है, इस आधार पर दूसरे सदन की उपयोगिता नहीं सिद्ध की जा सकती। लेकिन राज्य के सम्बन्ध में तो यह दलील भी नहीं रखी जा सकती। इसके अलावे यह भी ध्यान देने लायक है कि दो सदनों की व्यवस्था सभी राज्यों के लिए नहीं की गई है। ऐसा करके तो कम-से-कम यह स्पष्ट मान लिया गया है कि दो सदनों का रहना जरूरी नहीं है। तब यह पूछना बहुत जायज मालूम पड़ता है कि अगर आसाम, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और मद्रास में एक ही सदन से काम चल जा सकता है, तो फिर पंजाब, पश्चिमी बंगाल, विहार, बम्बई और उत्तरप्रदेश में भी ऐसा क्यों नहीं हो सकता? इन राज्यों में कौन-सी विशेष परिस्थिति है जिसके लिए यहाँ पर दो सदनों का रहना आवश्यकया हितकर समझा गया? उचित तो यही जान पड़ता है कि सभी राज्यों में समान रूप से एक ही सदन का विधानमंडल रहे।

अध्याय १७

प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्य

प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में वे राज्य हैं जिनकी जगह पर पहले देशी रियासतें थीं। इस तरह के राज्यों की संख्या नौ है—जम्मू और काश्मीर, तिरुवांकुर-कोचीन, पटियाला तथा पूर्वी पंजाब-राज्यसंघ, मध्यभारत, मैसूर, राजस्थान, विन्ध्यप्रदेश, सौराष्ट्र और हैदराबाद। इनकी शासनव्यवस्था भी करीब-करीब प्रथम अनुसूची के भाग (क) के राज्यों की तरह ही है। दोनों में जो भिन्नताएँ हैं, उन्हें नीचे दिया जा रहा है :—

कार्यपालिका के सम्बन्ध में यहाँ पर यह विशेषता रहेगी कि यहाँ राज्यपाल की जगह पर राजप्रमुख होंगे। पिछले अध्याय में जहाँ-जहाँ राज्यपाल शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर राजप्रमुख शब्द रख देने पर वे उपबन्ध इन राज्यों पर भी करीब-करीब उसी तरह लागू होंगे। हैदराबाद में वही व्यक्ति राजप्रमुख होगा जिसे राष्ट्रपति वहाँ के निजाम के रूप में स्वीकार करता हो। जम्मू और काश्मीर तथा मैसूर में राजप्रमुख वह होगा जो राष्ट्रपति द्वारा वहाँ के महाराजा के रूप में स्वीकार किया गया हो। अन्य राज्यों के राजप्रमुख वे व्यक्ति होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति इस रूप में स्वीकार करता हो।

लेकिन राज्यपाल की तरह राजप्रमुख भी सिर्फ नाम के लिए ही राज्य की कार्यपालिका का प्रधान होगा। असल में शासन का काम मंत्रि-परिषद् के हाथ से होगा जो राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी रहेगी। उड़ीसा, बिहार और मध्यप्रदेश की तरह मध्यभारत में आदिम जातियों के कल्याण की देखरेख करने के लिए एक मंत्री अवश्य रखा जायगा। यह मंत्री इसके साथ-साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण का अथवा किसी दूसरे काम का भार भी ले सकेगा। मंत्रि-परिषद् के सम्बन्ध की अन्य बातें वही होंगी जो भाग (क) में के राज्यों पर लागू हैं।

भाग (क) में के राज्यों की तरह इन राज्यों में भी विधानमंडल की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक राज्य में एक विधानमंडल होगा जो राजप्रमुख तथा मैसूर में दो सदनों से और अन्य राज्यों में एक सदन से मिलकर बनेगा। इन राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध के अन्य नियम करीब-करीब वही होंगे जो भाग (क) में के राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध में दिए गए हैं। कुछ भेद अवश्य हैं, लेकिन वे अधिकतर अस्थायी हैं और कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

राजप्रमुख की अवस्था पर विचार

प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्यों की यही शासनव्यवस्था है। जहाँ तक विधानमण्डल का प्रश्न है, सिर्फ मैसूर के लिए दो सदनों की व्यवस्था की गई है। बाकी और राज्यों में एक सदन के विधानमंडल ही रहेंगे। संघ में या भाग (क) में के कुछ राज्यों में दो सदन रखने की उपयोगिता के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, वह मैसूर के सम्बन्ध में भी लागू है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जब भाग (ख) में के आठ और राज्यों में एक सदन से ही काम चल सकता है तो मैसूर में इसके बिना कौन हानि हो रही थी, यह समझना कठिन मालूम पड़ता है।

भाग (ख) में के राज्यों की शासनव्यवस्था में जो बात विशेष तौर से ध्यान देने की है, वह राजप्रमुख की अवस्था है। इन राज्यों में राज्यपाल की जगह राजप्रमुख रहेंगे। राजप्रमुख का रहना प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है। यह ठीक है कि राजप्रमुख के रहने से कार्यपालिका के स्वरूप में कोई मौलिक अन्तर नहीं पड़ता है। यहाँ भी शासन का काम उसी तरह मंत्रिमंडल के हाँथ में रहेगा जिस तरह भाग (क) में के राज्यों में। लेकिन सिद्धान्त की दृष्टि से एक बहुत बड़ा भेद रह जाता है। जो व्यक्ति राज्यपाल होगा वह अपनी योग्यता के आधार पर उस पद पर नियुक्त किया जाएगा। इसलिए कोई भी व्यक्ति इस पद तक पहुँचने की आशा कर सकता है। लेकिन राजप्रमुख के सम्बन्ध में यह बात नहीं लागू है। जो व्यक्ति एक अमुक घराने में पैदा होगा वही एक राज्य का राजप्रमुख हो सकेगा। उदाहरण के लिए हैदराबाद में निजाम-

घराने का व्यक्ति ही वहाँ का राजप्रमुख होगा, अन्य कोई नहीं। अन्य राज्यों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू है। यह ठीक है कि सिर्फ राजघराने में जन्म लेने से ही कोई राजप्रमुख नहीं हो जायगा। इसके लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति की भी आवश्यकता है। लेकिन इसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि अगर किसी खास राजप्रमुख का आचरण सन्तोषजनक नहीं रहे, तब राष्ट्रपति उससे अपनी स्वीकृति वापस ले लेगा और उसीके घराने के किसी दूसरे व्यक्ति को राजप्रमुख के रूप में स्वीकार करेगा। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह जिसे चाहे, राजप्रमुख बना देगा; चाहे वह किसी भी वंश का हो। किसी पद पर एक खास वंश के ही व्यक्ति रह सकते हैं, दूसरे लोग नहीं, यह प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के एकदम विपरीत है। इसके अलावे राजप्रमुख को रखने में राज्यपाल से बहुत अधिक खर्च पड़ता है। राजप्रमुख के वेतन, भत्ते इत्यादि राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित होंगे। ऐसा करते समय राष्ट्रपति भिन्न-भिन्न अवसरों पर भारत-सरकार और देशी राजाओं के बीच किए गए समझौतों को अवश्य ध्यान में रखेगा; और उन समझौतों के अनुसार राजप्रमुखों को बहुत अधिक रुपया देने का वादा किया गया है। यह भी ध्यान देने लायक है कि राजप्रमुख पर जो कुछ अधिकार है वह राष्ट्रपति का। राज्यपाल और उसके मंत्रिमंडल के बीच के सम्बन्ध पर विचार करते हुए पिछले अध्याय में जो कुछ लिखा गया है, वह यहाँ भी लागू होगा। अगर एक पार्टी का मन्त्रिमण्डल संघ में हो और दूसरी पार्टी का किसी राज्य में, तो दोनों में संघर्ष की बहुत सम्भावना रहेगी और ऐसी हालत में राजप्रमुख के अपने पद पर कायम रहने के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति पर निर्भर रहने के कारण इस संघर्ष की सम्भावना और भी बढ़ जायगी और राजप्रमुख और उसके मन्त्रिमण्डल के बीच का सम्बन्ध भी अच्छा नहीं रहेगा। इस तरह यह स्पष्ट है कि भाग (क) में के राज्यों की तरह भाग (ख) में के राज्यों में भी राजप्रमुख की जगह पर राज्यपाल की व्यवस्था रहनी चाहिए और जो सुझाव भाग (क) में के राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति अथवा निर्वाचन के सम्बन्ध में रखे गए हैं, वही सुझाव यहाँ के लिए भी समीचीन जान पड़ते हैं।

देशी शासकों की अवस्था

भाग (ख) में के राज्य पहले के देशी राज्यों अथवा उनके संघों से बने

हैं। इसलिए पहले की देशी रियासतों के शासकों के सम्बन्ध में संविधान में जो उपबन्ध दिए गए हैं, उन्हें भी यहीं पर दे देना उपयुक्त जान पड़ता है। जैसा कि अध्याय (६) में कहा गया है, शासकों के साथ भारत-सरकार के जो समझौते हुए, उनके मुताबिक उनके हाथ से रियासतें तो ले ली गईं, लेकिन उनकी उपाधि वगैरह ज्यों की त्यों बनी रही और उनके व्यक्तिगत खर्च के लिए सरकारी आमदनी में से काफी रुपया देने का भी वादा किया गया। संविधान के अनुसार इस काम के लिए किसी राज्य का शासक वही समझा जायगा जिसे राष्ट्रपति इस रूप में स्वीकार करे।[1] संसद की या किसी राज्य के विधानमंडल की विधि बनाने की शक्ति के प्रयोग में अथवा संघ या किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में, देशी राज्यों के शासकों के साथ भारत सरकार द्वारा किए गए समझौतों के अधीन उनके व्यक्तिगत अधिकारों, विशेषाधिकारों इत्यादि के सम्बन्ध में दिए गए आश्वासनों का पूरा ध्यान रखा जायगा।[2] इन समझौतों से पैदा होनेवाले किसी झगड़े में न्यायालयों द्वारा किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं हो सकेगा।[3]

इस व्यवस्था पर विचार करते हुए यह कहना उचित जान पड़ता है कि राष्ट्रपति को किसी शासक से अपनी स्वीकृति हटाकर उसे उसके अधिकारों इत्यादि से वंचित करने का अधिकार देकर ठीक किया गया है। इसका परिणाम यह होगा कि कोई शासक राष्ट्रविरोधी कार्य में शामिल होने से रोका जा सकेगा। इसी तरह शासकों और भारत-सरकार के बीच किये गए समझौतों से पैदा होनेवाले झगड़ों को भी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर रखकर अच्छा ही किया गया है। इससे मुकदमेबाजी का एक बहुत बड़ा जरिया बन्द रहेगा। लेकिन संघ और राज्यों की कार्यपालिका और विधानमंडलों को कोई भी काम

---

१. अनुच्छेद ३६६, खंड २२। इसी उपबन्ध के अनुसार अप्रैल १४, १९५१ से राष्ट्रपति ने बड़ौदा के शासक सर प्रताप सिंह गायकवाड़ को शासक के रूप में मानना अस्वीकार कर दिया है और उनके ज्येष्ठ पुत्र फते सिंह को शासक मान लिया है।

२. अनुच्छेद ३६२, राष्ट्रपति ने।

३. अनुच्छेद ३६३, खंड (१),

करते समय इन शासकों के साथ किए गए समझौतों को ध्यान में रखने का आदेश देकर उचित नहीं किया गया है। इन समझौतों में शासकों को बहुत-सी सुविधाएँ दी गई हैं। उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति ज्यों-की-त्यों उनके हाथ में रह गई है। इसके अलावे निजी थैली के रूप में उन्हें बहुत बड़ी रकम देने का वादा भी किया गया है। उपर्युक्त उपबन्ध का व्यवहार में यह परिणाम होगा कि इन सुविधाओं को कभी भी न घटाया जा सकेगा और न खतम किया जा सकेगा। इस तरह ये शासक बिना समाज का किसी भी तरह का हित किए हुए, उसके धन के एक बहुत बड़े भाग का भोग करते रहेंगे। यह व्यवस्था न्यायपूर्ण नहीं कही जा सकती। इसके अलावे आर्थिक और सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए कभी यह आवश्यक हो सकता है कि इनकी सम्पत्ति का बँटवारा किया जाय या इनको निजी थैली न देकर उस रुपये को दूसरे लाभदायक काम में लगाया जाय। लेकिन संविधान के इस उपबन्ध के रहते ऐसा करना शायद ही सम्भव हो। इसलिए इसे नहीं रखना ही अधिक अच्छा होता।

अध्याय १८

प्रथम अनुसूची के भाग (ग) में के राज्य

प्रथम अनुसूची के भाग (ग) में सब मिलाकर दस राज्य हैं। इनके नाम इस तरह हैं—अजमेर, कच्छ, कोचबिहार, कुर्ग (या कोड़गु), त्रिपुरा, दिल्ली, बिलासपुर, भोपाल, मनीपुर, और हिमाचलप्रदेश। इनमें से कुछ तो ऐसे राज्य हैं जिन्हें पहले चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के नाम से पुकारा जाता था और कुछ वे हैं जिनकी जगह पर पहले देशी रियासतें थीं। इनकी शासन-व्यवस्था भाग (क) और भाग (ख) के राज्यों से एकदम भिन्न है, और उनकी तरह इनके शासन की जिम्मेदारी स्थानीय-सरकारों पर नहीं, बल्कि संघ-सरकार पर है।

संविधान के अनुसार इन राज्यों का शासन राष्ट्रपति द्वारा किया जायगा। राष्ट्रपति मुख्य आयुक्त (चीफ कमिश्नर) या उपराज्यपाल (लेफ्टिनेण्ट गवर्नर) नियुक्त करेगा और उन्हीं के जरिए इन राज्यों का शासन चलाएगा। राष्ट्रपति अगर चाहे तो इनमें से किसी राज्य के शासन का भार किसी पड़ोसी राज्य की सरकार को भी सौंप सकता है। लेकिन सम्बन्धित सरकार से परामर्श किए बिना तथा जिस राज्य का शासन इस तरह सौंपा जायगा उस राज्य की जनता के विचारों को निश्चयपूर्वक जाने बिना राष्ट्रपति ऐसा नहीं करेगा।

लेकिन संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह जब उचित समझे तब इन राज्यों में जनतंत्रात्मक शासन की व्यवस्था कर सकती है। संविधान के अनुसार, संसद विधि द्वारा ऐसे किसी राज्य के लिए विधानमंडल के रूप में काम करने के लिए किसी संस्था के संगठित किए जाने की व्यवस्था कर सकती है। यह विधानमंडल नामजद सदस्यों से बना, या निर्वाचित सदस्यों से बना अथवा अंशतः नामजद और अंशतः निर्वाचित सदस्यों से बना हो सकता है।

इसी तरह संसद किसी राज्य के लिए परामर्शदाताओं की या मंत्रियों की परिषद् के या दोनों के कायम किए जाने की व्यवस्था कर सकती है। ऐसी परिषदों के गठित किए जाने के नियम, इनकी शक्तियाँ तथा इनके काम वही होंगे जो विधि द्वारा निश्चित किए जायँ।

कुर्ग के सम्बन्ध में संविधान में कुछ विशेष उपबन्ध हैं। इनके अनुसार, जबतक कि संसद विधि द्वारा कोई दूसरी व्यवस्था नहीं करती तबतक कुर्ग की विधानपरिषद् का गठन, शक्तियाँ और काम वैसे ही होंगे जैसे कि वे इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले थे। कुर्ग में वसूले गए राजस्व तथा इस राज्य के सम्बन्ध में खर्च के विषय में जो प्रबन्ध पहले थे, वे तबतक अपरिवर्तित रहेंगे, जबतक कि इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा कोई दूसरी व्यवस्था नहीं करे।

जनतंत्रात्मक शासन का अभाव

संविधान में भाग (ग) के राज्यों के सम्बन्ध में जो व्यवस्था संविधान में की गई है वह ऊपर दे दिया गया है। इसपर विचार करते समय इस बात पर ध्यान जाता है कि इन राज्यों के लिए जनतंत्रात्मक शासन की व्यवस्था नहीं की गई है। इनका नाम भी राज्य रखा गया है। लेकिन यह सिर्फ नाम की बात है। जहाँ तक इनके शासन का प्रश्न है, इसकी पूरी जिम्मेवारी संघ सरकार को दी गई है। इसके अलावे राज्य के भीतर भी जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन हो इसकी कोई समुचित व्यवस्था नहीं की गई है। इन राज्यों का शासन संघ-सरकार के कर्मचारियों द्वारा होगा और उनपर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहेगा। यह ठीक है कि संसद में इन राज्यों के चुने हुए प्रतिनिधि रहेंगे और वहाँ पर उन्हें इन राज्यों के शासन की आलोचना का अवसर मिलेगा। लेकिन यह अवसर किसी भी हालत में पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। संसद के सामने इतने तरह के काम रहते हैं कि इन राज्यों के भीतर के शासन के सम्बन्ध में विवाद करने के लिए इसे अधिक अवकाश नहीं मिलेगा। यह भी ठीक है कि अगर संसद चाहे तो इन राज्यों में जनतन्त्रात्मक शासन स्थापित किया जा सकता है। लेकिन इस व्यवस्था से भी जनतन्त्रात्मक

शासन में विश्वास रखनेवालों को शायद ही पूरा सन्तोष हो। यह इसलिए कि ऐसा करना या नहीं करना संसद की मर्जी पर निर्भर करेगा। ऐसा तुरत हो ही जायगा, यह कोई नहीं कह सकता। इसके अलावे संसद द्वारा की गई व्यवस्था में तरह-तरह के प्रतिबन्ध भी रह सकते हैं। इसलिए उचित तो यही जान पड़ता है कि इन राज्यों में भी भाग (क) में के राज्यों की तरह पूर्ण जनतन्त्रात्मक शासन की व्यवस्था कर दी जाय, न कि इसे संसद की मर्जी पर रहने दिया जाय।

अध्याय १९

प्रथम अनुसूची के भाग (घ) में के राज्य-क्षेत्र

तथा

अन्य राज्य-क्षेत्र जो उस अनुसूची में उल्लिखित नहीं हैं

प्रथम अनुसूची के भाग (घ) में अन्दमान और निकोबार द्वीप हैं। इसके अलावे किसी ऐसे राज्यक्षेत्र का भी शासन इसी अध्याय के अनुसार होगा जो भारत-राज्यक्षेत्र में तो है, लेकिन जिसका जिक्र प्रथम अनुसूची में कहीं भी नहीं किया गया है। ऐसे राज्यक्षेत्र के शासन की जिम्मेदारी राष्ट्रपति पर होगी। राष्ट्रपति आवश्यकतानुसार मुख्य आयुक्त या अन्य सरकारी कर्मचारी नियुक्त करेगा और उनके जरिये इनके शासन की व्यवस्था करेगा। राष्ट्रपति ऐसे किसी राज्यक्षेत्र के लिए विनिमय (Regulations) बना सकेगा। इस प्रकार बना हुआ कोई विनिमय संसद-निर्मित किसी विधि को अथवा किसी वर्तमान विधि को, जो ऐसे राज्यक्षेत्र में तत्समय लागू हो, रद्द या संशोधित कर सकेगा। इस तरह के विनिमय का वही बल और प्रभाव होगा जो उस राज्यक्षेत्र में लागू होनेवाले संसद के किसी अधिनियम (ऐक्ट) का है।

अध्याय २०

अनुसूचित और आदिमजाति-क्षेत्र

भारत में आदिमजाति के लोगों की संख्या काफी है। इनका रहन सहन और लोगों के रहन-सहन से कई बातों में भिन्न है। इनकी एक अपनी विशिष्ट सभ्यता है। जहाँ एक तरफ यह आवश्यक है कि उनमें और दूसरे भारतीयों में किसी तरह का दुख नहीं रहे। और वे अपने को भारतीय जनसमूह का एक अविच्छिन्न अंग समझें, वहाँ यह भी उतना ही जरूरी है कि उनकी अपनी संस्कृति की रक्षा होती रहे। ये लोग बहुत पिछड़े हुए हैं और इनकी उन्नति के लिए विशेष उद्योग करना पड़ेगा। अभी जबतक इनकी अवस्था पिछड़ी हुई है, तबतक दूसरे भारतीयों के साथ समान स्तर पर खड़े होने में इन्हें कठिनाई होगी और इसलिए इनके अधिकारों को सुरक्षित करने की पूरी व्यवस्था रहनी चाहिए। कई दृष्टियों से इनकी अपनी अलग समस्याएँ भी हैं। ये कई राज्यों में बिखरे पड़े हैं और किसी भी राज्य में जनसंख्या की दृष्टि से इनका बहुमत नहीं है। इसलिए इनकी शासन-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे अलग-अलग राज्यों में रहते हुए भी अपने शासन पर इनका स्वयं अधिकार रहे और इनकी तरफ उन राज्यों के बहुमत की ओर से किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार सम्भव नहीं हो। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर अनुसूचित और आदिम-जाति-क्षेत्रों के शासन पर विचार करना चाहिए। भारतीय संविधान में इनके लिए एक विशेष व्यवस्था की गई है। इसके लिए इनके दो भाग किए गए हैं। एक भाग में आसाम-राज्य के अतिरिक्त प्रथम अनुसूची के भाग (क) या (ख) में के राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित आदिमजातियों के शासन की व्यवस्था है। यह व्यवस्था संविधान की पञ्चम अनुसूची में दी गई है। दूसरे भाग में आसाम राज्य में के आदिमजाति-क्षेत्रों के शासन की व्यवस्था है, जो संविधान की षष्ठ अनुसूची में दी गई है। यहाँ भी उन्हें अलग-अलग देना ही ठीक होगा।

(१) आसाम के अतिरिक्त अन्य राज्यों में के अनुसूचित और आदिमजाति-क्षेत्र

किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उस राज्य में के अनुसूचित-क्षेत्रों तक होगा। प्रत्येक राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख जिसमें अनुसूचित-

क्षेत्र हैं, प्रतिवर्ष अथवा जब भी राष्ट्रपति चाहे, उस राज्य में के अनुसूचित-क्षेत्रों के बारे में राष्ट्रपति को रिपोर्ट देगा। संघ की तरफ से किसी राज्य को इन क्षेत्रों के शासन के विषय में निर्देश (Directions) दिए जा सकते हैं।

आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद्

(Tribes Advisory Council) प्रत्येक राज्य में, जिसमें अनुसूचित-क्षेत्र हैं, एक आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् स्थापित की जायेगी। अगर राष्ट्रपति ऐसा निर्देश दे, तो किसी ऐसे राज्य में भी, जिसमें अनुसूचित आदिमजातियाँ हैं, लेकिन अनुसूचित-क्षेत्र नहीं हैं, इस तरह की परिषद् कायम की जायेगी। इस परिषद् के सदस्यों की संख्या बीस से अधिक नहीं होगी। इसमें से यथाशक्य निकटतम तीन चौथाई उस राज्य की विधानसभा में के अनुसूचित आदिमजातियों के प्रतिनिधि होंगे। लेकिन अगर किसी राज्य की विधानसभा में के अनुसूचित आदिमजातियों के प्रतिनिधियों की संख्या आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् में ऐसे प्रतिनिधियों द्वारा भरी जानेवाली जगहों की संख्या से कम रहे, तो बाकी जगहें उन आदिमजातियों के दूसरे सदस्यों द्वारा भरी जायंगी।

आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् का यह कर्तव्य होगा कि वह उस राज्य में की अनुसूचित आदिमजातियों के कल्याण और उन्नति से सम्बन्धित ऐसी बातों पर सलाह दे जो उनको यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा सौंपे जायँ। परिषद् के सदस्यों की संख्या, उनकी नियुक्ति की तथा परिषद् के सभापति एवं उसके पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्ति के तरीके के; उसके अधिवेशनों के संचालन तथा उसकी साधारणतया प्रक्रिया के; तथा दूसरे सभी प्रासंगिक विषयों के सम्बन्ध में राज्यपाल या राजप्रमुख नियम बना सकेगा।

अनुसूचित-क्षेत्रों में लागू होनेवाली विधि

यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख यह निर्देश दे सकेगा कि संसद का या उस राज्य के विधानमंडल का कोई खास अधिनियम उस राज्य में के अनुसूचित-क्षेत्र या उसके किसी भाग में लागू नहीं होगा। इस तरह के किसी अधिनियम में राज्यपाल या राजप्रमुख अपवाद या परिवर्तन भी कर सकता है और तब वह अधिनियम इन अपवादों और परिवर्तनों के बाद उस राज्य में के अनुसूचित-क्षेत्र या उसके किसी भाग में लागू होगा।

यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख राज्य में के किसी ऐसे क्षेत्र की शान्ति और सुशासन के लिए विनिमय बना सकेगा जो कि तत्समय अनुसूचित-क्षेत्र है। यह शक्ति बहुत व्यापक है और इसके भीतर कई तरह के विनिमय आ सकते हैं। इस व्यापकता पर बिना किसी तरह का प्रभाव डाले ऐसे विनिमय विशेषतया

आदिमजातियों के बीच में या उनके द्वारा, जमीन के हस्तान्तरण को रोकने या उसपर प्रतिबन्ध लगाने, आदिमजातियों के सदस्यों को जमीन बाँटने और जो लोग इन्हें धन उधार देते हैं उनके द्वारा साहुकार के रूप में कारबार करने के सम्बन्ध में व्यवस्था कर सकेंगे।

इस तरह के किसी विनिमय को बनाने में, राज्यपाल या राजप्रमुख को संसद के या इस राज्य के विधान-मण्डल के अधिनियम को अथवा किसी वर्तमान विधि को जो उस क्षेत्र में तत्समय लागू हो, रद्द या संशोधित करने की भी शक्ति रहेगी। ऐसे सभी विनिमय तुरत राष्ट्रपति के सामने रखे जायँगे और जबतक वह उनपर अपनी अनुमति नहीं दे दे, तबतक उनका कोई प्रभाव नहीं होगा। जिस राज्य में आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् हो, उस राज्य के किसी अनुसूचित-क्षेत्र के लिए ऐसा कोई विनिमय तबतक नहीं बनाया जायगा जबतक कि विनिमय बनानेवाले राज्यपाल या राजप्रमुख ने इस परिषद् से परामर्श न कर लिया हो।

अनुसूचित-क्षेत्र

संविधान के अनुसार अनुसूचित-क्षेत्र वे कहलायेंगे जिन्हें राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा अनुसूचित-क्षेत्र होना घोषित करे। राष्ट्रपति किसी भी समय आदेश दे सकेगा कि कोई सम्पूर्ण अनुसूचित-क्षेत्र अनुसूचित-क्षेत्र नहीं रहेगा या ऐसे क्षेत्र का कोई खास भाग इसका भाग नहीं रहेगा। इसी तरह वह किसी अनुसूचित-क्षेत्र को बदल भी सकेगा, लेकिन सिर्फ सीमाओं को ठीक करने के खयाल से ही वह ऐसा कर सकेगा। किसी राज्य की सीमाओं के परिवर्तन पर अथवा संघ में किसी नए राज्य के प्रवेश पर अथवा किसी नये राज्य की स्थापना पर राष्ट्रपति ऐसे किसी क्षेत्र को अनुसूचित-क्षेत्र या उसका भाग घोषित कर सकेगा जो पहले से किसी राज्य में शामिल नहीं हो। इस तरह के किसी आदेश में वे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध भी रह सकेंगे जिन्हें राष्ट्रपति आवश्यक और उचित समझे। किसी क्षेत्र को अनुसूचित-क्षेत्र घोषित करनेवाला राष्ट्रपति का आदेश ऊपर बताए गए तरीकों के अतिरिक्त और किसी तरीके से फिर किसी दूसरे आदेश द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकेगा।

इन उपबन्धों का संशोधन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आसाम के अतिरिक्त और राज्यों में के अनुसूचित और आदिमजाति-क्षेत्रों के शासन-सम्बन्धी ये सभी उपबन्ध संविधान की पञ्चम अनुसूची में दिए गए हैं। संविधान में संशोधन करने का उपबन्ध

३६८ वें अनुच्छेद में किया गया है। उसके अनुसार संशोधन की एक विशेष प्रक्रिया है जिसपर यथास्थान विचार किया जायेगा। लेकिन पञ्चम अनुसूची में दिए गए उपबन्धों में संशोधन के लिए उस प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। संसद विधि द्वारा इन उपबन्धों में आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकेगी। ऐसा करते समय वह इनमें नया उपबन्ध जोड़ सकेगी, इनमें फेरफार कर सकेगी या इनमें से किसी उपबन्ध को रद्द भी कर सकेगी।

(२) आसाम के आदिमजाति-क्षेत्र

आदिमजाति-क्षेत्र

आसाम-राज्य के भीतर के आदिमजाति-क्षेत्रों के शासन की व्यवस्था संविधान की षष्ठ अनुसूची में दी गई है। इसके अनुसार इन आदिमजाति-क्षेत्रों के दो भाग हैं जो—भाग (क) और (ख) में दिए गए हैं :—

भाग (क)

१. संयुक्त खासी-जयंतीया पहाड़ी जिला।
२. गारो पहाड़ी जिला।
३. लुसाई पहाड़ी जिला।
४. नगा पहाड़ी जिला।
५. उत्तरी कछार पहाड़ियाँ।
६. मिकिर पहाड़ियाँ।

भाग (ख)

१. उत्तरी पूर्वीय सीमान्त इलाका जिसके भीतर बालिपारा सीमान्त इलाका, तिराप सीमान्त इलाका, अबोर पहाड़ी जिला और मिशिमि पहाड़ी जिला भी हैं।
२. नगा आदिमजाति-क्षेत्र।

स्वायत्तशासी जिले और स्वायत्तशासी क्षेत्र

ऊपर दिए गए भाग (क) के प्रत्येक पद में के आदिमजाति क्षेत्रों का एक स्वायत्तशासी (Autonomous) जिला होगा। यदि किसी स्वायत्तशासी जिले में भिन्न-भिन्न अनुसूचित आदिम जातियाँ हैं, तो राज्यपाल इनसे बसे हुए क्षेत्र या क्षेत्रों को स्वायत्तशासी प्रदेशों (Autonomous regions) में बाँट सकेगा। राज्यपाल किसी क्षेत्र को भाग (क) के भीतर या बाहर रख सकेगा, नया स्वायत्तशासी जिला बना सकेगा, किसी ऐसे जिले का क्षेत्र बढ़ा या घटा सकेगा, दो या अधिक स्वायत्तशासी जिलों या उनके भागों को मिलाकर

एक स्वायत्तशासी जिला बना सकेगा और किसी स्वायत्तशासी जिले की सीमाएँ ठीक कर सकेगा।

जिला-परिषदों और प्रादेशिक परिषदों का गठन

प्रत्येक स्वायत्तशासी जिले के लिए एक जिला-परिषद् होगी। जिला-परिषद् के सदस्यों की संख्या चौबीस से अधिक नहीं होगी। इनमें से कम से-कम तीन चौथाई सदस्य बालिग मताधिकार के आधार पर चुने जायँगे। ऐसे प्रत्येक क्षेत्र के लिए जो एक स्वायत्तशासी प्रदेश के रूप में गठित किया गया हो, एक अलग प्रादेशिक परिषद् होगी। प्रत्येक स्वायत्तशासी जिले का प्रशासन ऐसे जिले की जिला-परिषद् में निहित होगा। इसी तरह प्रत्येक स्वायत्तशासी प्रदेश का प्रशासन ऐसे प्रदेश की प्रादेशिक परिषद् में निहित होगा। संविधान में जिला-परिषद् को स्वायत्तशासी प्रदेश के सम्बन्ध में जो शक्तियाँ दी गई हैं उनको छोड़कर और बातों में प्रादेशिक परिषद् जिला-परिषद् से पूर्णतया स्वतन्त्र रहेगी और प्रादेशिक परिषद् के भीतर वाले क्षेत्र के सम्बन्ध में जिला-परिषद् को सिर्फ वही शक्तियाँ होंगी, जो स्वयं प्रादेशिक परिषद् जिला-परिषद् को सौंपे।

जिला-परिषदों और प्रादेशिक परिषदों के प्रथम गठन के लिए नियम राज्यपाल द्वारा बनाये जायँगे। इन नियमों को बनाते समय वह सम्बद्ध जिलों या प्रदेशों के भीतर वर्तमान आदिमजाति-परिषदों अथवा दूसरे आदिमजाति-संगठनों से परामर्श कर लेगा। ऐसे नियमों में जिला-परिषदों और प्रादेशिक परिषदों की रचना तथा उनमें स्थानों के बँटवारे, इनके लिए निर्वाचन-क्षेत्र ठीक करने, मतदान के लिए योग्यता तथा निर्वाचक नामावलियों के तैयार कराने, परिषदों के सदस्य चुने जाने के लिए, योग्यता, सदस्यों की पदावधि, निर्वाचन या नामजदगी से सम्बन्धित अन्य विषय परिषदों में प्रक्रिया और कार्य-संचालन तथा इनके पदाधिकारियों और कर्मचारी-वृन्द की नियुक्ति के सम्बन्ध में व्यवस्था की जायगी।

अपने प्रथम गठन के बाद जिला या प्रादेशिक परिषद् ऊपर दी गई बातों के सम्बन्ध में स्वयं अपना नियम बनाने के लिए स्वतन्त्र होगी। ऐसी परिषद् अपने नीचे की स्थानीय परिषदों और मंडलियों (Subordinate local Councils or Boards) की रचना तथा उनकी प्रक्रिया और उनके कार्य-संचालन की भी व्यवस्था कर सकेगी।

यथास्थिति यह जिले या प्रदेश के शासनविषयक कार्यसम्पादन से सम्बन्ध रखनेवाली सभी साधारण बातों के लिए नियम बना सकेगी। लेकिन जबतक जिला अथवा प्रादेशिक परिषद् द्वारा इस तरह के नियम नहीं बनाए जाते तबतक

प्रत्येक ऐसी परिषद् के निर्वाचन, कार्यसंचालन इत्यादि के सम्बन्ध में राज्यपाल द्वारा बनाए गए नियम ही लागू होंगे।

उत्तर कछार और मिकिर पहाड़ियों के भीतर के क्षेत्रों के सम्बन्ध में कुछ विशेष उपबन्ध हैं। यथास्थिति वहाँ का डेपुटी कमिश्नर (मंडलायुक्त) या सब डिविजनल आफिसर (उपविभागीय पदाधिकारी) पदेन जिला-परिषद् का सभापति होगा। जिला-परिषद् के प्रथम गठन के बाद ६ वर्ष तक राज्यपाल के नियंत्रण के अधीन रहते हुए उसे जिला-परिषद् के किसी प्रस्ताव या निर्णय को रद्द करने या उसमें परिवर्तन करने की शक्ति होगी। वह जिला-परिषद् को आवश्यकतानुसार हिदायतें भी दे सकेगा और जिला-परिषद् ऐसी दी हुई प्रत्येक हिदायत को मानेगी।

जिला-परिषदों और प्रादेशिक परिषदों की शक्तियाँ

जिला परिषदों और प्रादेशिक परिषदों को अपने-अपने भीतर के क्षेत्रों के सम्बन्ध में व्यापक शक्तियाँ दी गई हैं। इन शक्तियों को विधि-सम्बन्धी, न्याय-सम्बन्धी, कार्यपालिका-सम्बन्धी और वित्त-सम्बन्धी, इन चार भागों में बाँटा जा सकता है। इन परिषदों को किसी रक्षित वन को छोड़कर अन्य भूमि; रक्षित वन न होनेवाले किसी वन; किसी नहर या जलधारा; खेती की प्रथा; ग्राम अथवा नगर-समितियों या परिषदों की स्थापना और उनकी शक्तियाँ; ग्राम या नगर के शासन से सम्बन्धित कोई अन्य विषय जिनके भीतर पुलिस, लोक-स्वास्थ्य और स्वच्छता भी है, प्रमुखों या मुखियों की नियुक्ति अथवा उत्तराधिकार सम्पत्ति का दायभाग (inheritance); विवाह; और सामाजिक रूढ़ियों के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति होगी। जिला और प्रादेशिक परिषदों द्वारा इन विषयों पर बनाई गई सभी विधियाँ तुरत राज्यपाल के सामने रखी जायेंगी और जबतक वह उनपर अपनी अनुमति नहीं दे दे तबतक लागू नहीं होंगी।

जिला-परिषदें और प्रादेशिक परिषदें अपने-अपने क्षेत्रों के भीतर मुकदमों के फैसले के लिए ग्राम-परिषदें या न्यायालय गठित कर सकेंगी। तथा उचित व्यक्तियों को ऐसी ग्राम-परिषदों के सदस्य अथवा ऐसे न्यायालयों के पीठासीन पदाधिकारी (Presiding officers) नियुक्त कर सकेंगी। इन ग्राम-परिषदों और न्यायालयों में सिर्फ उन्हीं मुकदमों की सुनवाई हो सकेगी जिनके सभी पक्ष (Parties) ऐसे क्षेत्रों के भीतर की अनुसूचित आदिमजातियों के ही हैं। जिला या प्रादेशिक परिषदों अथवा उनके द्वारा गठित न्यायालयों में इस तरह के मुकदमों की अपील की जा सकेगी। उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय को छोड़कर किसी दूसरे न्यायालय को ऐसे मुकदमों में कोई क्षेत्रा-

धिकार नहीं होगा। यथास्थिति जिला-परिषद् या प्रादेशिक परिषद् राज्यपाल के पूर्व अनुमोदन से अपने अधीन के सभी न्यायालयों के गठन, उनकी शक्ति, उनके द्वारा अनुसरण की जानेवाली प्रक्रिया, इनके फैसलों के लागू किए जाने तथा अन्य सब सहायक विषयों के सम्बन्ध में नियम बना सकेगी। राज्यपाल कुछ वादों, मामलों और अपराधों (Suits, cases and offences) की सुनवाई या परीक्षण के लिए किसी प्रादेशिक या जिला-परिषद् को, अथवा ऐसी जिला-परिषद् द्वारा गठित न्यायालयों को अथवा राज्यपाल द्वारा इस काम के लिए नियुक्त किसी पदाधिकारी को यथास्थिति व्यवहार-प्रक्रिया संहिता १९०८ (Code of Civil Procedure, 1908) के या दंड-प्रक्रिया संहिता १८९८ (Code of Criminal Procedure, 1898) के अधीन ऐसी शक्तियाँ प्रदान कर सकेगा जैसी कि वह उचित समझे। इन शक्तियों के प्राप्त हो जाने पर ऐसे अपराधों की भी जाँच हो सकेगी जिनकी सजा मृत्यु, आजीवन कालापानी या पाँच बरस से अधिक समय के लिए कारावास हो। राज्यपाल इस तरह से प्रदान की हुई शक्तियों में से किसी को भी वापस ले सकेगा या उसमें परिवर्तन कर सकेगा। यहाँ पर दी गई अवस्था के अतिरिक्त और किसी अवस्था में भी ये संहिताएँ किसी स्वायत्तशासी जिले या प्रदेश में, किसी मुकदमे की जाँच में नहीं लागू होंगी।

यथास्थिति जिला या प्रादेशिक परिषद् ऐसे पदाधिकारियों को नियुक्त कर सकेगी जो इसके द्वारा बनाई गई विधियों के प्रशासन के लिए आवश्यक हों। जिला-परिषद् जिले में प्राथमिक विद्यालयों, औषधालयों, बाजारों, कांजीहौस (Cattle pounds) घाट, मीन-क्षेत्र (Fisheries), सड़कों और जल-पंथों (Water ways) की स्थापना, निर्माण या प्रबन्ध कर सकेगी। विशेषतया यह परिषद् यह तय कर सकेगी कि जिले में के प्राथमिक विद्यालयों में किस भाषा में और किस रीति से शिक्षा दी जाये।

प्रत्येक स्वायत्तशासी जिले के लिए जिला-निधि तथा प्रत्येक स्वायत्तशासी प्रदेश के लिए प्रादेशिक निधि होगी। इसमें जिला-परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् द्वारा अपने-अपने भीतर के क्षेत्रों के प्रकाशन करने में प्राप्त सब धन को जमा किया जायेगा। इस धन के सम्बन्ध में जिला-परिषद् और प्रादेशिक परिषद् राज्यपाल के अनुमोदन से आवश्यक नियम बना सकेंगी। जिला-परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् को अपने-अपने क्षेत्रों के भीतर भू-राजस्व (Land Revenue) निर्धारित करने तथा संग्रह करने, भूमि और इमारतों पर किसी तरह का कर और ऐसे क्षेत्रों में निवास करनेवाले व्यक्तियों पर चुंगी लगाने और वसूलने की शक्ति होगी।

स्वायत्तशासी जिले की जिला-परिषद् को ऐसे जिले के भीतर और

भी कई तरह के कर लगाने और वसूलने की शक्ति होगी। इस तरह के कर ये सभी या इनमें से कोई हो सकते हैं—वृत्तियों, व्यापारों, आजिविकाओं, और नौकरियों पर कर; पशुओं, यानी (Vehicles) और नावों पर कर; किसी बाजार में वहाँ बिकने के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर तथा नावों से जानेवाले व्यक्तियों और माल पर चुंगी या पथ-कर (Tolls); पाठशालाओं, औषधालयों या सड़कों के बनाये रखने के लिए कर। किसी स्वायत्तशासी जिले के भीतर के किसी क्षेत्र के बारे में आसाम-सरकार द्वारा खनिज पदार्थों के खोजने या निकालने के लिये दी गई अनुज्ञप्तियों या पट्टों (Licenses or leases) से हर साल पाये जानेवाले स्वामित्व (Royality) का ऐसा अंश उस जिले की जिला-परिषद् को दे दिया जायेगा जैसा कि आसाम-सरकार और इस जिला-परिषद् के बीच तय हो। जिला-परिषद् को दिए जानेवाले ऐसे स्वामित्व के अंश पर अगर कोई विवाद पैदा हो तो वह राज्यपाल को फैसले के लिए सौंपा जायगा और स्वविवेक से राज्यपाल द्वारा किया गया फैसला सबको मान्य होगा।

स्वायत्तशासी जिले की जिला-परिषद् उस जिले में ऐसे लोगों की, जो उसमें निवास करनेवाली आदिमजातियों से भिन्न हैं, साहूकारी और व्यापार के विनियमन और नियन्त्रण (Regulation and Control) के लिए विनियम बना सकेगी। इन विनियमों के द्वारा जिला-परिषद् यह भी तय कर सकेगी कि बिना अनुज्ञप्ति रखे कोई साहूकारी का कारबार नहीं करेगा। कोई साहूकार जिला-परिषद् द्वारा निश्चित दर से अधिक सूद नहीं वसूल करेगा; और साहुकार लेखा रखेंगे और जिला-परिषदों द्वारा इस काम के लिए नियुक्त पदाधिकारियों द्वारा ऐसे लेखे का निरीक्षण होगा। जिला-परिषद् यह नियम भी बना सकेगी कि कोई व्यक्ति जो उस जिले में निवास करनेवाली अनुसूचित आदिमजातियों में का नहीं है; जिला-परिषद् द्वारा दी जानेवाली अनुज्ञप्ति के बिना किसी वस्तु में थोक या फुटकर कारबार नहीं करेगा। परन्तु ऐसे विनियम तबतक नहीं बन सकेंगे जबतक कि वे जिला-परिषद् की समस्त सदस्य-संख्या के कम-से-कम तीन चौथाई के बहुमत से नहीं पास किये जायँ। साथ-ही-साथ जो साहूकार या व्यापारी ऐसे विनियमों के बननेके समय से पहले उस जिले के भीतर व्यापार करता रहा है, उसको अनुज्ञप्ति देने से इनकार नहीं किया जा सकता। इस तरह जिला-परिषद् द्वारा बनाये गये सभी विनियम तुरत राज्यपाल के सामने रखे जायँगे और तबतक लागू नहीं होंगे, जबतक वह उनपर अपनी अनुमति नहीं दे दे।

किसी स्वायत्तशासी जिले से सम्बन्धित प्राक्कलित प्राप्तियाँ और व्यय जो आसाम-

राज्य की संचित निधि में जमा होनी या उससे की जानी है, पहले जिला-परिषद् के सामने विचार के लिए रखी जायँगी। ऐसे विचार के बाद राज्य के विधान-मंडल के सामने रखे जानेवाले वार्षिक विवरण में इसे अलग दिखाया जायेगा।

जिला-परिषद् या प्रादेशिक-परिषद् द्वारा ऊपर दिये हुए उपवन्ध के अनुसार बनाई हुई सब विधियाँ, नियम और विनिमय राज्य के राजकीय सूचना-पत्र (Official gazette) में तुरत प्रकाशित किये जायँगे और इस तरह से प्रकाशित होने के बाद वे विधि की तरह लागू होंगे।

संसद और राज्य के विधानमंडल के अधिनियमों का लागू होना

राज्य के विधानमण्डल का कोई अधिनियम जो ऐसे विषयों के बारे में है जिनके बारे में जिला-परिषद् या प्रादेशिक परिषद् को विधि बनाने की शक्ति दी गई है, किसी स्वायत्तशासी जिले या स्वायत्तशासी प्रदेश में अपने-आप नहीं लागू होगा। यह लागू तभी होगा जब ऐसे जिले की, अथवा ऐसे प्रदेश पर क्षेत्राधिकार रखने वाली, जिला-परिषद् इस प्रकार निर्देश दे। राज्य के विधानमंडल के ऐसे किसी अधिनियम के सम्बन्ध में भी यही बात लागू है जिसके अनुसार अनासुत सौष-धिक पान (Non-distilled alcoholic liquor) के उपभोग पर रोक लगाई जाती हो। ऐसे किसी अधिनियम को अपने क्षेत्र के भीतर लागू करते समय जिला-परिषद् यह भी निर्देश दे सकेगी कि ऐसे जिले या प्रदेश या उसके किसी भाग पर लागू होने में यह अधिनियम ऐसे अपवादों या परिवर्तनों के साथ लागू होगा जैसे कि वह उचित समझे। इस तरह के अधिनियमों के अति-रिक्त संसद के और राज्य के विधानमंडल के और सभी अधिनियम किसी स्वायत्तशासी जिले या स्वायत्तशासी प्रदेश में अपने-आप लागू हो सकेंगे। लेकिन राज्यपाल यह निर्देश दे सकेगा कि संसद का अथवा राज्य के विधानमंडल का कोई अधिनियम किसी स्वायत्तशासी जिले या स्वायत्तशासी प्रदेश में लागू नहीं होगा। राज्यपाल यह भी निर्देश दे सकेगा कि यह अधिनियम ऐसे जिले या प्रदेश या उसके किसी भाग में ऐसे अपवादों या परिवर्तनों के बाद लागू होगा जैसे कि वह उचित समझे।

स्वायत्तशासी जिलों और प्रदेशों के लिए आयोग की नियुक्ति

राज्यपाल राज्य में के स्वायत्तशासी जिलों और स्वायत्तशासी प्रदेशों के शासन से सम्बन्धित किसी विषय पर जाँच करने और रिपोर्ट देने के लिए किसी समय भी आयोग (Commission) नियुक्त कर सकेगा। राज्यपाल को जब नया स्वायत्तशासी जिला बनाना हो, किसी स्वायत्तशासी जिले का क्षेत्र बढ़ाना या कम करना हो अथवा दो या अधिक स्वायत्तशासी जिलों या उनके

भागों को मिलाकर एक स्वायत्तशासी जिला बनाना हो, तब वह इस तरह से नियुक्त किए जानेवाले आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही अपना निर्णय करेगा। समय-समय पर राज्य में के स्वायत्तशासी जिलों और प्रदेशों के साधारणतया प्रशासन की जाँच करने और रिपोर्ट देने के लिए भी राज्यपाल आयोग नियुक्त कर सकेगा और ऐसे आयोग द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया भी निश्चित कर सकेगा। ऐसा आयोग विशेषतया इन जिलों और प्रदेशों में शिक्षा और चिकित्सा की सुविधाओं और आवागमन के उपबन्धों की; ऐसे क्षेत्रों के लिए किसी नये या विशेष विधान (Legislation) की आवश्यकता की; तथा जिला और प्रादेशिक परिषदों द्वारा बनाई गई विधियों, नियमों और विनियमों के प्रशासन की जाँच करेगा और इन बातों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देगा। प्रत्येक ऐसे आयोग की रिपोर्ट सम्बन्धित मंत्री द्वारा राज्य के विधान-मंडल के सामने रखी जायगी। इसके साथ-ही-साथ इस विषय पर राज्यपाल की सिफारिशों और आसाम-सरकार द्वारा की जानेवाली कार्यवाही का विवरण भी प्रस्तुत किया जायेगा। शासन के कार्य को अपने मंत्रियों में बाँटते समय आसाम का राज्यपाल उनमें से एक पर विशेषतया राज्य के स्वायत्तशासी जिलों और प्रदेशों के कल्याण का भार दे सकेगा।

जिला या प्रादेशिक परिषदों पर राज्यपाल का नियंत्रण

यदि कभी राज्यपाल यह समझे कि किसी जिला या प्रादेशिक परिषद् के किसी काम या प्रस्ताव से भारत के क्षेम (Safety) के खतरे में पड़ने की सम्भावना है, तो वह ऐसे काम या प्रस्ताव को रद्द या निलम्बित (Suspend) कर सकेगा। इसके अलावे ऐसे काम को किये जाने से अथवा ऐसे प्रस्ताव के लागू होने से रोकने के लिए वह जो भी आवश्यक समझे, कर सकेगा। ऐसी अवस्था में राज्यपाल को ऐसी परिषद् को निलम्बित कर देने और परिषद् में निहित शक्तियों में से सब या किन्हीं को अपने हाथ में ले लेने की भी शक्ति होगी। अगर कभी राज्यपाल ऊपर दी हुई शक्तियों का प्रयोग करे, तो इस सम्बन्ध में उसके द्वारा दिये गये आदेश को, उसके कारणों सहित, राज्य के विधानमण्डल के सामने यथासम्भव शीघ्र रखा जायगा। अगर विधानमण्डल इस आदेश को रद्द नहीं कर दे, तो यह जिस तारीख को दिया गया था उससे बारह मास की अवधि तक लागू रहेगा। परन्तु यदि राज्य का विधानमण्डल ऐसे आदेश के चालू रखने के अनुमोदन का प्रस्ताव पास कर दे, तो यह आदेश और भी बारह मास तक लागू रहेगा। इस तरह से विधानमण्डल जितनी बार प्रस्ताव पास करे, उतनी बार इस आदेश के लागू रहने की अवधि और बारह मास के लिए बढ़ जायेगी। हाँ, यदि

राज्यपाल चाहे तो वह इस अवधि के पूरे होने के पहले ही अपने आदेश को रद्द भी कर सकता है और तब उस आदेश का लागू होना खत्म हो जायेगा।

ऊपर दी गई व्यवस्था के अनुसार नियुक्त किये जानेवाले आयोग की सिपारिश पर राज्यपाल किसी प्रादेशिक या जिला-परिषद् का विघटन कर सकेगा। इसके बाद वह परिषद् के पुनर्गठन के लिए तुरत ही नया निर्वाचन करने के लिए निर्देश दे सकेगा। अगर राज्यपाल चाहे तो ऐसा न कर वह राज्य के विधानमंडल के पूर्व-अनुमोदन से ऐसी परिषद् के अधिकार के भीतर के क्षेत्र का प्रशासन अपने हाथ में ले सकेगा। या उस आयोग अथवा दूसरी किसी संस्था या निकाय (body) के हाथ में सौंप दे सकेगा। ऐसा वह अधिक-से-अधिक बारह महीने के लिए ही कर सकेगा। साथ ही साथ यथास्थिति जिला या प्रादेशिक परिषद् को राज्य के विधानमंडल के सामने अपने विचारों को रखने का अवसर दिए बिना इस तरह की कोई कार्यवाही नहीं की जायेगी।

भाग (ख) में के क्षेत्रों का शासन

ऊपर आसाम-राज्य के भीतर के आदिमजाति-क्षेत्रों का विवरण दे दिया गया है। उसके अनुसार इनके दो भाग हैं—भाग (क) और भाग (ख)। अभी तक जितने उपबन्ध दिए गए हैं, वे सभी भाग (क) के भीतर के क्षेत्रों पर लागू होंगे। लेकिन राष्ट्रपति के पूर्व अनुमोदन से, राज्यपाल ऊपर दिए गए सभी अथवा किन्हीं उपबन्धों को भाग (ख) में के किसी आदिमजाति-क्षेत्र पर अथवा ऐसे क्षेत्र के किसी भाग पर लागू कर सकेगा। ऐसा होने पर इस क्षेत्र या इसके भाग का शासन इन्हीं उपबन्धों के अनुसार होगा। जबतक ऐसा नहीं किया जाता तबतक यथास्थिति ऐसे क्षेत्र अथवा उसके भाग का प्रशासन राष्ट्रपति आसाम के राज्यपाल के द्वारा करेगा और इसके सम्बन्ध में वही उपबन्ध लागू होंगे जो प्रथम अनुसूची के भाग (घ) में के राज्यक्षेत्र पर लागू होते हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति के प्रतिनिधि (अभिकर्ता-Agent) के रूप में काम करते हुए राज्यपाल अपने स्वविवेक के अनुसार चलेगा। राष्ट्रपति के पूर्व-अनुमोदन से राज्यपाल भाग (ख) में के किसी क्षेत्र को अथवा उसके किसी भाग को आदिमजाति-क्षेत्र के बाहर भी कर सकेगा।

अन्तर्कालीन उपबन्ध
(Transitional Provisions)

इस संविधान के शुरू होने के बाद जल्द से जल्द राज्यपाल राज्य में के प्रत्येक स्वायत्तशासी जिले के लिए जिला-परिषद् के गठन के लिए उचित कार्य-

वाही करेगा। जबतक किसी स्वायत्तशासी जिले के लिए इस प्रकार जिला-परिषद् गठित नहीं हो तब तक ऐसे जिले का शासन राज्यपाल में निहित होगा और उसी की देखरेख में चलेगा। ऐसे जिले के भीतर के क्षेत्रों के प्रशासन के लिए ऊपर दिए गए उपबन्धों की जगह पर निम्नलिखित उपबन्ध लागू होंगे:—

संसद के अथवा उस राज्य के विधान-मंडल का कोई अधिनियम ऐसे क्षेत्र में तब तक लागू नहीं होगा जबतक कि राज्यपाल ऐसा होने का निर्देश नहीं दे। किसी अधिनियम के बारे में निर्देश देते हुए राज्यपाल वह निर्देश भी दे सकेगा कि वह अधिनियम किसी क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे अपवादों और परिवर्तनों के साथ लागू होगा जिनको वह उचित समझे। राज्यपाल ऐसे किसी क्षेत्र की शान्ति और सुशासन के लिए विनियम बना सकेगा। ऐसे विनियम इस क्षेत्र में तत्समय लागू होनेवाले संसद के, अथवा उस राज्य के विधानमंडल के, किसी अधिनियम को रद्द या संशोधित कर सकेंगे। इस प्रकार बनाए गए सभी विनियम तुरत राष्ट्रपति के सामने रखे जायेंगे और जबतक वह उनपर अनुमति नहीं दे दे, तबतक लागू नहीं होंगे।

इन उपबन्धों का संशोधन

ऊपर दिए हुए सभी उपबन्ध संविधान की षष्ठ अनुसूची में दिए गए हैं। संविधान की पञ्चम अनुसूची के संशोधन की प्रक्रिया ऊपर उचित स्थान पर दी जा चुकी है। षष्ठ अनुसूची के संशोधन के सम्बन्ध में भी वही नियम लागू होंगे। अर्थात् इनका संशोधन संसद जब चाहे तब विधि द्वारा कर सकेगी। इसके लिए संविधान में संशोधन के लिए दी गई प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

अध्याय २१

संघ और राज्यों के बीच सम्बन्ध

संघीय संविधान की एक मुख्य विशेषता संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन है। यह विभाजन संविधान में ही कर दिया जाता है। साधारणतः यही देखा जाता है कि जो बातें राष्ट्रीय हित या महत्त्व की हैं उनके सम्बन्ध में सभी शक्तियाँ संघ को दी जाती हैं, और जिनका स्थानीय महत्त्व है, उनको राज्यों की सरकारों पर छोड़ दिया जाता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी संघीय संविधानों में शक्तियों का बँटवारा एक ही तरह का होता है। कहीं पर संघ को अधिक शक्तिशाली बनाने की कोशिश की जाती है, तो कहीं पर राज्यों को। भारत को छोड़कर जो दूसरे संघीय देश हैं उनमें दो में से कोई एक तरीका अपनाया गया है। कहीं पर संघ की शक्तियों का उल्लेख कर दिया गया है और बाकी सभी शक्तियों के बारे में इतना ही कह दिया गया है कि वे राज्यों में निहित हैं। कहीं पर राज्यों की शक्तियों का ही उल्लेख है और बाकी शक्तियाँ संघ को दे दी गई हैं। इन बाकी शक्तियों को अवशिष्ट शक्तियों (Residuary Powers) के नाम से पुकारा जाता है। जिसे अधिक शक्तिशाली बनाने का उद्देश्य रहता है, उसे अवशिष्ट शक्तियाँ दे दी जाती हैं, और जिसकी शक्ति को सीमित करना होता है, उसकी शक्तियों का उल्लेख कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रेलिया और कनाडा का जिक्र किया जा सकता है। संयुक्तराष्ट्र और आस्ट्रेलिया के संविधानों में संघ-सरकार की शक्तियों का उल्लेख किया गया है और अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों में निहित कर दी गई हैं। इसके विपरीत कनाडा के संविधान में राज्यों की शक्तियों का उल्लेख है और अवशिष्ट शक्तियाँ संघ में निहित हैं। स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और आस्ट्रेलिया में संविधाननिर्माताओं का उद्देश्य संघ-सरकार की शक्ति को सीमित करना था तो कनाडा में राज्यों की शक्ति को। कनाडा में तो संघ-सरकार को इतना शक्तिशाली बनाया गया है कि वहाँ के

संघ के भीतर के राज्यों को राज्य नहीं, बल्कि प्रान्त के नाम से पुकारा जाता है। लेकिन यह समझना गलत होगा कि दूसरे संघीय देशों की केन्द्रीय सरकारें कमजोर हैं। आधुनिक काल में हर देश में संघ-सरकार को ही अधिक शक्तिशाली बनाने की प्रवृत्ति देखने में आती है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और आस्ट्रेलिया भी इस प्रवृत्ति से बिलकुल बचे नहीं हैं और यहाँ संविधान में संशोधनों और न्यायालयों के फैसलों के द्वारा संघ-सरकार पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली हो गई है और दिन-ब-दिन और भी शक्तिशाली होती जा रही है। अब यह देखना उचित होगा कि भारतीय संविधान में संघ और राज्यों के बीच के सम्बन्ध के बारे में कैसी व्यवस्था की गई है और उनके बीच शक्तियों का बटवारा किस प्रकार किया गया है। इसके बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे कि भारतीय संविधान में कौन अधिक शक्तिशाली है— संघ अथवा राज्य। इस पर भी तभी विचार किया जा सकेगा कि भारतीय संविधान में दी हुई व्यवस्था सर्वथा उचित है या इसमें कुछ संशोधन की आवश्यकता है। यहाँ पर सिर्फ विधायी और प्रशासनसम्बन्ध (Legislative and Administrative Relations) पर विचार किया जायगा। वित्तीय सम्बन्ध (Financial Relations) पर दूसरे अध्याय में विचार होगा।

(क) विधायी सम्बन्ध

विधायिनी शक्तियों का वितरण

भारतीय संविधान में संघ और राज्यों के बीच विधायिनी शक्तियों के वितरण के लिए तीन सूचियाँ बनाई गई हैं (१) संघ-सूची (२) राज्य-सूची (३) समवर्ती (Concurrent) सूची। ये सूचियाँ संविधान की सप्तम अनुसूची में दी हुई हैं। संघ-सूची में जिन विषयों का उल्लेख है उनके बारे में संसद को विधि बनाने की अनन्य शक्ति (Exclusive power) है। इसी तरह से जिन विषयों का उल्लेख राज्य सूची में है उनके बारे में प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) के किसी राज्य के विधान-मंडल को विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों के बारे में संसद को और प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में के किसी

राज्य के विधानमंडल, दोनों को विधि बनाने की शक्ति है। अगर ऐसे किसी विषय पर संसद और राज्य का विधानमंडल दोनों विधि बनावें और उनमें कोई विरोध हो तो संसद-निर्मित विधि ही लागू होगी और राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधि-विरोध की मात्रा तक शून्य होगी। लेकिन अगर राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्मित इस तरह की किसी विधि को राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित किया गया हो और उसपर उसकी अनुमति मिल चुकी हो, तब इसमें और संसद-निर्मित विधि में असंगति होते हुए भी उस राज्य में यह लागू हो सकेगी। परन्तु इसके बाद भी संसद किसी समय उसी विषय के सम्बन्ध में विधि बना सकेगी। यह विधि राज्य के विधानमंडल द्वारा इस प्रकार निर्मित विधि को परिवर्धित, संशोधित, परिवर्तित या रद्द भी कर सकेगी। यह विभाजन सिर्फ प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) में के राज्यों पर ही लागू है। संसद को, भारत-राज्यक्षेत्र के किसी भी भाग के लिए, जो भाग (क) या भाग (ख) के भीतर नहीं हैं, किसी भी विषय के बारे में विधि बनाने की शक्ति है; चाहे उस विषय का राज्य-सूची में ही क्यों न उल्लेख किया गया हो। संसद-निर्मित विधियों के, अथवा किसी वर्तमान विधि के विषय के बारे में हैं, अधिक अच्छे प्रशासन के उद्देश्य से किन्हीं अपर (Edditional) न्यायालयों की स्थापना के लिए विधि बना सकती है। संसद को ऐसे किसी विषय के बारे में, जिसका उल्लेख समवर्ती सूची अथवा राज्य-सूची में नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। इस तरह भारतीय संविधान के अनुसार अवशिष्ट शक्तियाँ संघ में निहित हैं।

(१) संघ-सूची

तीनों सूचियों में उल्लिखित विषयों का पूरा विवरण पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट में दे दिया गया है। यहाँ संक्षेप में उनमें से प्रत्येक सूची में के मुख्य विषयों का जिक्र कर दिया जाता है। संघ-सूची में सब मिलाकर ९७ विषय हैं। इनमें से मुख्य ये हैं—रक्षा, स्थलसेना, नौसेना और वायुसेना, अस्त्र, शस्त्र और गोली-बारूद, युद्ध और शान्ति, आणविक शक्ति (Atomic energy), विदेशीय कार्य (Foreign Affairs), राजन्यायिक, वाणिज्य,

दूतिक और व्यापारिक प्रतिनिधित्व (Diplomatic, Consular and trade representation); अंतर्राष्ट्रीय संधि-पत्र और करार, संयुक्त राष्ट्र-संघ, केन्द्रीय गुप्तचरविभाग का दफ्तर, रेलविभाग, राष्ट्रीय राज्यपथ, (National high ways), जहाज, आलोकगृह (Light House), प्रधान बन्दरगाह, वायुमार्ग, नागरिकता, डाक और तार, वायरलेस और रेडियो, सिक्का और विदेशीय विनिमय, रिजर्व बैंक आफ इंडिया, विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य, राज्यों का पारस्परिक व्यापार, महाजनी, बीमा, श्रेष्ठिचत्वर (Stock Exchange) पेटेंट, आविष्कार तथा डिजाइन, वजन तथा नाप के प्रामाणिक मानदंड, तेल के कुएँ, खान, नमक, अफीम, सिनेमा के फिल्मों का प्रदर्शन, प्राचीन स्मारक और अभिलेख, सर्वे आफ इंडिया इत्यादि संस्थायें, संघ की लोक-सेवायें, आँकड़ा-संग्रह इत्यादि ।

(२) राज्य-सूची

राज्य-सूची में सब मिलाकर ६६ विषय हैं। इनमें मुख्य हैं—सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, न्याय का प्रशासन, जेल, स्थानीय शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़कें, राज्य के भीतर व्यापार, खेती, सिंचाई, भूमि, जंगल, मछली, उद्योग, बाजार तथा मेले, मनोरंजन, गैस और गैस का धंधा इत्यादि ।

(३) समवर्ती-सूची

समवर्ती सूची में सब मिलाकर ४७ विषय हैं। इनमें मुख्य हैं—दंड-विधि, दंडविधि-संहिता, विवाह और विवाह-विच्छेद, व्यवहारविधि-संहिता, आर्थिक और सामाजिक योजना, रचना, वाणिज्य-सम्बन्धी तथा उद्योग-धंधा-सम्बन्धी एकाधिकार, मजदूर-सभायें, सामाजिक सुरक्षा, श्रम-कल्याण, पुनर्वास, जन्म-मृत्यु-सम्बन्धी आँकडे, दातव्य संस्थायें, कारखाने, बिजली, समाचारपत्र, पुस्तकें, छापेखाने इत्यादि ।

राज्य-सूची में के विषय के बारे में विधि बनाने की संसद की शक्ति

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, राज्य-सूची में के विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति सिर्फ राज्य के विधान-मंडल को ही है। साधारणतः

इन विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाना संसद की शक्ति के बाहर है। लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में संसद को राज्य-सूची में के विषयों के बारे में भी विधि बनाने की शक्ति दी गई है। तीन तरह की अवस्थाओं में ऐसा हो सकता है। यदि राज्य-परिषद् उपस्थित तथा मत देनेवाले सदस्यों की कम-से-कम दो-तिहाई संख्या द्वारा समर्थित प्रस्ताव द्वारा घोषित कर दे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या इष्टकर (Expedient) है कि संसद राज्य-सूची में दिए हुए और उस प्रस्ताव में उल्लिखित किसी विषय के बारे में विधि बनाये, तो जबतक यह प्रस्ताव लागू रहे तबतक संसद भारत के पूरे राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी। इस तरह का प्रस्ताव साधारणतः एक साल से अधिक समय के लिए नहीं लागू रहेगा। परन्तु यदि इस प्रस्ताव के लागू रखे जाने का अनुमोदन करते हुए ऊपर दिए हुए तरीके के अनुसार कोई प्रस्ताव पास हो जाय, तो ऐसा प्रस्ताव और एक साल तक लागू रह सकेगा। इस तरह के अनुमोदन का प्रस्ताव जितनी बार पास हो जाय, उतनी बार ऐसे प्रस्ताव के लागू रहने की अवधि एक साल के लिए और बढ़ जा सकती है। ऐसे प्रस्ताव के लागू होने की अवधि की समाप्ति के ६ महीने बाद इसके अधीन संसद द्वारा निर्मित विधि का प्रभाव खतम हो जायगा।

फिर, जबतक आपात की उद्घोषणा लागू रहे, तबतक संसद भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र के अथवा उसके किसी भाग के लिए राज्यसूची में के विषयों में से किसी के बारे में भी विधि बना सकेगी। इस तरह की विधि का प्रभाव आपात की उद्घोषणा की समाप्ति के ६ महीने बाद खतम हो जायगा।

ऊपर जिन दो अवस्थाओं में संसद को राज्यसूची में के विषय के बारे में विधि बनाने की शक्ति दी गई है इसका यह अर्थ नहीं है कि उन अवस्थाओं में राज्य के विधानमंडल को इन विषयों के बारे में विधि बनाने की शक्ति नहीं होगी। लेकिन यदि किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि का कोई उपबन्ध, संसद द्वारा निर्मित विधि के किसी उपबन्ध के विरुद्ध हो तो संसद द्वारा निर्मित विधि ही लागू होगी। किन्तु ऐसा तभी तक होगा जब-तक कि संसद द्वारा निर्मित विधि प्रभावी रहे।

ऊपर दी हुई दो अवस्थाओं के अतिरिक्त एक तीसरी अवस्था में भी संसद को राज्य-सूची में के विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति होगी। यदि किन्हीं दो अथवा अधिक राज्यों के विधानमण्डलों को यह वांछनीय प्रतीत हो कि उन विषयों में से जिनके बारे में साधारणतः संसद को उन राज्यों के लिए विधि बनाने की शक्ति नहीं है, किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों में संसद विधि द्वारा करे तथा यदि इन राज्यों के विधानमण्डलों के सब सदन इसके लिए प्रस्ताव पास करें, तो संसद उस विषय का तदनुकूल विनियमन करने के लिए अधिनियम पास कर सकेगी। इस तरह पास किया गया अधिनियम इन सभी राज्यों में लागू होगा। इसके अलावे यदि किसी दूसरे राज्य का विधानमण्डल प्रस्ताव द्वारा इस अधिनियम को अङ्गीकार कर ले, तो यह उस राज्य में भी लागू होगा। संसद द्वारा इस प्रकार पास किया हुआ कोई अधिनियम, इसी रीति से पास किये हुए या अंगीकृत संसद के अधिनियम से संशोधित या रद्द किया जा सकेगा, लेकिन यह अधिनियम, किसी राज्य के सम्बन्ध में, जहाँ कि वह लागू होता है, उस राज्य के विधानमण्डल के अधिनियम से संशोधित या रद्द नहीं किया जा सकेगा।

इसके अलावे किसी दूसरे देश या देशों के साथ की हुई किसी सन्धि, या करार अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन इत्यादि में किये गये कसी नर्णय के परिपालन के लिए, संसद भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी।

सिफारिश और पूर्वमञ्जूरी को केवल प्रक्रिया का विषय माना जायगा और इनको कोई बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जायगा। यदि संसद के, अथवा प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में के किसी राज्य के विधानमण्डल के किसी अधिनियम पर, जहाँ राज्यपाल की सिफारिश की जरूरत थी वहाँ राज्यपाल या राष्ट्रपति ने और जहाँ राष्ट्रपति की सिफारिश या पूर्वमंजूरी की जरूरत थी वहाँ राष्ट्रपति ने, अपनी अनुमति दे दी हो, तो ऐसा अधिनियम या ऐसे अधिनियम का कोई उपबन्ध केवल इस कारण से अमान्य नहीं होगा कि संविधान द्वारा अपेक्षित कोई सिफारिश नहीं की गई या पूर्वमंजूरी नहीं दी गई थी।

(ख) प्रशासन-सम्बन्ध

विधायिनी शक्तियों के बँटवारे के साथ-साथ संघ और राज्य की सरकारों के बीच के प्रशासन-सम्बन्ध का भी बहुत महत्त्व होता है। संघ की सरकार के ऊपर कई विषयों के सम्बन्ध में समूचे देश के प्रशासन की जिम्मेवारी रहती है। ऐसी अवस्था में संघ और राज्य की सरकारों में सम्पर्क के कई अवसर आते हैं। इसलिए दोनों के बीच के प्रशासन-सम्बन्ध पर बहुत हद तक संघीय शासन की सफलता निर्भर करती है। इसके अलावे प्रशासन के क्षेत्र में कई ऐसे विषय हैं जिनका सम्बन्ध एक ही साथ कई राज्यों की सरकारों से होता है। ऐसी हालत में इन राज्यों के बीच समन्वय (Co-ordination) की व्यवस्था भी आवश्यक है। बहुत-सी नदियाँ इत्यादि कई राज्यों से होकर गुजरती हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में भी राज्यों के बीच में बराबर झगड़े नहीं होते रहे और अगर कभी हों, तो वे तुरत सुलझा दिए जायँ इसकी व्यवस्था भी की जानी चाहिए। इसी पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान के अनुसार संघ और राज्यों के प्रशासन-सम्बन्ध के विषय में विचार किया जायगा।

प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस तरह प्रयोग किया जायगा जिससे संसद द्वारा बनाई गई विधियों का, तथा किन्हीं वर्तमान विधियों का, जो उस राज्य में लागू हैं, पालन चलता रहे और जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन या प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े। संघ-सरकार किसी राज्य को ऐसा आदेश दे सकेगी जो उसे इन प्रयोजनों के लिए आवश्यक जान पड़े। संघ-सरकार राज्य की सरकार को किसी ऐसे आवागमन के साधनों के निर्माण करने और बनाये रखने के लिए भी आदेश दे सकेगी जिनका राष्ट्रीय या सैनिक महत्त्व का होना घोषित कर दिया गया हो। संघ-सरकार किसी राज्य में की रेलों के लिए किए जाने वाले उपायों के बारे में भी उस राज्य को आदेश या निर्देश दे सकेगी। यदि इस तरह के आदेश के कारण किसी राज्य की सरकार को आवागमन के साधनों अथवा रेलों की रक्षा के सम्बन्ध में अपने साधारण खर्च से अधिक खर्च करना पड़े तो इस अतिरिक्त खर्च के लिए संघ-सरकार उस राज्य को ऐसी राशि देगी जो दोनों के बीच में तय पा सके। अगर दोनों के बीच में इस विषय पर कोई समझौता

नहीं हो सके तो यह राशि वही होगी जो भारत के मुख्य न्यायाधिपति निर्धारित करें।

राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार को या उसके पदाधिकारियों को ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में, जो संघ की कार्यपालिका शक्ति के भीतर है, कोई काम किसी शर्त के साथ या विना किसी शर्त के सौंप दे सकेगा। लेकिन ऐसा करते समय वह उस राज्य की सरकार की सम्मति अवश्य ले लेगा। इसी तरह किसी ऐसे विषय से, जिसके बारे में राज्य के विधानमंडल को विधि बनाने की शक्ति नहीं है, सम्बन्धित होने पर भी, संसद द्वारा बनाई गई विधि, जो किसी राज्य में लागू है, उस राज्य अथवा उसके पदाधिकारियों को शक्ति दे सकेगी और उनपर कर्तव्य का भार दे सकेगी। जब इस तरह से किसी राज्य अथवा उसके पदाधिकारियों को शक्तियाँ दी जायँ अथवा कर्तव्य आरोपित किए जायँ, तब उन शक्तियों और कर्तव्यों के प्रयोग के बारे में राज्य द्वारा प्रशासन में किए गए अतिरिक्त खर्च के लिए संघ-सरकार उस राज्य को ऐसी राशि देगी, जो दोनो में तय पाए। अगर दोनों आपस में इस का निर्णय न कर सके, तब संघ-सरकार ऐसी राशि देगी जैसी भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करे।

जबतक कि संसद विधि द्वारा दूसरी व्यवस्था नहीं करे, तबतक प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में का कोई राज्य, जो कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले सशस्त्र बलों (Armed forces) को रखता था, उक्त बलों को ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् भी बनाये रख सकेगा। लेकिन ऐसा करते समय वह राज्य ऐसे साधारण या विशेष आदेशों के अधीन रहेगा जैसे कि राष्ट्रपति समय-समय पर इस सम्बन्ध में निकाले। इसके अलावे इस तरह के सभी सशस्त्र बल संघ के सशस्त्र बलों के भाग होंगे।

भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र, संघ की और प्रत्येक राज्य की, सार्वजनिक क्रियाओं, अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास और पूरी मान्यता दी जायेगी। इस तरह की क्रियाओं, अभिलेखों और कार्यवाहियों के साबित किए जाने की रीति और शर्तें तथा उनके प्रभाव का निर्धारण संसद-निर्मित विधि द्वारा उपबन्धित रीति के अनुसार होगा। भारत-राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में

के व्यवहार-न्यायालयों (civil courts) द्वारा दिए गए अन्तिम निर्णय या आदेश उस राज्यक्षेत्र के अन्दर कहीं भी विधि-अनुसार निष्पादन-योग्य (Capable of execution) होंगे।

संसद-विधि द्वारा किसी अन्तर्राज्यिक नदी या नदी-दून (River valley) के जलों के प्रयोग, वितरण या नियंत्रण के बारे में किसी विवाद या फरियाद के न्याय-निर्णयन (Adjudication) के लिए व्यवस्था कर सकेगी। संसद को विधि द्वारा यह व्यवस्था करने की शक्ति होगी कि इस तरह के किसी विवाद या फरियाद के बारे में न तो उच्चतम न्यायालय और न कोई दूसरा न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा।

यदि किसी समय राष्ट्रपति यह समझे कि अन्तर्राज्य-परिषद् की स्थापना से लोक-हितों की सिद्धि होगी, तो वह ऐसी परिषद् की स्थापना कर सकेगा। साथ-ही-साथ वह उस परिषद् के द्वारा किये जानेवाले कर्तव्यों के स्वरूप को और उसके संगठन और प्रक्रिया को निश्चित कर सकेगा। ऐसी परिषद् पर मुख्यत: तीन तरह के कामों का भार होगा। यह राज्यों के बीच जो विवाद उठ खड़े हुए हों, उनकी जाँच करेगी और उनपर परामर्श देगी, कुछ या सब राज्यों के, अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के, पारस्परिक हित से सम्बन्धित विषयों की जाँच करेगी और उसपर विचार करेगी और ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में अपनी सिपारिश रखेगी तथा विशेषतः उस विषय के बारे में नीति और कार्यवाही के अधिक अच्छे समन्वय के लिए सिपारिश करेगी।

विशेष परिस्थिति में भारत के बाहर के राज्य-क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी संघ के क्षेत्राधिकार के प्रयोग की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार भारत-सरकार किसी ऐसे राज्य-क्षेत्र की सरकार से, जो भारत-राज्य-क्षेत्र का भाग नहीं है, करार करके उसमें निहित किसी कार्यपालक, विधायी या न्यायिक कृत्यों को ग्रहण कर सकेगी। लेकिन इस तरह का प्रत्येक करार विदेशी क्षेत्राधिकार के प्रयोग से सम्बन्धित किसी ऐसी विधि के अधीन रहेगा और उससे शासित होगा जो तत्समय लागू हो।

यदि कभी इस संविधान के उपबन्धों में से किसी के अधीन संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में दिये गए किन्हीं आदेशों को लागू करने में

कोई राज्य असफल रहे, तो राष्ट्रपति के लिए यह मानना विधि-संगत होगा कि ऐसी अवस्था पैदा हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता[1]।

संघ और राज्यों के सम्बन्ध पर विचार

भारतीय संविधान में संघ और राज्यों के बीच के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है उसे ऊपर दे दिया गया है। अब इसके स्वरूप पर विचार किया जा सकता है। जो कुछ ऊपर दिया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के अनुसार राज्यों की अपेक्षा संघ को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। यह सभी दृष्टियों से उपयुक्त है। इससे अलग-अलग राज्यगत भावनाओं के विकास की जगह पर एक भारतीयता की भावना के विकास, और सामाजिक और आर्थिक निर्माण की योजनाओं की सफलता, दोनों में मदद मिलेगी। आधुनिक जगत् के दूसरे भागों में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि यह व्यवस्था सर्वथा दोषमुक्त है। संघ को शक्तिशाली बनाने की उपादेयता सभी स्वीकार करते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि राज्यों को बिलकुल शक्तिहीन कर दिया जाय। जब यही करना रहे, तो फिर संघीय संविधान ही क्यों बनाया जाय। तब तो एकात्मक संविधान ही उपयुक्त होगा। संघीय संविधान का निर्माण तो यही सोचकर किया जाता है कि देश के बहुत बड़े होने के कारण अलग-अलग राज्यों के भीतर की समस्याएँ वहाँ की स्थानीय सरकारें ही अधिक अच्छी तरह समझ सकती हैं। इसके अलावे संघ की सरकार को बहुत शक्तिशाली और राज्य की सरकारों को एकदम शक्तिहीन कर देने से रोजमर्रे के शासन की बहुत-सी बातों पर जनता के प्रतिनिधियों का नियंत्रण नहीं रहने पाता और सरकारी पदाधिकारियों का आवश्यकता से अधिक महत्त्व हो जाता है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर भारतीय संविधान में दिए हुए उपबन्ध कुछ दोषपूर्ण जान पड़ते हैं। यहाँ पर संघ को आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली बना दिया गया है। विधायिनी क्षेत्र में विषयों का जो बँटवारा किया गया है वह सन्तोषपूर्ण नहीं

१. व्यवहार में इसका क्या परिणाम होगा, इसके लिए आगे 'आपात-उपबन्ध' शीर्षक अध्याय देखिए।

है। बहुत-से ऐसे विषय हैं जिन्हें संघ-सूची से हटाकर राज्य-सूची में कर देना अधिक अच्छा होगा। इसी तरह समवर्ती सूची बहुत बड़ी हो गई है। यह तो अवश्य होना चाहिए कि जो विषय अलग-अलग राज्यों की भीतरी अवस्था से सम्बन्धित हैं, लेकिन फिर भी जिनका सभी राज्यों में एक तरह का होना वांछनीय है उन्हें समवर्ती सूची में रख दिया जाय। लेकिन ऐसे विषयों की संख्या जहाँ तक सम्भव हो, कम रहे; यही अधिक अच्छा होगा। नहीं तो, अधिकतर बातों में राज्य की सरकार को संसद द्वारा निर्मित विधियों को ही लागू करना पड़ेगा और राज्य के विधानमंडल को उस राज्य की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखकर विधि बनाने का अवसर कम मिलेगा।

अवशिष्ट विषयों के सम्बन्ध में संघ को शक्ति दी गई है। यह आधुनिक प्रवृत्तियों के अनुकूल है और साधारणतः वांछनीय ही जान पड़ता है। लेकिन कुछ गम्भीरता से विचार करने पर मालूम होता है कि यहाँ भी कुछ सुधार की जगह रह गई है। अवशिष्ट विषय वे हैं जिनकी ओर संविधान का निर्माण करते समय किसी का ध्यान नहीं जा सका। ऐसी अवस्था में कोई यह तो नहीं कर सकता कि इस तरह के सभी विषय राष्ट्रीय महत्त्व के ही होंगे। ऐसा भी हो सकता है कि आगे चलकर ऐसे कई विषय निकल आवें जो बिलकुल स्थानीय महत्त्व के हों, लेकिन जिनका संविधान में दी हुई तीनों सूचियों में किसी में उल्लेख नहीं है। तब राज्य की सरकारों को ऐसी बातों के सम्बन्ध में व्यवस्था करने में बहुत कठिनाई होगी। वे अधिक-से-अधिक संघ-सरकार का ध्यान उनकी ओर खींच सकती हैं। लेकिन संघ-सरकार अपने साधारण कामों के बोझ से ही दबी रहेगी, वह उनकी ओर ध्यान देगी अथवा नहीं, यह कोई नहीं कह सकता। फिर अगर संघ-सरकार ध्यान दे भी तो बिलकुल स्थानीय महत्त्व के विषयों पर राज्य के विधानमंडल का विधि बनाना ही अधिक उचित होगा, संसद का नहीं। शायद यही सोचकर कनाडा में अवशिष्ट विषयों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई है कि इनमें से जो विषय राष्ट्रीय महत्त्व के होंगे उनके सम्बन्ध में संघ की ओर से विधि बनाई जायेगी और जो स्थानीय महत्त्व के होंगे उनके सम्बन्ध में राज्य के विधानमंडल की ओर से। लेकिन इसके चलते वहाँ विवाद के बहुत अवसर आ जाते हैं और न्यायालयों को इसका फैसला करना पड़ता है कि अमुक विषय राष्ट्रीय महत्त्व के हैं अथवा स्थानीय महत्त्व के।

इसलिए भारतीय संविधान में इस तरह का उपबन्ध करना वांछनीय नहीं होगा। लेकिन साथ-ही-साथ अभी ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह भी स्पष्ट है कि अभी जो व्यवस्था है, वह भी सन्तोषजनक नहीं है। इसलिए उचित यही जान पड़ता है कि अवशिष्ट विषयों को समवर्ती सूची में रख दिया जाय[1]। इसका परिणाम यह होगा कि जब कोई अवशिष्ट विषय बिलकुल स्थानीय महत्त्व का होगा, तब राज्य के विधानमंडल की ओर से उस विषय के सम्बन्ध में विधि बनाई जा सकेगी। साथ-ही-साथ अगर कोई अवशिष्ट विषय राष्ट्रीय महत्त्व का होगा या ऐसा होगा जिसके सम्बन्ध में सभी राज्यों में एक समान उपबन्ध रहना वांछनीय होगा, तो संसद भी इसके बारे में विधि बना सकेगी। ऐसा करने से कनाडा की तरह संघ और राज्य के क्षेत्राधिकार के निर्णय के लिए बार-बार न्यायालयों के सम्मुख जाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

कुछ विशेष परिस्थितियों में संसद को राज्य-सूची में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में भी विधि बनाने की शक्ति दी गई है। आपत्काल में, स्वयं राज्यों के विधानमंडलों की सिपारिश और राज्यपरिषद् के प्रस्ताव पर संसद इस शक्ति का प्रयोग कर सकती है। आपत्काल में ऐसी शक्ति की वांछनीयता पर आगे चलकर 'आपात्उपबन्ध' शीर्षक अध्याय में विचार किया जायेगा। स्वयं राज्यों के विधानमंडलों की सिपारिश पर संसद के लिए राज्य-सूची में के विषयों के लिए विधि बनाने की व्यवस्था को दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इससे तो लाभ ही होगा। इसके अलावे इससे राज्यों की शक्ति पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं पड़ेगा। अगर इसे प्रतिबन्ध कहा भी जाय तो यह ऐसा प्रतिबन्ध है जो स्वयं राज्यों की सिपारिश पर लागू होगा। लेकिन राज्यपरिषद् के प्रस्ताव के फलस्वरूप संसद द्वारा इस तरह की शक्ति का प्रयोग उचित नहीं जान पड़ता। विशेष अवसरों पर इस उपबन्ध का लाभ उठाकर संघ-सरकार राज्य के भीतर की बातों में भी हस्तक्षेप करने का लोभ कर सकती है। ऐसा होने पर संघ और राज्य में कटुता बढ़ेगी और शासन में दूसरे कई दोषों के पैदा होने की सम्भावना भी बढ़ेगी। इसलिए इस उपबन्ध को हटा देना ही उचित होगा।

---

१. Draft Constitution of Indian Republic (Socialist Party) पृष्ठ—५४-५५।

यह तो हुआ विधायिनी सम्बन्ध के बारे में। संघ और राज्य के बीच प्रशासन-सम्बन्ध के बारे में जो उपबन्ध हैं, वे सब तरह से उचित जान पड़ते हैं। उनके अनुसार राज्यों के भीतर संघीय विषयों के प्रशासन में कोई कठिनाई नहीं होगी। एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में पैदा होनेवाले विवाद भी सुलझाए जा सकेंगे। अन्तर्राज्यिक परिषदों की स्थापना से भी बहुत लाभ होगा। इसके जरिए राज्यों के बीच समन्वय (Co-ordination) का काम भी आसान हो जाएगा।

अध्याय ११

आर्थिक उपबन्ध

किसी भी देश के शासन में आर्थिक बातों का बहुत महत्त्व होता है। आजकल तो इनका महत्त्व और भी बढ़ गया है और दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है। संघीय संविधान में तो यह महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। कारण स्पष्ट है। यहाँ पर संघ और राज्य की सरकारों के बीच आय के साधनों का बँटवारा करना पड़ता है। संघीय शासन की सफलता इसी बँटवारे की सफलता पर बहुत-कुछ निर्भर करती है। संघ और राज्यों के बीच के सम्बन्ध का भी सबसे महत्त्वपूर्ण अंश यही है। इसके अलावे संघीय देशों में अन्तर्राज्यक व्यापार की भी व्यवस्था करनी रहती है। एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने-वाली चीजों पर कर लगाया जा सकता है या नहीं और अगर लगाया जा सकता है तो किस आधार पर—इसका उत्तर भी संविधान में मिलना चाहिए। भारतीय संविधान के सभी आर्थिक उपबन्ध एक जगह नहीं दिए गए हैं। इनमें से कुछ मौलिक अधिकारों और नीतिनिर्देशक तत्त्वों के साथ दिए गए हैं, तो कुछ संसद और राज्यों के विधानमंडलों की वित्तविषयक प्रक्रिया के साथ। उनपर इस पुस्तक में यथास्थान विचार किया जा चुका है। इनके बाद जो आर्थिक उपबन्ध बच गए हैं उन्हें संविधान के बारहवें और तेरहवें भाग में दिया गया है। यहाँ उन्हीं पर विचार किया जायगा।

(१) वित्त

करों का आरोपण, संचितनिधि और आकस्मिकता निधि

विधि के प्राधिकार (Authority of law) के विना कोई कर न तो लगाया न वसूल जायगा।

ब्रिटेन, कनाडा और आस्ट्रेलिया की तरह यहाँ भी संचित निधि की स्थापना की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार भारत-सरकार द्वारा

प्राप्त सब धनों की एक संचित निधि बनेगी जो 'भारत की संचित निधि' के नाम से ज्ञात होगी। इसी तरह राज्य की सरकार द्वारा प्राप्त सब धनों की एक संचित निधि होगी जो 'राज्य की संचित निधि' कहलायगी। भारत-सरकार अथवा राज्य की सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सब सार्वजनिक धन यथास्थिति भारत के या राज्य के लोकलेखे (Public Account) में जमा किए जायेंगे। भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन संसद या राज्य के विधान-मंडल की स्वीकृति के विना नहीं खर्च किया जायगा।

लेकिन ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब किसी कारणवश तुरत कोई खर्च करने की जरूरत पड़े और सरकार के पास संसद या विधानमंडल की स्वीकृति के लिए इन्तजार करने का समय नहीं रहे। ऐसे अवसर के लिए आकस्मिकता निधि की स्थापना की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार संसद, विधि द्वारा आकस्मिकता निधि की स्थापना कर सकेगी जिसे 'भारत की आकस्मिकता निधि' के नाम से पुकारा जायगा। इसमें समय-समय पर ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियाँ डाली जायेंगी और इसे राष्ट्रपति के हाथ में रखा जायगा। किसी अनवेक्षित (unforeseen) व्यय के आ जाने पर राष्ट्रपति इसकी पूर्ति के लिए आकस्मिकता निधि से अग्रिम धन दे सकेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि संसद इस व्यय पर विचार नहीं करेगी। इसी तरह राज्य में भी आकस्मिकता निधि रहेगी जो राज्य की 'आकस्मिकता निधि' के नाम से ज्ञात होगी और राज्यपाल या राजप्रमुख के हाथ में रहेगी जो अनवेक्षित व्यय की पूर्ति के लिए उसमें से अग्रिम धन देगा।

संघ और राज्यों में राजस्वों का वितरण

संघ और राज्यों में राजस्वों के वितरण में बहुत-कुछ अंशों में १९३५ के गवर्मेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट का अनुसरण किया गया है। कृषि-आय को छोड़कर अन्य आय पर कर, सीमा-शुल्क (Duties of customs) जिसमें निर्यात शुल्क (Export duties) भी शामिल है, तम्बाकू इत्यादि वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क (Duties of excise), निगम कर (Carporation tax), व्यक्तियों या कम्पनियों की आस्ति (Assets) में से कृषि-भूमि को छोड़कर

उसके मूलधन-मूल्य (Capital value) पर कर, कम्पनियों के मूल-धन पर कर, कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के बारे में सम्पत्ति-शुल्क (Estate duty) और उत्तराधिकार-शुल्क (Succession duty), रेल या समुद्र या वायु से ले जाये जानेवाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा-कर (Terminal taxes), रेल-भाड़े और रेल द्वारा सामान ले जाने के किराए पर कर, श्रेष्ठि-चत्वर (Stock exchanges) और वादा-बाजार (Futures markets) के सौदों पर कर, कुछ चीजों पर मुद्रांक-शुल्क (Stamp duty) और समाचार-पत्रों के क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों पर कर,—ये सभी संघ-सूची में शामिल हैं।

इन करों से जो आय होगी उसपर संघ-सरकार का अधिकार होगा। इनमें से कुछ कर तो ऐसे हैं, जिनसे होनेवाली आय को संघ-सरकार अपने काम के लिए रख लेगी। कुछ ऐसे कर हैं जो संघ-सरकार द्वारा लगाए जायेंगे, लेकिन जिनको वसूलने का काम राज्य की सरकार करेगी। ये कर भारत की संचित निधि के भाग नहीं होंगे; बल्कि उस राज्य को ही सौंप दिए जायेंगे। कुछ चीजों पर मुद्रांक-शुल्क तथा कुछ औषधीय और प्रसाधनीय सामग्री (Medicinal and toilet preparations) पर उत्पादन-शुल्क इस तरह के कर हैं। कुछ कर ऐसे हैं जो संघ-सरकार द्वारा लगाए और वसूले भी जायेंगे। लेकिन ये भी भारत की संचित निधि के भाग नहीं होकर राज्यों को ही सौंप दिए जायेंगे। इस तरह के कर ये सब हैं—कृषि-भूमि को छोड़कर दूसरी सम्पत्ति के बारे में उत्तराधिकार-शुल्क और सम्पत्ति-शुल्क, रेल, समुद्र या वायु से ले जाये जानेवाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमाकर, रेलभाड़ों और वस्तु भाड़ों पर कर, श्रेष्ठिचत्वरों और वादा-बाजारों के सौदों पर कर और समाचार-पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर। कुछ ऐसे भी कर होंगे जो संघ-सरकार द्वारा लगाए और वसूले जायेंगे, लेकिन जिन्हें संघ या राज्य किसी एक की सरकार को नहीं देकर दोनों में बाँट दिया जायेगा। कृषि-आय के अतिरिक्त अन्य आय पर लगाए जानेवाले करों के सम्बन्ध में यही व्यवस्था लागू होगी। जबतक वित्त-आयोग गठित नहीं हो जाय तबतक संघ और राज्यों के बीच इस कर का बँटवारा राष्ट्रपति के निर्णय के अनुसार

होगा और जब वित्त-आयोग गठित हो जाय तब इसकी सिपारिशों पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति द्वारा दिए गए आदेश के अनुसार। लेकिन संसद, ऊपर दिए हुए संघ द्वारा लगाए तथा वसूले और राज्य को सौंपे जानेवाले करों में से किसी को भी किसी समय संघ के प्रयोजनों के लिए अधिभार (Surcharge) द्वारा बढ़ा सकेगी। ऐसे किसी अधिभार से होनेवाली समस्त आय भारत की संचित निधि की भाग होगी। औषधीय तथा प्रसाधन-सामग्री पर उत्पादन-शुल्क को छोड़कर और सभी संघ-उत्पादन-शुल्क भारत-सरकार द्वारा लगाये तथा वसूले जायेंगे। लेकिन अगर संसद् विधि द्वारा इस तरह की व्यवस्था करे तो शुल्क लगानेवाली विधि जिन राज्यों में लागू होती हो उन राज्यों को भारत की संचित निधि में से उस शुल्क से होनेवाली आय के पूर्ण अथवा किसी भाग के बराबर राशि दी जायेगी और वे राशियाँ उन राज्यों के बीच विधि द्वारा निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार वितरित की जायेंगी। जूट या जूट से बनी हुई वस्तुओं पर निर्यात-शुल्क से प्रत्येक वर्ष में होनेवाली आमदनी के किसी भाग को आसाम, उड़ीसा, पश्चिमी-बंगाल और बिहार को सौंपने के बजाय उन राज्यों के राजस्व में सहायक अनुदान (grants-in-aid) के रूप में प्रत्येक वर्ष में भारत की संचित निधि पर ऐसी राशियाँ भारित की जायेंगी जैसी कि निर्धारित की जायँ। जबतक भारत-सरकार इनपर कोई निर्यात-शुल्क लगाती रहे अथवा इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति तक, इन दोनों में से जो भी पहले हो उसके होने तक, ये राशियाँ भारत की संचित निधि पर भारित बनी रहेंगी। ऐसे विधेयक जिनसे राज्यों के हितों से सम्बद्ध करों पर कोई प्रभाव पड़ता हो, राष्ट्रपति की सिपारिश के विना संसद के किसी सदन में नहीं पेश किए जायेंगे।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे कर हैं जिनपर राज्यों का एकच्छत्र अधिकार है। ये कर राज्य की सरकार द्वारा लगाये और वसूल किए जायेंगे और इन्हें राज्य के काम में खर्च किया जायगा। इन्हें राज्य-सूची में दिया गया है। ये कर हैं—भूराजस्व (Land revenue), कृषि-आय पर कर, कृषि-भूमि के विषय में उत्तराधिकार-शुल्क और सम्पत्ति-शुल्क, भूमि और भवनों पर

१४

कर, खनिज-अधिकार पर कर (लेकिन संसद से, विधि द्वारा, खनिज-विकास के सम्बन्ध में लगाई गई परिसीमाओं के अधीन रहते हुए), अफीम, भाँग इत्यादि राज्य में निर्मित या उत्पादित वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क, किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर, विद्युत् के उपभोग या विक्रय पर कर, समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर, समाचार-पत्रों में प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर, सड़कों या अन्तर्देशीय जल-पथों पर ले जाये जानेवाले वस्तुओं और यात्रियों पर कर, सड़कों पर चलाने लायक सवारियों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, चुंगी या पथ-कर (Tolls), वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर, प्रतिव्यक्ति-कर (Capitation tax), विलास की वस्तुओं पर कर, जिनके अन्तर्गत आमोद, विनोद, बाजी लगाने और जुआ खेलने पर भी कर है और कुछ वस्तुओं पर मुद्रांक-शुल्क।

किसी राज्य के विधानमंडल की ऐसे करों सम्बन्धी कोई विधि, जो उस राज्य या किसी नगरपालिका, जिला-मंडली, स्थानीय मंडली अथवा उसमें किसी दूसरे स्थानीय प्राधिकारी के हितसाधन के लिए वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं या नौकरियों के बारे में लागू होती है, इस आधार पर अमान्य नहीं होगी कि वह आय पर कर है। किसी एक व्यक्ति से इस तरह के कर के रूप में दो सौ पचास रुपये प्रतिवर्ष से अधिक नहीं लिया जा सकेगा। लेकिन अगर इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले वाले वित्तीय वर्ष में कहीं पर ऐसा कर लागू था जिसकी अधिकतम दर दो सौ पचास रुपये प्रतिवर्ष से अधिक थी, तो ऐसा कर उस समय तक लागू होता रहेगा जबतक कि संसद विधि द्वारा इसके खिलाफ व्यवस्था नहीं करे। संसद द्वारा इस प्रकार निर्मित कोई विधि या तो सामान्यतया या किन्हीं खास-खास राज्यों, नगरपालिकाओं, मंडलियों या प्राधिकारियों के सम्बन्ध में बनाई जा सकेगी। इस तरह राज्य के विधानमंडल की वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर के विषय में विधि बनाने की शक्ति का यह अर्थ नहीं होगा कि संसद की इनसे उत्पन्न होनेवाली आय पर करों के विषय में विधि बनाने की शक्ति किसी तरह सीमित कर दी गई है।

जो कर, शुल्क, उपकर (Cess) या फीस इस संविधान के ठीक पहले किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा किसी नगरपालिका, या अन्य स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा उस राज्य, नगर, जिला अथवा अन्य स्थानीय क्षेत्र के प्रयोजनों के लिए विधिवत् लगाए जा रहे थे, वे संघ-सूची में वर्णित होने पर भी तबतक लगाए जाते रहेंगे, तथा उन्हीं प्रयोजनों के लिए उपयोग में लाये जा सकेंगे जबतक कि संसद विधि द्वारा इसके विरुद्ध व्यवस्था नहीं करे।

राज्यों को सहायता

पहले की तरह संघ की ओर से राज्यों को सहायता देने की भी व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार ऐसी राशियाँ, जो संसद विधि द्वारा तय करे, उन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में प्रतिवर्ष भारत की संचित निधि पर भारित होंगी, जिन राज्यों के बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न राशियाँ नियत की जा सकेंगी। अगर कोई राज्य भारत-सरकार के अनुमोदन से अपने भीतर की अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण के लिए अथवा वहाँ के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर को उस राज्य के अन्य क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर तक उन्नत करने के लिए कोई विकास-योजना लागू करे, तो उस राज्य के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में भारत की संचित निधि में से वैसी मूल तथा आवर्तक राशियाँ (Capital and recurring sums) दी जायेंगी जैसी कि उस राज्य को इस विकास-योजना के खर्च उठाने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो। आसाम-राज्य के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में भारत की संचित निधि में से वैसी मूल तथा आवर्तक राशियाँ दी जायेंगी जो वहाँ के आदिम जाति-क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले दो वर्ष में राजस्वों से औसतन अधिक व्यय के बराबर हो तथा जो उन क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर को उस राज्य के अन्य क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर तक उन्नत करने के लिए उस राज्य द्वारा भारत-सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली गई योजनाओं के खर्चों के बराबर हों।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, राज्यों को सहायता देने की व्यवस्था संसद विधि द्वारा करेगी। लेकिन जबतक संसद ऐसा नहीं करती तबतक संसद की

इस शक्ति का राष्ट्रपति आदेश द्वारा प्रयोग करेगा। राष्ट्रपति द्वारा दिया गया ऐसा कोई आदेश संसद द्वारा इस प्रकार की गई किसी व्यवस्था के अधीन रहकर ही लागू होगा। वित्त-आयोग गठित हो जाने के बाद इसकी सिपारिशोंपर विचार किये विना राष्ट्रपति द्वारा इस तरह का कोई आदेश नहीं दिया जायगा।

भाग (ख) के राज्यों से करार

इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी भारत-सरकार कतिपय वित्तीय विषयों के बारे में प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के किसी राज्य की सरकार से करार (agreement) कर सकेगी। जब कभी इस तरह का करार किया जाय, तब इस अध्याय के उपबन्ध ऐसे राज्य के सम्बन्ध में ऐसे करार की शर्तों के अधीन रहकर ही लागू होंगे। ऐसा करार अधिक-से-अधिक इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि तक लागू रह सकेगा। परन्तु यदि राष्ट्रपति वित्त-आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ऐसा करना जरूरी समझे तो संविधान के प्रारम्भ से पाँच वर्ष की समाप्ति के बाद किसी समय भी वह ऐसे किसी करार को समाप्त या परिवर्तित कर सकेगा।

वित्त-आयोग

इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर, राष्ट्रपति आदेश द्वारा एक वित्त-आयोग गठित करेगा। इस तरह से पहली बार गठित किये जाने के बाद प्रत्येक पाँचवें वर्ष के अन्त होने पर अथवा उससे पहले ऐसे समय पर जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, वित्त-आयोग गठित किया जाता रहेगा। वित्त-आयोग राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक सभापति और चार अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा। संसद विधि द्वारा यह निर्धारित कर सकेगी कि आयोग के सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए कौन योग्यतायें अपेक्षित होंगी तथा किस रीति के अनुसार उनका चुनाव किया जायेगा। आयोग अपनी प्रक्रिया आप निर्धारित करेगा। अपने कृत्यों के पालन में उसे ऐसी शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो संसद-निर्मित विधि द्वारा उसे प्रदान की जायँ।

आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह निम्नलिखित विषयों के बारे में राष्ट्रपति के पास अपनी सिपारिश रखे :—

(क) संघ तथा राज्यों में करों के शुद्ध आगम (net proceeds) अर्थात् उनसे होनेवाली आमदनी का वितरण और राज्यों के बीच ऐसे आगम के तत्सम्बन्धी अंशों का बँटवारा;

(ख) भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के सम्बन्ध में माने जानेवाले सिद्धान्त;

(ग) किसी वित्तीय विषय के बारे में भारत-सरकार तथा प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के किसी राज्य की सरकार के बीच किए गये किसी करार के उपबन्धों को चालू रखना अथवा उनमें परिवर्तन करना; तथा

(घ) सुस्थित वित्त (Sound finance) के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपा गया कोई अन्य विषय।

राष्ट्रपति, वित्त-आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिपारिश को संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखवायेगा। इसके साथ-साथ संसद के प्रत्येक सदन को यह भी बतलाया जायेगा कि इस सिपारिश पर कौन-सी कार्यवाही की गई।

अन्य वित्तीय उपबन्ध

संघ या राज्य की तरफ से किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए कोई अनुदान दिया जा सकेगा चाहे वह ऐसा ही प्रयोजन क्यों न हो जिसके विषय में यथा-स्थिति संसद या उस राज्य के विधानमण्डल को विधि बनाने की शक्ति नहीं हो।

भारत की संचित निधि और भारत की आकस्मिकता-निधि की अभिरक्षा, ऐसी निधियों में धन का डालना, उनसे धन का निकालना, उनमें जमा किये जानेवाले धन के अलावे भारत-सरकार द्वारा प्राप्त लोकधन की अभिरक्षा, उनका भारत के लोकलेखों में दिया जाना, ऐसे लेखे से धन का निकालना तथा उपर्युक्त विषयों से सम्बन्धित या सहायक अन्य सभी विषयों का विनियमन संसद विधि द्वारा करेगी। जबतक संसद इसके लिए विधि नहीं बनावे, तबतक इनका विनियमन राष्ट्रपति द्वारा निर्मित नियमों से होगा। इसी तरह राज्य की संचित निधि, आकस्मिकता-निधि इत्यादि विषयों का विनियमन राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि से होगा और जबतक इस तरह की विधि नहीं बने, तबतक राज्य के

राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा निर्मित नियमों से होगा। यथास्थिति भारत-सरकार या राज्य की सरकार द्वारा वसूल किए गए या प्राप्त राजस्व या लोकधन को छोड़कर, किसी सरकारी पदाधिकारी को (उसकी उस हैसियत में), अथवा किसी वाद, विषय, लेखे या व्यक्तियों के नाम में जमा किये गये भारत के राज्यक्षेत्र के अन्दर किसी न्यायालय को प्राप्त या इनके साथ जमा किये हुए, सब धन यथास्थिति भारत के लोक-लेखे या राज्य के लोक-लेखे में डाले जायेंगे।

जहाँ तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे वहाँ तक किसी राज्य द्वारा या राज्य के अन्तर्गत किसी प्राधिकारी द्वारा संघ की सम्पत्ति पर कोई कर नहीं लगाया जा सकता। लेकिन जबतक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध नहीं करे तबतक इससे किसी राज्य के अन्तर्गत किसी प्राधिकारी के संघ की किसी सम्पत्ति पर कोई कर लगाने में बाधा नहीं पड़ेगी। अगर वह कर ऐसा हो जिसका दायित्व इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले ऐसी सम्पत्ति पर था या समझा जाता था। राज्य की कोई विधि, वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर, जहाँ ऐसी खरीद या बिक्री राज्य के बाहर अथवा भारत-राज्यक्षेत्र में वस्तुओं के आयात (import) या उसके बाहर निर्यात (export) के दौरान में अथवा अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान में होती है, वहाँ न कोई कर लगायेगी और न लगाना प्राधिकृत (authorise) करेगी। लेकिन अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान में होनेवाले क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में संसद को विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित (Otherwise provide) करने की भी शक्ति रहेगी। इसके अलावे राष्ट्रपति आदेश द्वारा यह व्यवस्था भी कर सकेगा कि इस तरह के क्रय या विक्रय पर कोई कर, जो किसी राज्य की सरकार द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले विधिवत् लगाया जा रहा था, सन् १९५१ के मार्च के ३१ वें दिन तक लगाया जाता रहेगा, हालाँ कि ऐसे कर का लगाया जाना संविधान में किये गये उपबन्ध के प्रतिकूल है। यदि किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित कोई विधि संसद द्वारा समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक घोषित की गई वस्तुओं की खरीद या बिक्री पर कर लगाती हो या

लगाना प्राधिकृत करती हो, तो वह तबतक लागू नहीं होगी जबतक कि उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित नहीं किया गया हो और उसपर उसकी अनुमति नहीं मिल गई हो।

जहाँ तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध करे—उसको छोड़कर बिजली के उपभोग या बिक्री पर (चाहे वह सरकार द्वारा पैदा की गई हो, चाहे अन्य व्यक्तियों द्वारा) राज्य की कोई विधि न कर लगायेगी और न कर लगाना प्राधिकृत करेगी; अगर वह बिजली ऐसी हो जो भारत-सरकार द्वारा उपभुक्त हो या उसके द्वारा उपभोग किये जाने के लिए उसे बेची गई हो, अथवा जो किसी रेलवे के निर्माण, बनाये रखने या चलाने में भारत-सरकार या उस रेलवे को चलानेवाली कम्पनी द्वारा उपभुक्त या उसमें से किसी को बेची गई हो। अगर कभी कोई ऐसी विधि बनाई जाय जो बिजली की बिक्री पर कर लगाती हो या कर लगाना प्राधिकृत करती हो, तो इस विधि में ऐसी व्यवस्था रहेगी जिससे भारत-सरकार को अथवा किसी रेलवे कम्पनी को बेची गई बिजली की कीमत उस कीमत से, जो कि इसकी प्रचुर-मात्रा के अन्य उपभोक्ताओं से लिया जाता है, इतना कम रहे, जितनी कि कर की राशि है।

जहाँ तक कि राष्ट्रपति अन्यथा उपबन्ध करे, उसको छोड़कर इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी राज्य में लागू कोई विधि, किसी पानी या बिजली के बारे में न कोई कर लगायेगी और न कर लगाना प्राधिकृत करेगी, अगर वह पानी या बिजली ऐसी हो जो अन्तर्राज्यिक नदियों, या नदी-दूनों के विनियमन या विकास के लिए किसी वर्त्तमान विधि से, अथवा संसद-निर्मित किसी विधि से, स्थापित किसी प्राधिकारी द्वारा जमा की गई, पैदा की गई, उपभुक्त, वितरित या बेची गई हो। राज्य का विधानमंडल इस तरह का कोई कर लगा सकेगा या इसका लगाया जाना प्राधिकृत कर सकेगा। लेकिन ऐसी किसी विधि का तबतक कोई प्रभाव नहीं होगा जबतक कि उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित रखे जाने के बाद उसकी अनुमति न मिल गई हो।

राज्य की सम्पत्ति और आय पर संघ की तरफ से कोई कर नहीं लगाया जायेगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि संघ को राज्य की सरकार द्वारा या उसकी ओर से किये जानेवाले किसी प्रकार के व्यापार या कारबार अथवा

उनसे होनेवाली आय इत्यादि के बारे में कर लगाने या कर लगाना प्राधिकृत करने में किसी तरह की रुकावट होगी। यह बात किसी ऐसे व्यापार या कारबार के सम्बन्ध में नहीं लागू होगी जिसके बारे में संसद विधि द्वारा यह घोषित करे कि वह सरकार के साधारण कामों से सम्बन्धित है।

जहाँ इस संविधान के उपबन्धों के अधीन किसी न्यायालय या आयोग का व्यय अथवा किसी सरकारी सेवक को दिये जानेवाली पेंशन भारत की संचित निधि पर भारित है, वहाँ अगर वह न्यायालय या आयोग किसी राज्य के काम में आता हो अथवा उस सरकारी सेवक ने राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में पूर्णतः या अंशतः सेवा की हो, तो उस व्यय या पेंशन के लिए उस राज्य की तरफ से दी जानेवाली राशि उसकी संचित निधि पर भारित होगी और उससे दी जायेगी। इसी तरह अगर यह व्यय या पेंशन राज्य की संचित निधि पर भारित हो और इस व्यय से चलनेवाला न्यायालय या आयोग संघ के काम में आता हो अथवा उस पेंशन पानेवाले व्यक्ति ने संघ या अन्य राज्यों के सम्बन्ध में सेवा की हो, तो इसके लिए इनमें से किसी की तरफ से दी जाने-वाली राशि यथास्थिति भारत की संचित निधि पर या अन्य राज्य की संचित निधि पर भारित होगी। इस तरह की सभी अवस्थाओं में यह राशि उतनी होगी जितनी कि करार हो। करार के अभाव में इसे भारत के मुख्य न्याया-धिपति द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करेगा।

जहाँ इस संविधान के प्रारम्भ से पहले भारत-डोमिनियन की सरकार ने किसी देशी राज्य के शासक को, किसी प्रसंविदा (Covenant) या करार के अधीन, निजी थैली के रूप में किसी राशि को बिना किसी कर के देने का आश्वासन दिया हो, वहाँ ऐसी राशियाँ भारत की संचित-निधि पर भारित होंगी और उसमें से दी जायेंगी और इनपर किसी तरह का आयकर नहीं लगेगा। यदि ऐसे किसी राज्य के राज्यक्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग (क) या (ख) में के किसी राज्य के भीतर हों, तो भारत-सरकार द्वारा दी जानेवाली देनगियों के विषय में ऐसा अंशदान (Contribution) उस राज्य की संचित निधि पर भारित होगा और उसमें से दिया जायेगा और ऐसे समय तक जैसे कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।

(२) उधार लेना

संघ की तरफ से भारत की संचित निधि की प्रतिभूति (Security) पर उधार लिया जा सकेगा और प्रत्याभूति (Guarantee) दी जा सकेगी। इसी तरह राज्य को भी अपनी संचित-निधि की प्रतिभूति पर उधार लेने और प्रत्याभूति देने की शक्ति है। लेकिन ऐसा करते समय बराबर भारत-सरकार या किसी राज्य की सरकार को यथास्थिति संसद या उस राज्य के विधानमंडल द्वारा नियत की हुई सीमाओं के भीतर रहना पड़ेगा। भारत-सरकार, ऐसी शर्तों के साथ, जैसी कि संसद-निर्मित किसी विधि द्वारा रखी जायें, किसी राज्य को उधार दे सकेगी तथा ऐसे किसी राज्य के द्वारा लिए गए उधारों के बारे में प्रत्याभूति दे सकेगी। जो राशियाँ इस तरह उधार देने के लिए आवश्यक हों, वे भारत की संचित निधि पर भारित होंगी। यदि किसी ऐसे उधार का, जिसे भारत-सरकार ने या उसकी पूर्वाधिकारी (Predecessor) सरकार ने उस राज्य को दिया था अथवा जिसके विषय में इसमें से किसी ने प्रत्याभूति दी थी, कोई भाग चुकाना अभी बाकी हो, तो वह राज्य भारत-सरकार की सम्मति के बिना कोई उधार नहीं ले सकेगा। यह सम्मति उन शर्तों के साथ दी जा सकेगी जिन्हें लगाना भारत-सरकार उचित समझे।

(३) सम्पत्ति, संविदा, अधिकार, दायित्व, आभार और व्यवहार-वाद[1]

इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले जो सम्पत्ति और आस्तियाँ भारत-डोमिनियन की तथा प्रत्येक राज्यपाल-प्रान्त की सरकार के प्रयोजनों के लिए सम्राट् में निहित थीं, वे सब ऐसे प्रारम्भ के बाद क्रमशः संघ तथा तत्स्थानी राज्य में निहित होंगी। इसी तरह जो अधिकार, दायित्व और आभार भारत-डोमिनियन की, तथा प्रत्येक राज्यपाल-प्रान्त की सरकार के थे, वे सब क्रमशः भारत-सरकार तथा प्रत्येक तत्स्थानी राज्य की सरकार के अधिकार, दायित्व और आभार होंगे। जो सम्पत्ति, आस्तियाँ, अधिकार, दायित्व और आभार प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य की सरकार के थे, वे सब संविधान के प्रारम्भ के बाद भारत-सरकार के हो जायेंगे, यदि वे प्रयोजन जिनके लिए वे पहले राज्य के जिम्मे थे, अब संघ-सूची में

1. Property, Contracts, Rights, Liabilities, Obligations and Suits.

प्रगणित विषयों में से किसी से सम्बद्ध संघ के प्रयोजन हो गये हों। यह ऐसे करार के अधीन रहकर होगा जैसा कि इसके लिए भारत-सरकार उस राज्य की सरकार से करे। इनके अलावे और सभी सम्पत्ति, आस्तियों, अधिकारों, दायित्वों और आभारों के बारे में, प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्य की सरकार तत्स्थानी देशी राज्य की सरकार की उत्तराधिकारिणी होगी।

यदि यह संविधान लागू नहीं हुआ होता, तो भारत राज्य-क्षेत्र में की जो कोई सम्पत्ति राजगामी या व्ययगत (escheat or lapse) होने से या अधिकारयुक्त स्वामी के अभाव में यथास्थिति सम्राट् को अथवा देशी राज्य के शासक को प्राप्त हुई होती, वह सम्पत्ति यदि राज्य में स्थित हो तो ऐसे राज्य में और किसी दूसरी अवस्था में संघ में निहित होगी। भारत के जल-प्रांगण (Territorial waters of India) में, समुद्र के नीचे की सब भूमि, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी तथा संघ के प्रयोजनों के लिए धारण की जायेंगी। संघ की तथा प्रत्येक राज्य की सरकार को, यथास्थिति संघ के अथवा ऐसे राज्य के प्रयोजनों के लिए धारण की हुई किसी सम्पत्ति के अनुदान, विक्रय, व्ययन या बंधक (Grant, sale, disperition or mortgage) करने की तथा क्रमशः उन प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति के क्रय या अर्जन (Purchase or acquisition) करने की शक्ति होगी। भारत-सरकार या किसी राज्य की सरकार इस शक्ति का प्रयोग, समुचित विधानमंडल की किसी विधि के अधीन रहते हुए करेगी। संघ के, अथवा राज्य के प्रयोजनों के लिए अर्जित सब सम्पत्ति, यथास्थिति, संघ में या ऐसे किसी राज्य में निहित होगी।

संघ की अथवा राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में की गई सब संविदाएँ, यथास्थिति, राष्ट्रपति द्वारा अथवा उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा की गई कही जायेंगी। लेकिन न तो राष्ट्रपति और न किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख किसी संविदा या इससे सम्बन्धित अन्य किसी बात के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा और न वैसा कोई व्यक्ति ही जिसने उनमें से किसी की ओर से ऐसी संविदा इत्यादि किया या लिखा हो।

यथास्थिति भारत संघ के नाम से भारत-सरकार, अथवा किसी राज्य के

नाम से उस राज्य की सरकार व्यवहार-वाद ला सकेगी या उसके विरुद्ध व्यवहार-वाद लाया जा सकेगा। वे अपने-अपने कार्यों के बारे में उसी प्रकार व्यवहार-वाद ला सकेंगे, अथवा उनके विरुद्ध उसी प्रकार व्यवहार-वाद लाया जा सकेगा जिस प्रकार भारत-डोमिनियन और तत्स्थानी प्रान्त या देशी राज्य व्यवहार-वाद ला सकते अथवा उनके विरुद्ध व्यवहार-वाद लाया जा सकता, यदि यह संविधान नहीं बना होता। इस तरह के सभी काम इस संविधान के अनुसार प्राप्त शक्तियों के आधार पर, संसद द्वारा अथवा ऐसे राज्य के विधानमंडल द्वारा, बनाए गए अधिनियम के अधीन रहते हुए ही होंगे। यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर कोई ऐसी कानूनी कार्यवाहियाँ लम्बित (Pending) हों, जिनमें भारत-डोमिनियन अथवा कोई प्रान्त या कोई देशी राज्य एक पक्ष है, तो उन कार्यवाहियों में भारत-डोमिनियन के स्थान में भारत-संघ तथा उस प्रान्त या देशी राज्य के स्थान में तत्स्थानी राज्य समझा जायेगा।

(४) भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम

इस भाग में नीचे दिए जानेवाले अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारत राज्य-क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम (intercourse) अबाध अर्थात् विना किसी रोकटोक के होगा। संसद विधि द्वारा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा भारत-राज्य क्षेत्र के किसी भाग के भीतर व्यापार, वाणिज्य या समागम की स्वतंत्रता पर ऐसा प्रतिबन्ध लगा सकेगी जैसा कि लोक-हित में अपेक्षित हो। लेकिन न तो संसद को और न राज्य के विधान-मंडल को, कोई ऐसी विधि बनाने की शक्ति होगी जो एक राज्य को दूसरे राज्य से अधिमान (preference) देती हो अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच कोई विभेद करती हो। किन्तु इस उपबन्ध के होते हुए भी संसद कोई ऐसी विधि बना सकेगी जो कोई ऐसा अधिमान देती हो या विभेद करती हो। यदि ऐसी विधि द्वारा यह घोषित कर दिया गया हो कि भारत के किसी भाग में चीजों की कमी से पैदा हुई किसी स्थिति से निबटने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। जिस हद तक राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्यथा उपबन्धित

करे, उसको छोड़कर, ऊपर दिए गए उपबन्धों में की किसी बात का, किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ऊपर दिये गये उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा दूसरे राज्यों से मँगाईं गई चीजों पर कोई ऐसा कर लगा सकेगा जो कि उस राज्य में बनी हुई या पैदा की गई वैसी ही चीजों पर लगता हो। लेकिन यह कर लगाते समय इस बात का ख्याल रखा जायेगा कि इस तरह दूसरे राज्यों से मँगाई गई और उसी राज्य में बनाई या पैदा की गई चीजों के बीच कोई विभेद नहीं हो। इसी तरह ऊपर किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य का विधानमंडल उस राज्य के साथ या उसके भीतर होने-वाले व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता पर ऐसा युक्तियुक्त प्रतिबन्ध लगा सकेगा जैसा कि लोक-हित में अपेक्षित हो। लेकिन इसके लिए कोई विधेयक या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्वमञ्जूरी के बिना राज्य के विधान-मंडल में नहीं पेश किया जायेगा।

संसद विधि द्वारा ऐसे प्राधिकारी की नियुक्ति कर सकेगी, जैसा कि वह ऊपर दिये गये उपबन्धों के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए उचित समझे। इस प्रकार नियुक्त प्राधिकारी को संसद ऐसी शक्तियाँ और ऐसे कर्तव्य भी सौंप सकेगी जैसे कि वह आवश्यक समझे।

ऊपर दिये गए उपबन्धों में अथवा इस संविधान के अन्य उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में का कोई राज्य, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले दूसरे राज्यों से उस राज्य में वस्तुओं के आयात पर अथवा उस राज्य से दूसरे राज्यों को वस्तुओं के निर्यात पर कोई कर या शुल्क लगाता था, ऐसे कर या शुल्क को लगाता और वसूलता रहेगा। लेकिन ऐसा तभी होगा जब इसके लिए भारत-सरकार और उस राज्य में करार हो जाय और वह राज्य ऐसा करते समय इस करार की शर्तों के अधीन चले। ऐसा अधिक-से-अधिक संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के लिए किया जा सकता है। किसी राज्य में इस दस वर्ष की कालावधि के भीतर कितने समय तक इस तरह कर लगाया जाता रहेगा यह भारत-सरकार और उस राज्य में इसके लिए हुई करार में

उल्लिखित रहेगा। किन्तु संविधान के प्रारम्भ से पाँच वर्ष के बाद किसी भी समय यदि राष्ट्रपति वित्त-आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ऐसे किसी करार को खतम करना या उसमें परिवर्तन करना आवश्यक समझे, तो वह वैसा कर सकेगा।

आर्थिक उपबन्धों पर विचार

संविधान में आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में जो उपबन्ध हैं उन्हें ऊपर दे दिया गया है। उनपर विचार करते समय सबसे पहले संघ और राज्यों के बीच राजस्वों के वितरण पर ध्यान जाता है। संघ-सरकार के जिम्मे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य हैं और आजकल की परिस्थिति में संघ-सरकार का शक्तिशाली रहना सभी दृष्टियों से वांछनीय है। इसलिए संघ-सरकार की आय के प्रचुर साधन रहने चाहिए। लेकिन इसके साथ-ही-साथ यह भी सभी स्वीकार करेंगे कि राज्यों के काम का भी कोई कम महत्त्व नहीं है। जनता के सुख-दुख के साथ राज्य की सरकार का ही अधिक निकट सम्बन्ध है। आज सरकार का कार्य-क्षेत्र बहुत बढ़ गया है और राज्य की सरकार से अपने राज्य-क्षेत्र के भीतर निवास करनेवाले लोगों को सभी तरह से सुखी और उन्नत बनाने के लिए प्रयत्नशील होने की आशा की जाती है। ऐसी अवस्था में राज्य की सरकार अपनी जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक तभी निभा सकेगी जब उसको किसी तरह के अर्थाभाव का सामना नहीं करना पड़े। इस दृष्टि से विचार करने पर भारतीय संविधान में संघ और राज्यों के बीच राजस्वों के वितरण के लिए जो व्यवस्था की गई है, वह सन्तोषजनक नहीं मालूम पड़ती है। राज्य को जो राजस्व दिये गये हैं, वे पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। यह ठीक है कि उनको संघ की ओर से सहायता देने की व्यवस्था की गई है। लेकिन संघ की सहायता पर अधिक निर्भर करनेवाले राज्य को अपने कार्यक्षेत्र के भीतर स्वतंत्र होकर काम करने में कभी बाधा का भी सामना करना पड़ जा सकता है। जो आर्थिक सहायता देता है, उसे स्वभावतः इस सहायता के पानेवाले की नीति पर अपना प्रभाव डालने की प्रवृत्ति होती है। ऐसा भारत में भी हो सकता है। इसके अलावे ऐसा भी अवसर आ सकता है जब संघ में एक पार्टी की सरकार रहे और किसी राज्य में इसके विरोध में रहनेवाली

किसी दूसरी पार्टी की। ऐसी अवस्था में संघ से उस राज्य को सहायता पाने में दिक्कत भी हो सकती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि संघ की ओर से राज्यों को सहायता देने की व्यवस्था नहीं रहनी चाहिए। इतना कहने का सिर्फ यही प्रयोजन है कि राज्यों के पास आय के इतने साधन अवश्य रहने चाहिए, जिनसे वे अपना साधारण खर्च आसानी से चला सकें। हाँ, किसी आकस्मिक परिस्थिति का सामना करने के लिए वे संघ से सहायता की माँग कर सकते हैं और उन्हें संघ की ओर से यह सहायता दी जा सके इसके लिए संविधान में समुचित व्यवस्था अवश्य रहनी चाहिए। अगर साधारण समय में राज्यों को संघ की सहायता पर निर्भर रहना पड़े, तो आर्थिक दृष्टि से भी यह हितकर नहीं कहा जा सकता। इसका स्वाभाविक परिणाम यही होगा कि भिन्न-भिन्न राज्यों में संघ की अधिक-से-अधिक सहायता पाने के लिए एक होड़-सी लगी रहेगी और यह भी असम्भव नहीं जान पड़ता कि जो सबसे अधिक शोरगुल मचाये उसे ही सबसे अधिक सहायता मिले। इसलिए यह सभी तरह से स्पष्ट है कि राज्यों को आय के कुछ और स्वतन्त्र साधन दिये जाने चाहिए जिससे वे अपने राज्यक्षेत्र के निवासियों के विकास की योजनायें बिना किसी रोक-टोक के चला सकें।

संविधान में वित्त-आयोग की स्थापना की जो व्यवस्था की गई है, वह प्रशंसनीय है। वित्तीय विषयों के प्रशासन में इससे बहुत सहायता मिलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उधार लेने और सम्पत्ति, संविदा, अधिकार, दायित्व तथा व्यवहार-वाद के बारे में जो व्यवस्था की गई है, वह साधारणतः सभी जगहों में इसी तरह की होती है और उसपर विचार करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम के बारे में संविधान में जो उपबन्ध दिए गए हैं, वे उचित जान पड़ते हैं। विशेष कर यह ध्यान देने लायक है कि व्यापार की दृष्टि से भारत एक इकाई की तरह रहेगा, हालाँकि विशेष परिस्थिति में एक-राज्य के भीतर या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच होनेवाले व्यापार पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध भी लगाए जा सकेंगे। इससे संघीय संविधान के रहते हुए भी देश की आर्थिक एकता पूरी तरह से कायम रहेगी। होना भी यही चाहिए।

अध्याय १३

न्याय-पालिका

कार्यपालिका, विधान-मण्डल और न्यायपालिका—आधुनिक शासन के यही मुख्य अंग हैं और इनमें से प्रत्येक का अपना-अपना महत्त्व है। वैसे तो आज-कल शासन-सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करते समय आमतौर पर अधिक चर्चा कार्यपालिका और विधान-मण्डल-विषयक बातों की ही होती है। लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि न्यायपालिका का कार्यपालिका या विधान-मण्डल की अपेक्षा किसी भी तरह गौण स्थान है। बल्कि अगर यह कहा जाय कि कुछ अंशों में न्यायपालिका का महत्त्व इनमें सबसे अधिक है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विधानमण्डल द्वारा जो विधियाँ बनाई जाती हैं, वे ठीक से लागू की जाती हैं या नहीं, यह देखना न्यायपालिका का ही काम होता है। धीरे-धीरे न्यायालयों के निर्णय भी एक तरह से विधि का ही रूप ग्रहण कर लेते हैं। जिन देशों में संघीय संविधान रहता है, वहाँ तो इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। ऐसे देशों में संघ और राज्य दोनों की शक्तियाँ संविधान में स्थिर कर दी जाती हैं और अगर कभी किसी बात को लेकर दोनों में कोई विवाद खड़ा हो जाता है, तो इसका फैसला न्यायालय ही करते हैं। न्यायालयों को यह भी देखना पड़ता है कि संघ अथवा राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित कोई विधि संविधान के अनुसार जायज है या नहीं। इस तरह न्यायपालिका संविधान की संरक्षक होती है। यही नहीं, व्यक्ति की स्वाधीनता और उसके अधिकारों की रक्षा में भी न्यायपालिका का बहुत हाथ होता है। राजनीतिशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् हेनरी सिजविक ने ठीक ही लिखा है कि राजनीतिक सभ्यता की दृष्टि से किसी राष्ट्र का स्थान निर्धारित करने में इससे अधिक निर्णायक पहचान कोई नहीं है कि उसके न्याय के प्रशासन में सचमुच में कितना न्याय प्राप्त होता है[1]।

---

१. सिजविक—एलिमेण्ट्स आफ पालिटिक्स पृ. ४८१
लास्की—ए ग्रामर आफ पालिटिक्स में उद्धृत पृ. ५४१.

इस तरह यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका के महत्त्व के सम्बन्ध में जो भी कहा जाय वह थोड़ा ही है। अब प्रश्न है कि जब इसका महत्त्व इतना अधिक है, तब इसका गठन किस प्रकार का हो? इतना तो आज सभी मानते हैं कि न्याय के शासन में किसी तरह की बाधा नहीं पहुँच सके, इसके लिए यह जरूरी है कि इसे कार्यपालिका और विधानमण्डल से अलग रखा जाय। साथ-ही-साथ यह भी जरूरी है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के नियम तथा उनकी सेवा की शर्तें ऐसी हों जिसमें सबसे योग्य और निष्पक्ष व्यक्ति ही इन पदों के लिए नियुक्त किये जायँ और एक बार नियुक्त हो जाने के बाद फिर उन्हें किसी से किसी प्रकार का न डर हो, न लाभ की कोई आशा। ऐसा होने पर ही न्यायाधीश लोग डर और लोभ, राग और द्वेष, सबसे अलग रहकर न्याय कर सकेंगे। न्यायालयों को सरकार के किसी काम के खिलाफ भी निर्णय देने की जरूरत हो सकती है और ऐसा वे निडर होकर तभी कर सकते हैं, जब वे जानते हों कि सरकार रुष्ट होकर भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी।

आधुनिक जगत् के करीब-करीब सभी महत्त्वपूर्ण देशों में इन सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी जगह न्यायालयों का गठन और उनकी शक्तियाँ एक ही तरह की हैं। अधिकतर देशों में तो न्यायाधीश वहाँ की कार्यपालिका द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। लेकिन स्वीटजरलैंड में ये विधानमण्डल द्वारा और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के कुछ राज्यों में साधारण जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। अमेरिका के संघीय न्यायालय के सम्बन्ध में यह बात नहीं लागू है। इसके न्यायाधीशों की नियुक्ति वहाँ का राष्ट्रपति सेनेट के परामर्श और अनुमोदन से करता है। इसी तरह इनकी सेवा की शर्तें भी इसी तरह की होती हैं जिसमें वे सरकार के फेर-बदल के प्रभाव से दूर रहकर अपना काम कर सकें। लेकिन इस सम्बन्ध में भी सभी देशों की व्यवस्था एक ही तरह की नहीं है। ब्रिटेन में किसी न्यायाधीश को उसके पद से तभी हटाया जा सकता है जब वहाँ की पार्लियामेंट के दोनों सदनों के बहुमत से इस तरह की माँग उपस्थित किये जाने पर सम्राट् इस आशय का आदेश निकाले। दूसरी ओर संयुक्तराष्ट्र

अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश महाभियोग द्वारा अपने पद से हटाये जा सकते हैं।

न्यायपालिका की शक्तियों के संबन्ध में भी यही बात लागू है। ब्रिटेन में पार्लियामेंट की सत्ता सर्वोपरि है। वहाँ के न्यायालय पार्लियामेंट द्वारा निर्मित किसी विधि को यह कहकर अवैध नहीं ठहरा सकते कि वह वहाँ के संविधान के मुताबिक जायज नहीं है। लेकिन अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त है। इसका यह अर्थ नहीं है कि दोनों देशों में न्यायपालिका का गठन बिलकुल एक ही प्रकार का है। अमेरिका के उच्चतम न्यायालय को राज्यों की विधियों के सम्बन्ध में अपील सुनने की शक्ति नहीं है, लेकिन आस्ट्रेलिया के उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है। दूसरी तरफ स्वीट्ज़रलैंड में न्यायपालिका को इस तरह से संविधान का अर्थ निश्चित करने की कोई शक्ति ही नहीं है।

न्यायव्यवस्था के संबन्ध में एक दूसरा भेद यह भी देखने में आता है कि कुछ देशों में सभी तरह के व्यक्तियों के लिए एक ही प्रकार के न्यायालय रहते हैं चाहे वे सरकारी सेवक हों या साधारण नागरिक। और कुछ देशों में सरकारी सेवकों से सम्बन्ध रखनेवाले मामलों के निबटाने के लिए साधारण न्यायालयों से भिन्न अन्य न्यायालय रहते हैं जिन्हें प्रशासन-सम्बन्धी न्यायालय (Administrative courts) कहते हैं। पहले तरह के देशों में इंगलैंड और अमेरिका का नाम लिया जा सकता है। इस व्यवस्था को विधि का शासन (Rule of law) कह कर पुकारा जाता है। दूसरे तरह के देशों में फ्रांस का उदाहरण सबसे प्रमुख है।

इसी पृष्ठभूमि में न्यायपालिका के सम्बन्ध में भारतीय संविधान में दिए गये उपबन्धों का अवलोकन किया जायगा। इसके बाद उसके स्वरूप पर विचार होगा।

(१) संघ की न्याय-पालिका

उच्चतम न्यायालय का गठन

भारत का एक उच्चतम न्यायालय होगा। यह भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा अधिक-से-अधिक सात अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा। संसद विधि

द्वारा इससे अधिक संख्या भी निर्धारित कर सकती है। यह न्यायालय दिल्ली में अथवा ऐसे दूसरे स्थान या स्थानों में बैठेगा, जिन्हें भारत का मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति के अनुमोदन से समय-समय पर नियुक्त करे।

उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायेगा। इस तरह की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के, ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श कर लेगा, जिनसे कि इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना वह आवश्यक समझे। लेकिन मुख्य न्यायाधिपति से भिन्न किसी अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में भारत के मुख्य न्यायाधिपति से बराबर परामर्श किया जायेगा। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए कोई व्यक्ति तभी योग्य समझा जायेगा जब कि वह भारत का नागरिक हो तथा किसी उच्च न्यायालय का या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का लगातार कम-से कम पाँच वर्ष तक न्यायाधीश रह चुका हो; अथवा किसी ऐसे न्यायालय का या दो या अधिक न्यायालयों का लगातार कम-से-कम दस वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो; अथवा राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेत्ता हो।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिए नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति, अपने पद ग्रहण करने से पहले, राष्ट्रपति के अथवा उसके द्वारा इस काम के लिए नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के सामने शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा कि वह भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखेगा, सम्यक् प्रकार से और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों को भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के विना पालन करेगा तथा संविधान की और विधियों की मर्यादा बनाए रखेगा। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को ५,००० रुपये तथा अन्य न्यायाधीश को ४,००० रुपये प्रतिमास के दर से वेतन दिया जायेगा। लेकिन यह बात उस न्यायाधीश पर नहीं लागू होगी जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले फेडरल न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति या अन्य न्यायाधीश के पद पर रहा हो और ऐसे प्रारम्भ पर उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति या न्यायाधीश बन गया हो। ऐसे प्रत्येक न्यायाधीश को ऊपर दिये गये वेतन के अलावे विशेष वेतन के रूप

में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस वेतन तथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उसे मिलनेवाले वेतन के अन्तर के बराबर हो। उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को बिना किराया दिये सरकारी निवासस्थान (पदावास) के उपयोग का हक होगा। ऐसा प्रत्येक न्यायाधीश भारत-राज्यक्षेत्र के भीतर अपने कर्त्तव्य पालन में की गई यात्रा में हुए खर्च की पूर्ति के लिए ऐसे भत्ते पायेगा तथा यात्रा-सम्बन्धी उसे ऐसी सुविधायें दी जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति समय-समय पर तय करे। प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे विशेषाधिकार और भत्ते तथा छुट्टी और पेंशन के बारे में ऐसे अधिकार प्राप्त होंगे जैसे कि संसद् विधि द्वारा समय-समय पर निर्धारित करे। जबतक संसद ऐसा नहीं करती तबतक छुट्टी और पेंशन के बारे में प्रत्येक न्यायाधीश को वही अधिकार प्राप्त होंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को प्राप्त थे। लेकिन किसी न्यायाधीश के विशेषाधिकारों और भत्तों तथा छुट्टी और पेंशन-सम्बन्धी अधिकारों या इनमें से किसी में उसकी नियुक्ति के बाद ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा जो उसके लिए अलाभकारी हो।

उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश पैंसठ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहेगा। लेकिन कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति को अपना त्याग-पत्र देकर इसके पहले कभी भी अपने पद से अलग हो सकेगा। वह अपने पद से तभी हटाया जा सकेगा जब संसद् के दोनों सदनों की ओर से इसके लिए मांग पेश किए जाने के बाद राष्ट्रपति इस तरह का आदेश दे। लेकिन साबित किए गये कदाचार और असमर्थता (Proved misbehaviour and incapacity) के आधार पर ही इस तरह की माँग रखी जा सकती है। और इसपर राष्ट्रपति उचित कारवाई तभी करेगा जब कि इसे प्रत्येक सदन की समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत का, तथा उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों में से कम-से-कम दो तिहाई के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। संसद विधि द्वारा इस तरह की माँग रखे जाने की, तथा किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता की जाँच तथा साबित किये जाने की, प्रक्रिया का विनियमन कर सकेगी। कोई व्यक्ति, जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर रह चुका है, भारत-राज्यक्षेत्र के भीतर किसी भी न्यायालय में अथवा किसी भी प्राधिकारी के सामने वकालत या कोई दूसरा काम नहीं करेगा।

अगर कभी भारत के मुख्य न्यायाधिपति की जगह खाली हो अथवा वह अनुपस्थिति या किसी दूसरे कारण के चलते, अपने पद के कर्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो, तो उच्चतम न्यायालय का एक ऐसा न्यायाधीश उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा, जिसे राष्ट्रपति इस काम के लिए नियुक्त करे। अगर किसी समय उच्चतम न्यायालय के अधिवेशन के लिए उस न्यायालय के न्यायाधीशों से गणपूर्ति नहीं होती हो, तो भारत का मुख्य न्यायाधिपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से, उच्चतम न्यायालय की बैठकों में इतनी कालावधि के लिए, जितनी आवश्यक हो, तदर्थ न्यायाधीश (ad hoc Judge) के रूप में उपस्थित रहने के लिए निवेदन कर सकेगा। राष्ट्रपति की पूर्वसम्मति से, तथा सम्बद्ध न्यायालय के मुख्य न्याया-धिपति से परामर्श करके ही भारत का मुख्य न्यायाधिपति ऐसा करेगा तथा तदर्थ न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए उसी से निवेदन किया जायेगा जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किये जाने के लिए पूरी तरह योग्य हो। इस प्रकार निवेदन पानेवाले न्यायाधीश का यह कर्तव्य होगा कि वह उच्चतम न्यायालय की बैठकों में तबतक उपस्थित रहे, जबतक उसकी उपस्थिति अपेक्षित हो। जब वह इस तरह उपस्थित हो, तब उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के, सब क्षेत्राधिकार, शक्तियाँ और विशेषा-धिकार प्राप्त होंगे तथा वह ऐसे न्यायाधीश का सब काम सँभालेगा। भारत का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय भी, राष्ट्रपति की पूर्वसम्मति से, किसी व्यक्ति से, जो उच्चतम न्यायालय के या फेडरल न्यायालय के, न्यायाधीश के पद पर रह चुका हो, उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने का निवेदन कर सकेगा। ऐसे व्यक्ति को इस प्रकार बैठने और कार्य करने के समय में, ऐसे भत्ते जैसे कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे तथा उस न्यायालय के सभी क्षेत्राधिकार, शक्तियाँ तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, लेकिन वह अन्यथा इस न्यायालय का न्यायाधीश नहीं समझा जायेगा। किन्तु ऐसे व्यक्ति के लिए मुख्य न्यायाधिपति के निवेदन को स्वीकार करना अनिवार्य नहीं रहेगा और जबतक वह इस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने की सम्मति न दे, तबतक उसे इसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा।

उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ

उच्चतम न्यायालय अभिलेख-न्यायालय (Court of record) होगा तथा उसे ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी जिनमें अपने अवमान (Contempt) के लिए दंड देने की शक्ति भी शामिल है।

कई तरह के विवादों में उच्चतम न्यायालय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार होगा। यह क्षेत्राधिकार भारत-सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के बीच के, अथवा एक ओर भारत-सरकार और कोई राज्य या राज्यों तथा दूसरी ओर एक या अधिक अन्य राज्यों के बीच के, अथवा दो या अधिक राज्यों के बीच के, किसी विवाद में लागू होगा, यदि यह विवाद ऐसे किसी प्रश्न से सम्बन्ध रखता है (चाहे विधि का चाहे तथ्य का) जिसपर किसी वैध अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर है, ऐसे किसी विवाद के सम्बन्ध में किसी दूसरे न्यायालय का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। लेकिन उच्चतम न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार के भीतर ऐसा विवाद नहीं आवेगा जिसमें प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में का कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, संविदा, सनद इत्यादि के किसी उपबन्ध से पैदा हुआ हो, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले की गई थी तथा इसके बाद भी लागू है। ऐसे किसी विवाद पर भी इस क्षेत्राधिकार का विस्तार नहीं होगा जिसमें कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, संविदा इत्यादि से पैदा हुआ हो, जिसमें यह व्यवस्था की गई है कि ऐसा विवाद कैसे क्षेत्राधिकार के भीतर नहीं आवेगा।

इसके अलावे कई तरह के मामलों में उचतम न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार भी होगा। उच्चतम न्यायालय में, भारत-राज्यक्षेत्र में के किसी उच्च न्यायालय के, चाहे व्यवहारविषयक (Civil), चाहे दांडिक (Criminal), चाहे अन्य कार्यवाही में, दिये गए किसी तरह के फैसले की अपील हो सकेगी, यदि वह उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाण-पत्र दे कि वह मामला इस संविधान के निर्वचन (interpretation) के किसी सारवान विधि-प्रश्न (Substantial question of law) से सम्बन्ध रखता है। जहाँ कि उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाण-पत्र देना अस्वीकार कर दे वहाँ, यदि उच्चतम न्यायालय

यह समझे कि वह मामला इस संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न से सम्बन्धित है तो, वह ऐसे फैसले की अपील के लिए विशेष इजाजत दे सकेगा। जहाँ ऐसा प्रमाण-पत्र अथवा ऐसी इजाजत दे दी गई हो, वहाँ उस मामले में का कोई पक्ष इस आधार पर कि इस प्रश्न पर गलत फैसला दिया गया है तथा उच्चतम न्यायालय की इजाजत से अन्य किसी आधार पर, उस न्यायालय में अपील कर सकेगा।

व्यवहार-विषयों के बारे में भी उच्च न्यायालयों से उच्चतम न्यायालयों में अपील की जा सकती है। ऐसा किये जाने के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे कि, विवाद-विषय की राशि या मूल्य प्रथम बार के न्यायालय (Court of first instance) में बीस हजार रुपये से, या ऐसी अन्य राशि से, जो इस बारे में संसद-निर्मित विधि द्वारा तय की जाय, कम न थी और अपील-गत विवाद में भी उससे कम नहीं है; अथवा फैसले में उतनी राशि या मूल्य की सम्पत्ति से सम्बद्ध कोई दावा या प्रश्न प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अन्तर्ग्रस्त (involved) है; अथवा मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक है। अगर तीसरी अवस्था को छोड़कर अन्य अवस्था में जिस फैसले के बारे में अपील की जा रही हो, वह फैसला उच्च न्यायालय के ठीक नीचे के न्यायालय के फैसले की पुष्टि करता है तो उच्चतम न्यायालय में तभी अपील की जा सकेगी जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र भी दे कि अपील में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। इस उपबन्ध के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील करनेवाला कोई पक्ष ऐसी अपील के कारणों में यह कारण भी बता सकेगा कि इस संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न पर गलत फैसला दिया गया है। इस उपबन्ध में किसी बात के होते हुए भी जबतक संसद-निर्मित विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित नहीं किया जाय, तबतक उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के फैसले की अपील उच्चतम न्यायालय में नहीं होगी।

दंड-विषयों में भी उच्चतम न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार है। भारत के किसी उच्च न्यायालय के, किसी दंड-कार्यवाही में दिये हुए फैसले की अपील उच्चतम न्यायालय में होगी। यदि उस उच्च न्यायालय ने अपील में

किसी अभियुक्त व्यक्ति की रिहाई (विमुक्ति acquittal) के आदेश को उलट दिया हो और उसे फाँसी की सजा दी हो; अथवा उस उच्च न्यायालय ने, स्वयं किसी मामले की सुनवाई करने के लिए, उसे अपने अधीन न्यायालय से अपने पास मँगा लिया हो और अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराया हो तथा उसे फाँसी की सजा दी हो; अथवा उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे कि मामला ऐसा है जिसके बारे में उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। संसद-निर्मित विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को भारत-राज्यक्षेत्र में के किसी उच्च न्यायालय के दंड-कार्यवाही में दिये गये, किसी फैसले की अपील सुनने की और भी शक्ति दी जा सकेगी।

जबतक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध नहीं करे तबतक उच्चतम न्यायालय को ऐसे किसी भी विषय के बारे में क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ होंगी जिसके विषय में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी वर्तमान विधि के अधीन फेडरल न्यायालय को क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ थीं। इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी उच्चतम न्यायालय को स्वविवेक से भारत के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण (Tribunal) द्वारा किसी विषय में दिये हुए फैसले की अपील के लिए विशेष इजाजत देने की शक्ति रहेगी। लेकिन यह बात सशस्त्र बलों से सम्बद्ध किसी विधि के अधीन गठित किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा दिये गये फैसले पर नहीं लागू होगी। उच्चतम न्यायालय को अपने किसी निर्णय या आदेश पर पुनर्विलोकन (Review) करने का अधिकार होगा।

उच्चतम न्यायालय को संघ-सूची के विषयों में से किसी के बारे में ऐसे और क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ होंगी जैसे संसद-निर्मित विधि द्वारा प्रदान की जायँ। इस न्यायालय को किसी विषय के बारे में ऐसे और क्षेत्राधिकार तथा शक्तियाँ होंगी जो भारत-सरकार और किसी राज्य की सरकार के बीच हुए करार द्वारा प्रदान की जायँ, यदि संसद इनके प्रयोग का विधि द्वारा उपबन्ध कर दे। संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को, मूल अधिकारों के सम्बन्ध में वर्णित प्रयोजनों से भिन्न किन्हीं प्रयोजनों के लिए ऐसे निर्देश, आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दी-प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा

और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, अथवा इनमें से किसी को निकालने की शक्ति प्रदान कर सकेगी। संसद् विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को ऐसी अनुपूरक (Ancillary) शक्तियाँ प्रदान कर सकेगी, जैसी कि उस न्यायालय को, अपने क्षेत्राधिकार के और अच्छी तरह प्रयोग करने के योग्य बनाने के लिए, आवश्यक या वाञ्छनीय मालूम पड़े।

उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के सभी न्यायालयों को मान्य (Binding बन्धनकारी) होगी। अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में यह न्यायालय ऐसी आज्ञप्ति (decree) या ऐसा आदेश दे सकेगा जैसा कि उसके सामने पेश किसी विषय में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो और इस प्रकार दी हुई आज्ञप्ति या आदेश भारत-राज्यक्षेत्र में सभी जगह लागू होगा। विशेष तौर पर इस न्यायालय को भारत में के किसी व्यक्ति को हाजिर कराने के, किन्हीं दस्तावेजों (documents) को प्रकट या पेश कराने के, अथवा अपने किसी अवमान की जाँच कराने या दंड देने के प्रयोजन के लिए कोई आदेश देने की पूरी शक्ति होगी। भारत के सभी असैनिक और न्यायिक (civil and judicial) प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।

विशेष अवसरों पर राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय से परामर्श करने की शक्ति दी गई है। यदि किसी समय राष्ट्रपति यह समझे कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न पैदा हुआ है, अथवा उसके पैदा होने की सम्भावना है, जिस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना इष्टकर (expedient) है, तो वह उस प्रश्न को उस न्यायालय को विचारार्थ सौंप सकेगा। इस तरह से किसी प्रश्न के सौंपे जाने पर वह न्यायालय ऐसी सुनवाई के बाद जैसी कि वह उचित समझे, राष्ट्रपति को उसपर अपनी राय दे सकेगा। ऊपर कहा जा चुका है कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर ऐसा विवाद नहीं रहेगा जिसमें प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में का कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, संविदा, सनद इत्यादि के किसी उपबन्ध से पैदा हुआ हो, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले की गई थी तथा इसके बाद भी लागू है। लेकिन राष्ट्रपति इस तरह के विवाद को भी इस न्यायालय को,

राय देने के लिए, सौंप सकेगा तथा वह न्यायालय, ऐसी सुनवाई के बाद जैसी कि वह उचित समझे, राष्ट्रपति को उसपर अपनी राय देगा।

न्यायालय के नियम आदि

संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय, समय-समय पर, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, न्यायालय की कार्य-प्रणाली और प्रक्रिया के साधारण विनियमन के लिए नियम बना सकेगा। इस तरह से बनाये गए नियम, उन न्यायाधीशों की कम-से-कम संख्या नियत कर सकेंगे जो किसी प्रयोजन के लिए बैठेंगे तथा, अकेले न्यायाधीशों और खंड-न्यायालयों (Single judges and Division Courts) की शक्ति के लिए उपबन्ध कर सकेंगे। ऐसे किसी मामले में निर्णय देने के लिए, जो इस संविधान के निर्वचन के किसी सारवान विधि-प्रश्न से सम्बधित है अथवा राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए किसी प्रश्न पर विचार करने के लिए, बैठनेवाले न्यायाधीशों की कम-से-कम संख्या पाँच होगी। उच्चतम न्यायालय के सभी निर्णय खुले न्यायालय में ही सुनाए जायँगे। राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए किसी प्रश्न पर भी, खुले न्यायालय में सुनाई गई राय के अनुसार ही रिपोर्ट दी जायेगी। मामले की सुनवाई में उपस्थित न्यायाधीशों के बहुमत की सहमति से ही, उच्चतम न्यायालय द्वारा कोई निर्णय या ऐसी कोई राय दी जायेगी। लेकिन बहुमत की राय या निर्णय से सहमत नहीं होनेवाला कोई न्यायाधीश अपनी असहमति प्रकट कर सकेगा अथवा अपना विमत (dissenting) निर्णय या राय दे सकेगा।

पदाधिकारी, सेवक तथा व्यय

उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों तथा सेवकों की नियुक्तियाँ भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा अथवा उसके द्वारा निर्देशित उस न्यायालय के किसी दूसरे न्यायाधीश या पदाधिकारी द्वारा की जायेगी। लेकिन राष्ट्रपति ऐसा नियम बना सकेगा कि खास-खास अवस्थाओं में, किसी व्यक्ति को न्यायालय से सम्बन्धित किसी पद पर संघ-लोकसेवा-आयोग से परामर्श किये बिना, नहीं नियुक्त किया जाय। यह नियम ऐसे किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में नहीं लागू होगा

जो पहले से ही इस न्यायालय में काम कर रहा हो। संसद-निर्मित किसी विधि के अधीन रहते हुए इस न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी, जैसी कि भारत का मुख्य न्यायाधिपति नियमों द्वारा तय करे। मुख्य न्यायाधिपति इस न्यायालय के किसी अन्य न्यायाधीश या पदा-धिकारी को भी इस प्रयोजन के लिए नियम बनाने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। लेकिन इस तरह से बनाये गए नियमों के लिए जहाँ तक कि वे वेतन, भत्ते, छुट्टी या पेंशन से सम्बन्ध रखते हैं, राष्ट्रपति के अनुमोदन की अपेक्षा होगी। उच्चतम न्यायालय के सभी प्रशासन-व्यय, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे। इस व्यय के भीतर उस न्यायालय के पदाधिकारियों या सेवकों को दिये जानेवाले सभी वेतन, भत्ते और पेंशन भी शामिल हैं। इसी तरह इस न्यायालय द्वारा ली गई फीसें और अन्य धन भारत की संचित निधि का भाग होंगी।

(२) प्रथम अनुसूची के भाग (क) में के

राज्य की न्यायपालिका

उच्च न्यायालय का गठन

प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा। इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रान्त के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करनेवाला उच्च न्यायालय तत्स्थानी राज्य का उच्च न्यायालय समझा जायेगा। प्रत्येक उच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधिपति तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे। लेकिन इन न्यायाधीशों की संख्या उस अधिकतम संख्या से अधिक नहीं होगी जिसे राष्ट्रपति, समय-समय पर उस न्यायालय के सम्बन्ध में आदेश द्वारा नियत करे।

राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति से, उस राज्य के राज्यपाल से तथा मुख्य न्यायाधिपति को छोड़ अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में, वहाँ के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके, उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा। किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के

रूप में नियुक्त किये जाने के लिए कोई व्यक्ति तबतक योग्य नहीं होगा जब-तक कि वह भारत का नागरिक नहीं हो, तथा भारत में कम-से-कम दस साल तक किसी न्यायिक पद पर नहीं रह चुका हो; अथवा प्रथम अनुसूची में के किसी राज्य के उच्च न्यायालय का या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का लगातार कम-से-कम दस वर्ष तक अधिवक्ता नहीं रह चुका हो। किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया प्रत्येक व्यक्ति, अपने पदग्रहण करने के पहले, उस राज्य के राज्यपाल के, अथवा उसके द्वारा इस काम के लिए नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के सामने शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा कि वह संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखेगा, सम्यक् प्रकार से, और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों को भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के विना पालन करेगा तथा संविधान और विधियों की मर्यादा बनाये रखेगा।

प्रत्येक राज्य में के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को ४००० रुपये और अन्य न्यायाधीश को ३,५०० रुपये प्रतिमास के दर से वेतन दिया जायेगा। यदि कोई व्यक्ति इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रान्त में के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति अथवा अन्य न्यायाधीश के पद पर रहा हो और ऐसे प्रारम्भ पर तत्स्थानी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा अन्य न्यायाधीश बन गया हो और यदि वह ऐसे प्रारम्भ के पहले ऊपर दिए हुए दर से अधिक वेतन पाता रहा हो, तो ऐसे व्यक्ति को ऊपर दिये हुए वेतन के अतिरिक्त विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि दी जायेगी जो कि इस वेतन तथा पहले मिलनेवाले वेतन के अन्तर के बराबर हो। प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे वेतन तथा छुट्टी और पेंशन के बारे में ऐसे अधिकार प्राप्त होंगे जैसे कि संसद् विधि द्वारा समय-समय पर निर्धारित करे। जबतक संसद् इस प्रकार निर्धारित नहीं करे, तबतक उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश भारत के भीतर अपने कर्तव्यपालन में की गई यात्रा के खर्च की पूर्ति के लिए ऐसे भत्ते तथा यात्रा-सम्बन्धी ऐसी सुविधायें पाएगा जैसी कि राष्ट्रपति समय-समय पर विहित करे। इसी तरह ऐसे न्यायाधीशों को छुट्टी तथा पेंशन के सम्बन्ध में वही अधिकार प्राप्त होंगे जो इस संविधान

के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी प्रान्त के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को प्राप्त थे। लेकिन न तो किसी न्यायाधीश के भत्ते और न उसके छुट्टी या पेंशन-सम्बन्धी अधिकारों में उसकी नियुक्ति के बाद उसको कोई अलाभकारी परिवर्तन किया जायेगा।

एक बार नियुक्त किये जाने के बाद प्रत्येक न्यायाधीश साठ बरस की आयु तक इस पद पर रहेगा। लेकिन इसके पहले भी राष्ट्रपति के पास त्यागपत्र देकर अपने पद से हट जाने के लिए वह स्वतंत्र रहेगा। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के हटाये जाने का तरीका वही रहेगा जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के लिए है और जिसे यथास्थान ऊपर दिया जा चुका है। राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके भारत में के एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में किसी न्यायाधीश की बदली कर सकेगा। जब किसी न्यायाधीश की इस तरह बदली हो, तब उसे उस कालावधि में, जिसमें कि वह दूसरे न्यायालय में रहता है, अपने वेतन के अलावे मुआवजे के तौर पर (प्रतिकरात्मक Compensatory) ऐसा भत्ता मिलेगा, जैसा संसद विधि द्वारा निर्धारित करे। जबतक संसद इस प्रकार निर्धारित नहीं करे तबतक ऐसे न्यायाधीश को ऐसा प्रतिकरात्मक भत्ता मिलेगा जैसा कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा नियत करे। कोई व्यक्ति, जो इस संविधान के प्रारम्भ के बाद भारत के किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर रह चुका है, भारत के न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के सामने वकालत या कोई दूसरा काम नहीं कर सकेगा।

जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का पद खाली हो अथवा जब वह गैर हाज़िरी या किसी दूसरे कारण से अपने पद के कर्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो, तब उस न्यायालय का कोई ऐसा न्यायाधीश कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति के रूप में कार्य करेगा जिसे राष्ट्रपति इस काम के लिए नियुक्त करे। इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय भी, राष्ट्रपति की पूर्वसम्मति से, किसी व्यक्ति से, जो उस न्यायालय के अथवा किसी दूसरे उच्चन्यायालय के न्यायधीश के पदपर रह चुका है, उस राज्य के उच्चन्यायालय में बैठने

और कार्य करने का निवेदन कर सकेगा। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, इस प्रकार बैठने और कार्य करने के काल में, राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित भत्ते तथा उस न्यायालय के न्यायाधीश के सभी क्षेत्राधिकार, शक्तियाँ और विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, लेकिन वह अन्यथा उस न्यायालय का न्यायाधीश नहीं समझा जायेगा। किन्तु जबतक ऐसा व्यक्ति उस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने तथा कार्य करने की सम्मति न दे, तबतक उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा।

उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियाँ उस न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा निर्देशित अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा। लेकिन उस राज्य का राज्यपाल जिसमें उस न्यायालय का मुख्य स्थान हो, ऐसा नियम बना सकेगा कि खास-खास अवस्थाओं में, किसी व्यक्ति को, न्यायालय से सम्बन्धित किसी पद पर राज्य-लोकसेवा-आयोग से परामर्श किये बिना नहीं नियुक्त किया जाय। यह नियम ऐसे किसी व्यक्ति के लिए नहीं लागू होगा जो पहले से उस न्यायालय के किसी पद पर काम कर रहा हो। राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के अधीन रहते हुए उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसी कि उस न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति नियमों द्वारा विहित करे। मुख्य न्यायाधिपति उस न्यायालय के किसी दूसरे न्यायाधीश या पदाधिकारी को भी इस प्रयोजन के लिए नियम बनाने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। लेकिन इस तरह से बनाए गये नियमों के लिए, जहाँ तक कि वे वेतन, भत्ता, छुट्टी या पेंशन से सम्बन्ध रखते हैं, उस राज्य के राज्यपाल के, जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, अनुमोदन की अपेक्षा होगी। उच्चन्यायालय के सभी प्रशासन-व्यय राज्य की संचित निधि पर भारित होंगे। इस व्यय के भीतर उस न्यायालय के पदाधिकारियों या सेवकों को दिये जानेवाले सभी वेतन, भत्ते और पेंशन भी शामिल हैं। इसी तरह उस न्यायालय द्वारा ली गई फीसें तथा अन्य धन राज्य की संचित निधि के भाग होंगी।

उच्च न्यायालय की शक्तियाँ

प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख-न्यायालय होगा तथा उसे ऐसे न्यायालय

की सभी शक्तियाँ होंगी, जिनमें अपने अवमान के लिए दंड देने की शक्ति भी शामिल है।

इस संविधान के, तथा समुचित विधान-मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के, उपबन्धों के अधीन रहते हुए किसी वर्तमान उच्च-न्यायालय का क्षेत्राधिकार तथा उसमें प्रशासित विधि वैसी ही रहेंगी, जैसी इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले थीं। यही बात उस न्यायालय में न्याय-प्रशासन के सम्बन्ध में उसके न्यायाधीशों की अपनी-अपनी शक्तियों के बारे में भी लागू है, जिनके अन्तर्गत न्यायालय के नियम बनाने की, तथा उसकी बैठकों और उसके सदस्यों के अकेले या संघ न्यायालयों में बैठने के विनियमन करने की, शक्ति भी है। परंतु, इस संविधान के प्रारम्भ से पहले राजस्व-सम्बन्धी किसी काम के बारे में किसी उच्चन्यायालय के आरम्भिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर जो कोई प्रतिबन्ध लागू रहा हो वह आगे नहीं लागू होगा।

प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में के, जिनके सम्बन्ध में वह अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता हो, किसी व्यक्ति या प्राधिकारी के प्रति, या समुचित मामलों में किसी सरकार को निर्देश, आदेश या लेख अथवा उनमें से किसी को निकालने की शक्ति होगी। इनके अन्तर्गत बन्दी-प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी शामिल हैं। ये लेख संविधान द्वारा दिये गये मूल अधिकारो में से किसी को प्रवर्तित कर ने के लिए तथा किसी अन्य प्रयोजन के लिए निकाले जा सकते हैं। उच्च न्यायालय की इस शक्ति से इस सम्बन्ध में संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय को दी हुई शक्ति में किसी तरह की कमी नहीं आयेगी।

प्रत्येक उच्च न्यायालय उन राज्यक्षेत्रों के, जिनके सम्बन्ध में वह क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता हो, सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों का अधिक्षण (Superintendence) करेगा। इस उपबन्ध की व्यापकता पर बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के उच्च न्यायालय विशेष कर ऐसे न्यायालयों से विवरणी (Returns) मँगा सकेगा, उनकी कार्य-प्रणाली और कार्यवाहियों के विनियमन के लिए साधारण नियम बना सकेगा तथा प्रपत्रों (forms) को

विहित कर सकेगा, और इनके पदाधिकारियों द्वारा रखी जानेवाली पुस्तकों, प्रविष्टियों (entries) तथा लेखाओं के प्रपत्रों को विहित कर सकेगा। उच्च न्यायालय उन फीसों की दर भी तय कर सकेगा जो ऐसे न्यायालयों के शेरीफ, सभी किरानियों और पदाधिकारियों, तथा इनमें वकालत करनेवाले न्यायवादियों, अधिवक्ताओं और वकीलों को मिल सकेंगी। लेकिन ये नियम, प्रपत्र या दर तत्समय लागू किसी विधि के उपबन्धों से असंगत नहीं होंगे। इसके अलावे इनके लिए राज्यपाल का पूर्व-अनुमोदन ले लेना जरूरी होगा। परन्तु यहाँ जो कुछ दिया गया है उसका यह अर्थ नहीं होगा कि उच्चन्यायालय को ऐसे न्यायालय या न्यायाधिकरण पर भी अधीक्षण की शक्तियाँ हैं, जो सशस्त्र बलों से सम्बन्धी किसी विधि के अधीन गठित की गई हों।

यदि कभी उच्च न्यायालय यह समझे कि उसके अधीन न्यायालय में पेश हुए किसी मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, जिसका निर्धारित होना उस मामले को निबटाने के लिए आवश्यक है, तो वह उस मामले को उस न्यायालय से हटाकर अपने पास मँगा लेगा। इसके बाद वह या तो उस मामले को खुद निबटा सकेगा या उस विधि-प्रश्न का निर्धारण कर, अपने निर्णय की प्रतिलिपि-सहित उस मामले को फिर उसी न्यायालय के पास लौटा दे सकेगा जहाँ से वह मँगाया गया हो। उस निर्णय के प्राप्त हो जाने पर वह न्यायालय उसका अनुसरण करते हुए उस मामले को निबटाने के लिए आगे कार्यवाही करेगा।

संसद विधि द्वारा किसी उच्चन्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार जिस राज्य में उसका मुख्य स्थान है, उससे भिन्न प्रथम अनुसूची के किसी राज्य में, अथवा उसके भीतर न होनेवाले किसी क्षेत्र में, कर सकेगी। इसी तरह संसद-निर्मित विधि द्वारा यह क्षेत्राधिकार किसी ऐसे राज्य अथवा क्षेत्र से हटाया भी जा सकेगा। जहाँ कोई उच्च न्यायालय, ऐसे राज्य के बाहर, जिसमें उसका मुख्य स्थान है, किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता हो, वहाँ इस संविधान की किसी बात का यह अर्थ नहीं होगा, कि उस राज्य के विधान-मंडल को जिसमें उस न्यायालय का मुख्य स्थान है, उस क्षेत्राधिकार को बढ़ाने, घटाने या खतम करने की शक्ति है। प्रथम अनुसूची

के भाग (क) या (ख) में के किसी राज्य के विधान-मंडल को भी, जिसमें ऐसा कोई क्षेत्र है, उस क्षेत्राधिकार को खतम करने की शक्ति नहीं रहेगी। लेकिन इस उपबन्ध के अधीन रहते हुए, तद्विषयक विधि बनाने की शक्ति रखनेवाले विधान-मंडल को, उस न्यायालय के उस क्षेत्र-सम्बन्धी क्षेत्राधिकार के बारे में ऐसी विधि बनाने की शक्ति रहेगी जैसी कि वह तब बना सकता जबकि उस न्यायालय का मुख्य स्थान उस क्षेत्र में होता।

अधीन न्यायालय

प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के नीचे जिलों, सब डिवीजनों इत्यादि में कई प्रकार के अधीन न्यायालय (Subordinate Courts) रहते हैं। संविधान में उनके सम्बन्ध में भी व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार किसी राज्य में जिला-न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा उनकी पद-स्थापना और पदोन्नति (Posting and promotion) ऐसे राज्य के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्रयोग करनेवाले उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्य का राज्यपाल करेगा। कोई व्यक्ति जिला-न्यायाधीश के पद के लिए नियुक्त किये जाने के योग्य केवल तभी समझा जायेगा जबकि वह कम-से-कम सात वर्षों तक अधिवक्ता या वकील रह चुका हो तथा उच्च-न्यायालय ने उसकी नियुक्ति के लिए सिपारिश की हो। लेकिन यह ऐसे व्यक्ति के लिए आवश्यक नहीं होगा जो पहले से ही संघ अथवा राज्य की सेवा में लगा हुआ हो। जिला-न्यायाधीशों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों की राज्य की न्यायिक सेवा (Judicial service—) में नियुक्ति राज्यपाल द्वारा, राज्य-लोकसेवा-आयोग तथा उच्च न्यायालय से परामर्श के बाद, उसके द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार की जायेगी।

जिला-न्यायालयों तथा उनके अधीन न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित होगा। इसके अन्तर्गत जिला-न्यायाधीश के पद से नीचे के किसी पद पर काम करनेवाले राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों की पद-स्थापना, पदोन्नति और उनको छुट्टी देना भी शामिल है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसे किसी व्यक्ति से उस अपील के अधिकार को छीना जा सकता है जो कि उसकी सेवा की शर्तों का विनियमन करनेवाली

विधि के अधीन उसे प्राप्त हो। उच्च न्यायालय को यह अधिकार भी नहीं रहेगा कि वह ऐसे व्यक्ति की सेवा की, ऐसी विधि के अधीन निश्चित की गई शर्तों के अनुसरण से अन्यथा उससे व्यवहार करे।

राज्यपाल सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा आदेश दे सकेगा कि अधीन न्यायालयों के बारे में ऊपर दिये गये उपबन्ध तथा उनके अधीन बनाये गये कोई नियम राज्यके किसी प्रकार या प्रकारों के दंडाधिकारियों (magistrates) के सम्बन्ध में भी वैसे ही लागू होंगे जिस प्रकार वे न्यायिक सेवा के व्यक्तियों के सम्बन्ध में लागू होते हैं। इनका लागू होना उस तारीख से आरम्भ होगा जो कि राज्यपाल द्वारा नियत की जाय। दंडाधिकारियों पर इस प्रकार लागू होते समय ये उपबन्ध तथा नियम ऐसे अपवादों और रूपभेदों के अधीन रहेंगे जो कि राज्यपाल द्वारा निकाली गई अधिसूचना में उल्लिखित हों।

(३) प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्य की न्यायपालिका

ऊपर जो उपबन्ध दिये गये हैं वे प्रथम अनुसूची के भाग (क) में के राज्य की न्यायपालिका के लिए हैं। लेकिन कार्यपालिका और विधान-मंडल सम्बन्धी उपबन्धों की तरह ही ये उपबन्ध भाग (ख) में के राज्य की न्याय-पालिका पर भी लागू होंगे। भेद सिर्फ यही रहेगा कि ऊपर जहाँ कहीं भी राज्यपाल शब्द का प्रयोग किया गया है, वहाँ भाग (ख) में के राज्य के सम्बन्ध में, राजप्रमुख समझा जायेगा और जहाँ 'प्रान्त' शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ भारतीय राज्य। भाग (क) में के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन की दर संविधान में ही दे दी गई है लेकिन भाग (ख) में के राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन राष्ट्रपति द्वारा राजप्रमुख से परामर्श करने के बाद निर्धारित किया जायगा। इसी तरह जब तक संसद इन न्यायाधीशों के भत्तों तथा छुट्टी और पेंशन-सम्बन्धी अधिकारों को निर्धारित नहीं करे, तब तक ये संविधान में किये गये उपबन्ध के अनुसार नहीं होंगे, बल्कि राष्ट्रपति द्वारा राजप्रमुख से परामर्श करने के पश्चात् निर्धारित किये जायँगे। इनके अतिरिक्त प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) के राज्य की न्यायपालिका में कोई भेद नहीं रहेगा।

(४) प्रथम अनुसूची में के भाग (ग) में के राज्य की न्यायपालिका

संसद विधि द्वारा प्रथम अनुसूची के भाग (ग) में के किसी राज्य के लिए उच्च न्यायालय गठित कर सकेगी। इसी तरह विधि द्वारा संसद ऐसे किसी राज्य में के किसी न्यायालय को, इस संविधान के प्रयोजनों में से सभी या किसी के लिए, उच्च न्यायालय घोषित कर सकेगी। ऊपर प्रथम अनुसूची के भाग (क) के उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में दिये हुए उपबन्ध, ऐसे प्रत्येक उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में भी, ऐसे रूपभेदों और अपवादों के अधीन रह कर, जैसा कि संसद विधि द्वारा तय करे, लागू होंगे। प्रत्येक उच्च न्यायालय, जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले प्रथम अनुसूची के भाग (ग) में के किसी राज्य या उसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता था, ऐसे प्रारम्भ के बाद भी उस राज्य या क्षेत्र के सम्बन्ध में वैसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता रहेगा। लेकिन इस संविधान तथा इस संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर उस विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि का उपबन्धों के अधीन रहते हुए ही ऐसा होगा। ऊपर लिखी हुई किसी बात से, प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में के किसी राज्य के उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को उस अनुसूची के भाग (ग) में के किसी राज्य पर अथवा उस राज्य के भीतर किसी क्षेत्र पर विस्तृत करने की या उससे हटाने की, संसद की शक्ति में किसी तरह की कमी नहीं आयेगी।

भारतीय न्यायपालिका का स्वरूप

न्यायपालिका के सम्बन्ध में भारतीय संविधान द्वारा की गई व्यवस्था ऊपर दी जा चुकी है। अब इसके स्वरूप पर विचार किया जा सकता है। ऐसा करते समय सबसे पहले भारतीय न्यायपालिका की एक बड़ी विशेषता यह मालूम पड़ती है कि अन्य संघीय देशों की तरह यहाँ संघ और राज्य की न्यायपालिका एक दूसरे से बिलकुल अलग-अलग नहीं है। संविधान में इनके सम्बन्ध में जो उपबन्ध हैं, वे अलग-अलग जरूर दिये गये हैं; लेकिन वास्तव में भारत की एक ही न्यायपालिका है। राज्य के उच्च न्यायालय से उच्चतम

न्यायालय में करीब-करीब सभी तरह के मामलों की अपील की जा सकती है। यह उचित ही है। और लाभों के साथ-साथ इससे देश में एकता की भावना भी सुदृढ़ रहेगी। इसीसे एक दूसरी विशेषता भी प्रकट होती है। यहाँ के उच्चतम न्यायालय की शक्ति बहुत व्यापक है। शायद ही किसी संघीय देश के उच्चतम न्यायालय को इतनी शक्ति है। साधारणतः अन्य संघीय देशों में उच्चतम न्यायालय को सिर्फ संघ और राज्य के या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच के विवादों तथा संविधान के निर्वचन के किसी सारवान विधि-प्रश्न से सम्बन्धित मामलों को निबटाने की शक्ति रहती है। लेकिन भारत के उच्चतम न्यायालय को इन शक्तियों के साथ-साथ व्यवहार-विषयों और दंड-विषयों में भी अपील सुनने की शक्ति है। और संघीय देशों की तरह यहाँ के नागरिकों की व्यक्तिगत स्वाधीनता का संरक्षण भी उच्चतम न्यायालय का एक महत्त्वपूर्ण काम है। राज्य के भीतर के क्षेत्र के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को भी इसी तरह की शक्तियाँ प्राप्त हैं। पहले उच्च न्यायालय में राजस्व-सम्बन्धी मामलों पर विचार नहीं हो सकता था। लेकिन अब इस तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं है यहाँ पर विधान-मंडल और न्यायपालिका के बीच के सम्बन्ध पर भी विचार कर लेना उचित होगा। यहाँ विधान-मण्डल को ब्रिटेन की पार्लियामेंट की तरह अपनी इच्छानुसार कोई भी विधि बनाने की शक्ति नहीं है। इसके विपरीत, संविधान में विधान-मण्डल को विधि बनाने की जो शक्ति दी गई है, उसे उसी के भीतर रह कर विधि बनाना पड़ेगा। इस तरह इसके भीतर रह कर संसद या राज्य का विधान-मंडल कोई भी विधि बना सकता है। इसमें न्यायालयों की तरफ से कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर किसी विधान-मंडल द्वारा कोई ऐसी विधि बनाई जाय जिसे बनाने की शक्ति उसे संविधान के अनुसार नहीं है, तो न्यायालयों को इस आधार पर ऐसी विधि को अवैध घोषित करने की शक्ति है। इस तरह से भारतीय न्यायपालिका संविधान के संरक्षण का भी काम करती है। राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय से परामर्श करने की जो शक्ति दी गई है, वह भारतीय न्यायपालिका की एक दूसरी विशेषता है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में न्यायपालिका को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। न्यायालयों के गठन के सम्बन्ध में जो व्यवस्था

की गई है, वह भी बहुत अंशों में प्रशंसनीय है। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की बहाली और बर्खास्तगी के सम्बन्ध में जो उपबन्ध हैं, वे ऐसे हैं जिनसे इन न्यायालयों की स्वतंत्रता और निष्पक्षता बहुत हद तक सुरक्षित हो जाती है। पहले उच्च न्यायालय के कम से कम एक तिहाई न्यायाधीशों का इंडियन सिविल सर्विस का सदस्य होना जरूरी था। लेकिन अब इस तरह का कोई उपबन्ध नहीं है। अधीन न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति में उच्च न्यायालय का बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ रहेगा। इसके अलावे इन न्यायालयों पर नियंत्रण की शक्ति भी उच्च न्यायालय में ही निहित रहेगी। इसका परिणाम भी लाभदायक ही होगा। यह भी स्पष्ट है कि भारत में फ्रांस और यूरप के कुछ अन्य देशों की तरह सरकारी अफसरों के लिए अलग कोई विशेष न्यायालय नहीं रहेगा, बल्कि ब्रिटेन की तरह सभी तरह के मुकदमे एक ही प्रकार के न्यायालय में देखे जायँगे—चाहे उनका सम्बन्ध साधारण नागरिकों से हो, चाहे सरकारी कर्मचारियों से। इस प्रकार यहाँ विधि का शासन रहेगा जो सराहनीय है।

लेकिन यह सब होते हुए भी न्यायपालिका सम्बन्धी उपबन्ध बिलकुल दोष-रहित नहीं कहे जा सकते। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अपने पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद भारत के किसी न्यायालय में वकालत का पेशा तो नहीं कर सकते, लेकिन अगर वे कोई दूसरी नौकरी करना चाहें तो इसमें संविधान कोई बाधा नहीं उपस्थित करता है। यह एक कमी मालूम पड़ती है। इन न्यायालयों को बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना निर्णय देना पड़ता है। इन प्रश्नों में कभी-कभी देश के मंत्री या राजनीतिक पार्टियों के नेता भी दिलचस्पी रखते हैं। कभी ऐसा भी हो सकता है कि न्याया-धीश के पद से हटने के बाद या उसके पहले ही किसी दूसरे पद की लालच में कोई न्यायाधीश किसी मंत्रिमंडल को खुश करने के ख्याल से अपने निर्णयों को उसके अनुकूल बनाने की कोशिश करे। आमतौर पर ऐसा होना नहीं चाहिए, लेकिन मानव स्वभाव को ध्यान में रखते हुए अच्छा यही होता कि न्यायाधीशों को किसी तरह के लोभ में फँसने का मौका ही नहीं रहता। नियंत्रक, महालेखा-परीक्षक और लोकसेवा आयोग के सभापति और सदस्यों के सम्बन्ध में संविधान

में यह व्यवस्था की गई है कि वे कोई नौकरी नहीं कर सकते। न्यायाधीशों के सम्बन्ध में भी इसी तरह की व्यवस्था कर दी जाती तो बहुत अच्छा होता।

इससे भी एक बड़ा दोष दूसरा है। वही न्याय-व्यवस्था ठीक कही जा सकती है जिसमें न्यायपालिका को कार्यपालिका से बिलकुल अलग रखा जाय। अगर कार्यपालिका के व्यक्ति ही मुकदमों का फैसला करना शुरू कर दें, तो उनसे सभी अवस्थाओं में न्याय की आशा नहीं की जा सकती है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे आजकल राजनीति शास्त्र के करीब-करीब सभी विद्वान मानते हैं। इस कथन की सत्यता को बहुत आसानी से समझा भी जा सकता है। ऐसे बहुत से अवसर आते हैं जब खुद सरकार की तरफ से किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाता है। ऐसी हालत में एक ही व्यक्ति मुकदमा चलाने वाला और उसका फैसला करने वाला हो जा सकता है। ऐसे व्यक्ति से कहाँ तक न्याय की आशा की जा सकती है, यह सभी समझ सकते हैं। अंग्रेजी शासन के जमाने में देश की सभी राष्ट्रीय और प्रगतिशील संस्थाओं द्वारा इस कमी को दूर करने की अनेक बार माँग की गई थी। यह माँग उपस्थित करने वालों में कांग्रेस सबसे आगे थी। लेकिन संविधान में इसकी व्यवस्था नहीं की गई। राजनीति के निर्देशक तत्त्वों में इसे अवश्य स्थान दिया गया है; लेकिन इन तत्त्वों पर चलने के लिए किसी सरकार को बाध्य तो नहीं किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय पर तो कार्यपालिका का कोई प्रभाव नहीं है, लेकिन अधीन न्यायालयों में बहुत से न्यायालय ऐसे हैं जिनके न्यायाधीश के पद पर कार्यपालिका के व्यक्ति काम कर रहे हैं और वे कार्यपालिका के ही अधीन हैं। कई राज्यों में इस कमी को दूर करने और कार्यपालिका के व्यक्तियों के हाथ से न्याय का काम हटा लेने की कोशिश जरूर हो रही है। लेकिन इसमें प्रगति बहुत कम है और इस तरह से इस काम के पूरे होने में अभी बहुत देर लगेगी। इसलिए संविधान में ही इस के लिए समुचित व्यवस्था रहनी चाहिए थी।

अध्याय १४

संघ और राज्यों के अधीन सेवाएँ

शासन के क्षेत्र में सरकारी या सार्वजनिक सेवकों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। विधान-मंडल विधि बनाता है, मंत्रिमंडल नीति निर्धारित करता है, लेकिन इन सभी को व्यवहार में लागू करना सरकारी सेवकों का ही काम है। इसलिए प्रत्येक विधि या नीति की सफलता बहुत अंशों में सरकारी सेवकों पर ही निर्भर करती है। साधारण जनता का सब से अधिक सम्पर्क इन्हीं से होता है। इसलिए किसी सरकार के बारे में अपनी राय कायम करते समय जनता बहुत कुछ इनके रुख से भी प्रभावित होती है। आजकल जैसे-जैसे सरकार के कामों का क्षेत्र बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे इन सेवकों का महत्त्व भी बढ़ता जाता है। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि ऐसा प्रबन्ध रहना चाहिए जिसमें समाज के योग्य से योग्य व्यक्ति सरकारी सेवकों के रूप में नियुक्त किये जायँ। योग्यता के अतिरिक्त और कोई कसौटी नहीं रहनी चाहिए। यह तभी सम्भव है जब इनको नियुक्त करने का काम सीधे मंत्रिमंडल के हाथ में नहीं रहे। मंत्रिमंडल में राजनीतिक पार्टियों के नेता रहते हैं और उनका दलगत स्वार्थों से प्रभावित होना स्वाभाविक है। इसके अलावे उनके पास बहुत लोगों की पहुँच रहती है। इसलिए लोग उनके पास तरह-तरह की सिफारिश पहुँचा कर निष्पक्ष नियुक्ति में बाधा उपस्थित कर सकते हैं। इसलिए लोक-सेवाओं में भर्ती का काम किसी दूसरी संस्था के जिम्मे रहना चाहिए। वह संस्था ऐसी रहे जिसके सदस्य उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की तरह मंत्रिमंडल से बिलकुल स्वतंत्र रह कर काम कर सकें। भर्ती का तरीका भी ऐसा होना चाहिए जिसमें सभी योग्य व्यक्तियों को समान अवसर मिले। तभी योग्य से योग्य व्यक्ति लोक-सेवाओं में भर्ती हो सकेंगे।

भर्ती के बाद इनकी सेवा की शर्तों का प्रश्न उपस्थित होता है। यह स्पष्ट है कि इन्हें मंत्रिमंडल के अधीन रहना पड़ेगा। इन्हें मंत्रिमंडल द्वारा निर्धारित कार्यक्रम को ही लागू करना पड़ता है। इसके अलावे शासन की

सफलता-असफलता के लिए जनता और विधान-मंडल के सामने मंत्री ही उत्तरदायी होते हैं। ऐसी अवस्था में मंत्रिमंडल और लोक-सेवकों के बीच अधिक से अधिक सहयोग की आवश्यकता है। यह तभी होगा जब ये सेवक मंत्रि-मंडल के अधीन रहें और उसकी आज्ञा के मुताबिक कार्य करें। लेकिन इसके साथ ही साथ यह भी उतना ही आवश्यक है कि सरकारी सेवकों के काम में मंत्रि-मंडल की ओर से अनुचित हस्तक्षेप नहीं सम्भव हो। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि मंत्रिगण अपने दलगत स्वार्थ के लिए लोकसेवकों के अधिकारों का अनुचित प्रयोग कराना चाहें। इन सेवकों के लिए इस अनुचित प्रयोग से बचे रहने का रास्ता रहना चाहिए। मंत्रिमंडल बदलते रहते हैं। आज एक पार्टी का मंत्रिमंडल है तो कल दूसरी पार्टी का; लेकिन सरकारी सेवक स्थायी होते हैं। अगर वे एक पार्टी के साथ सम्बन्धित हो जायँ, तो दूसरी पार्टी का मंत्रिमंडल बनने पर उसके साथ सहयोग करना और उसका विश्वास-भाजन बनना इनके लिए कठिन हो जायगा। इसीलिए आज सभी यह स्वीकार करते हैं कि सरकारी सेवक राज्य के नौकर होते हैं, किसी खास पार्टी के नहीं। लेकिन यह तो तभी हो सकता है जब मंत्रियों के अनुचित हस्तक्षेप और दबाव से बच कर स्वतंत्रता के साथ काम करना इन सेवकों के लिए सम्भव हो। इनकी सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में व्यवस्था करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए। इसी पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान में संघ और राज्यों की अधीनस्थ सेवाओं के बारे में की गई व्यवस्था पर विचार किया जायगा।

(१) सेवाएँ

इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, समुचित विधान-मंडल के अधिनियमों द्वारा, संघ अथवा किसी राज्य के कार्यों से सम्बद्ध लोक-सेवाओं और पदों के लिए भर्ती का, तथा भर्ती किये गये व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन किया जा सकेगा। लेकिन जब तक समुचित विधान-मंडल के अधिनियम द्वारा इन बातों की व्यवस्था नहीं की जाती तब तक यथास्थिति राष्ट्रपति को अथवा राज्यपाल या राजप्रमुख को संघ अथवा राज्य की लोक सेवाओं के सम्बन्ध में व्यवस्था करने के लिए नियम बनाने की शक्ति होगी। राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी इस तरह के नियम बनाये जा सकेंगे। जब तक इस संविधान के अधीन

इसके लिए अन्य उपबन्ध नहीं किया जाता, तब तक वे सभी विधियाँ, जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले लागू थीं तथा जो किसी ऐसी लोक-सेवा या पद के बारे में हैं, जो इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् अखिल भारतीय सेवा अथवा संघ या राज्य के अधीन सेवा या पद के रूप में बने रहते हैं, वहाँ तक लागू होती रहेंगी जहाँ तक कि वे इस संविधान के उपबन्धों से असंगत नहीं हों।

इस संविधान द्वारा स्पष्टतापूर्वक उपबन्धित अवस्था को छोड़ कर प्रत्येक व्यक्ति, जो संघ की प्रतिरक्षा (Defence) सेवा या असैनिक (Civil) सेवा का या किसी अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है, राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करता है। इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति जो राज्य के किसी असैनिक पद पर है, यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर रहता है। इस बात के होते हुए भी, कोई संविदा, जिसके अधीन कोई व्यक्ति जो ऊपर दी हुई किसी सेवा का सदस्य नहीं है, संघ या राज्य के अधीन किसी असैनिक पद के लिए नियुक्त किया जाता है, यह उपबन्ध कर सकेगी कि यदि करार की हुई कालावधि की समाप्ति से पहले उस पद का अन्त कर दिया जाय अथवा उसके द्वारा किये गये किसी अविचार (misconduct) से असम्बद्ध कारणों के लिए उसे वह पद छोड़ना पड़े, तो उसे मुआवजा दिया जायगा। किसी संविदा में इस तरह का उपबन्ध तभी किया जायगा जब यथा-स्थिति राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल या राजप्रमुख यह समझे कि विशेष योग्यता वाले किसी व्यक्ति की सेवा पाने के लिए यह आवश्यक है।

जो व्यक्ति संघ की असैनिक सेवा या किसी अखिल भारतीय सेवा या राज्य की असैनिक सेवा का सदस्य है, वह अपनी नियुक्ति करनेवाले प्राधिकारी से नीचे के किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जायगा अथवा अपने पद से नहीं हटाया जायगा। इस प्रकार का कोई व्यक्ति तब तक पदच्युत नहीं किया जायगा या अपने पद से नहीं हटाया जायगा अथवा अपने स्थान से नीचे नहीं किया जायगा, जबतक कि उसे, उसके बारे में की जानेवाली कार्यवाही के खिलाफ कारण दिखाने अर्थात् अपनी सफाई पेश करने का अवसर नहीं दिया गया हो। लेकिन यह वहाँ नहीं लागू होगा जहाँ कोई व्यक्ति ऐसे किसी आचार के आधार पर हटाया गया या पदच्युत या पंक्तिच्युत

(Reduced in rank) किया गया हो जिसके लिए दंड-दोषारोप (Criminal charge) की उसे सजा मिल चुकी हो; अथवा जहाँ किसी व्यक्ति को हटाने या पदच्युत या पंक्तिच्युत करनेवाला प्राधिकारी यह समझे कि किसी कारण से, जिसे वह लेखबद्ध (Record) करेगा, यह व्यवहार्य नहीं है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाय, अथवा जहाँ यथा-स्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल या राजप्रमुख यह समझे कि राज्य की सुरक्षा के हित में उस व्यक्ति को ऐसा अवसर देना इष्टकर (Expedient) नहीं है। यदि कभी कोई प्रश्न पैदा हो कि ऊपर दिये हुए उपबन्ध के अधीन किसी व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर देना व्यवहार्य है या नहीं, तो इस पर ऐसे व्यक्ति को यथास्थिति पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्तिच्युत करनेवाले प्राधिकारी का निर्णय अन्तिम होगा।

यदि राज्य-परिषद् ने उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों की कम से कम दो तिहाई संख्या द्वारा समर्पित प्रस्ताव द्वारा घोषित कर दिया हो कि राष्ट्र-हित में ऐसा करना आवश्यक या इष्टकर है, तो संसद विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए उपबन्ध कर सकेगी। साथ ही साथ संसद किसी ऐसी सेवा के लिए भर्ती का, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का, विनियमन कर सकेगी। इस संविधान के प्रारम्भ पर भारत प्रशासन सेवा (Indian Administrative Service) तथा भारत आरक्षी सेवा (Indian Police Service) नाम से ज्ञात सेवाएँ संसद द्वारा इस तरह सृजित सेवाएँ समझी जायँगी।

भारत के स्वतंत्र होने के पहले यहाँ के बड़े-बड़े सरकारी सेवक, जैसे इंडियन सिविल सर्विस या इंडियन पुलिस सर्विस के सदस्य, भारत के भीतर के किसी प्राधिकारी द्वारा नहीं, बल्कि सेक्रेटरी आफ स्टेट फॉर इंडिया अर्थात् भारत-मंत्री द्वारा नियुक्त किये जाते थे और वेतन, सेवा की शर्तों इत्यादि के विषय में उन्हें विशेष सुविधाएँ दी जाती थीं। इनमें से बहुत से सेवक तो भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद पेंशन लेकर अपने पद से अलग हट गये। लेकिन बहुतों ने इसके बाद भी अपने पदों पर रह कर संघ अथवा राज्य की सेवा करते रहना जारी रखा। इनके ऊपर से भारत-मंत्री का नियंत्रण तो

खतम हो गया, लेकिन इनकी सभी सुविधाएँ, जो इन्हें पहले प्राप्त थीं, संविधान में सुरक्षित कर दी गई हैं और उनमें इनको अलाभकारी कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। संविधान के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को, जिसे सेक्रेटरी आफ स्टेट या सेक्रेटरी आफ स्टेट-इन-कौंसिल द्वारा भारत में सम्राट की सेवा में नियुक्त किया गया था तथा जो इस संविधान के प्रारम्भ के बाद भारत संघ या किसी राज्य की सरकार के अधीन सेवा में बना रहता है, यथास्थिति भारत सरकार या राज्य की सरकार से पारिश्रमिक, छुट्टी और पेंशन के बारे में वही सेवा-शर्तें तथा अनुशासन-सम्बन्धी विषयों के बारे में वही अधिकार अथवा उनके बराबर ऐसे अधिकार, जैसा कि बदली हुई परिस्थितियों में सम्भव हों, प्राप्त होंगे, जो कि उस व्यक्ति को ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले प्राप्त थे।

(२) लोकसेवा-आयोग

लोकसेवा-आयोगों का गठन

संघ के लिए तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोकसेवा-आयोग रहेगा। लेकिन दो या अधिक राज्य आपस में यह करार कर सकेंगे कि उन सभी के लिए एक ही आयोग रहेगा। जब वे इस तरह का करार कर लें और उनमें से प्रत्येक के विधान-मंडल द्वारा इस आशय का प्रस्ताव पास हो जाय, तब संसद विधि द्वारा उन राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संयुक्त लोकसेवा-आयोग की नियुक्ति का उपबन्ध कर सकेगी। यदि किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख, संघ के लोकसेवा-आयोग से ऐसा करने की प्रार्थना करे, तो वह, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, उस राज्य की सब या किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य करना स्वीकार कर सकेगा। संघ के या राज्य के लोकसेवा-आयोग के व्यय यथास्थिति भारत की या राज्य की संचित निधि पर भारित होंगे। इस व्यय के अन्तर्गत आयोग के सदस्यों या कर्मचारी-वृन्द को दिये जानेवाले वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं।

संघ-लोकसेवा-आयोग तथा संयुक्त लोकसेवा-आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायगी। इसी तरह राज्य-लोकसेवा-आयोग के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों को राज्यपाल या राजप्रमुख नियुक्त करेगा। लेकिन प्रत्येक लोकसेवा-आयोग के सदस्यों में से यथाशक्य निकटतम

आधे ऐसे व्यक्ति होंगे, जो अपनी-अपनी नियुक्तियों की तारीख के समय भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष तक किसी पद पर रह चुके हों। लोकसेवा-आयोग का सदस्य, अपने पद-ग्रहण की तारीख से छः वर्ष की अवधि तक, अपने पद पर रहेगा। लेकिन संघ-आयोग का कोई सदस्य पैंसठ वर्ष की आयु तक तथा राज्य-आयोग का सदस्य साठ वर्ष की आयु तक ही अपने पद पर रह सकेगा। इसलिए इस आयु को प्राप्त कर लेने पर, छः साल की अवधि के खतम होने में देर रहने पर भी, उसे अपने पद से अवकाश-ग्रहण करना पड़ेगा। लेकिन इसके पहले भी, लोकसेवा-आयोग का कोई सदस्य, यदि वह संघ-आयोग या संयुक्त आयोग है तो, राष्ट्रपति को, तथा यदि वह राज्य-आयोग है तो, राज्यपाल या राजप्रमुख को त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो सकेगा। कोई व्यक्ति, जो लोकसेवा-आयोग का सदस्य हो, अपने पद की अवधि की समाप्ति के बाद फिर उस पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकेगा।

लोकसेवा-आयोग का सभापति या अन्य कोई सदस्य अपने पद से कदाचार के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा दिये गये आदेश पर ही हटाया जा सकेगा। लेकिन इसके पहले राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय की राय अवश्य लेगा और इस तरह का आदेश वह तभी निकालेगा जब कि उच्चतम न्यायालय ने जाँच करके यह रिपोर्ट दे दी हो कि यथास्थिति सभापति या ऐसे किसी सदस्य को, ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाय। आयोग के सभापति या अन्य किसी सदस्य को, जिसके सम्बन्ध में इस तरह से उच्चतम-न्यायालय की राय माँगी गई हो, यदि वह संघ-आयोग या संयुक्त आयोग हो, तो राष्ट्रपति तथा, यदि वह राज्य-आयोग हो, तो राज्यपाल या राजप्रमुख, उसके पद से तब तक के लिए विलम्बित (Suspend) कर सकेगा जब तक कि उच्चतम न्यायालय की रिपोर्ट मिलने पर राष्ट्रपति अपना आदेश न दे। लेकिन ऊपर दिये गये उपबंध के होते हुए भी राष्ट्रपति लोकसेवा-आयोग के सभापति या किसी अन्य सदस्य को आदेश द्वारा उसके पद से हटा सकेगा, यदि यथास्थिति वह सभापति या अन्य सदस्य दिवालिया हो गया हो अथवा अपनी पदावधि में अपने पद के कर्तव्यों से बाहर कोई वैतनिक नौकरी करता हो अथवा राष्ट्रपति

की राय में मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण अपने पद पर रहने के लिए अयोग्य हो। यदि लोकसेवा-आयोग का सभापति या अन्य कोई सदस्य, भारत सरकार या किसी राज्य की ओर से की गई किसी संविदा या करार से, किसी कम्पनी के सदस्य की हैसियत के सिवाय, किसी प्रकार से भी सम्बन्धित हो जाता है अथवा उससे होनेवाले लाभ में भाग लेता है तो वह ऊपर दिये गये उपबन्ध के प्रयोजनों के लिए कदाचार का अपराधी समझा जायगा।

संघ-आयोग या संयुक्त-आयोग के बारे में राष्ट्रपति तथा राज्य-आयोग के बारे में उस राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख विनियमों द्वारा आयोग के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवा की शर्तों को निर्धारित कर सकेगा और आयोग के कर्मचारी-वृन्द के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में उपबन्ध कर सकेगा। लेकिन लोकसेवा-आयोग के सदस्य की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के बाद उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा।

लोकसेवा-आयोग का सभापति का कोई अन्य सदस्य भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी भी दूसरी नौकरी के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकेगा। लेकिन संघ-लोक-सेवा-आयोग के सभापति को छोड़कर अन्य सभी व्यक्ति संविधान में किये गये उपबन्धों के अनुसार, संघ या राज्य के लोकसेवा-आयोग के सभापति या अन्य सदस्य के रूप में नियुक्त किये जा सकेंगे। ये उपबन्ध यहाँ पर दिये जा रहे हैं—"राज्य के लोक-सेवा-आयोग का सभापति संघ-लोक-सेवा-आयोग के सभापति या अन्य सदस्य के रूप में अथवा किसी अन्य राज्य के लोकसेवा-आयोग के सभापति के रूप में नियुक्त किया जा सकेगा। संघ-लोक सेवा-आयोग के सभापति को छोड़कर अन्य कोई सदस्य उस आयोग के, अथवा राज्य-लोक-सेवा-आयोग के, सभापति के रूप में नियुक्त किया जा सकेगा। इसी तरह किसी राज्य के लोकसेवा-आयोग के सभापति को छोड़कर अन्य कोई सदस्य संघ-लोकसेवा-आयोग के सभापति या किसी अन्य सदस्य के रूप में, अथवा उसी या किसी अन्य राज्य-लोकसेवा-आयोग के सभापति के रूप में नियुक्त होने का पात्र होगा।"

लोक-सेवा-आयोगों के काम

संघ और राज्य के लोक-सेवा-आयोगों का कर्तव्य होगा कि वे क्रमशः संघ तथा राज्य की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाओं का संचालन करें। यदि संघ-लोक-सेवा-आयोग से कोई दो या अधिक राज्य ऐसा करने के लिए निवेदन करें, तो उसका यह भी कर्तव्य होगा कि वह ऐसी किन्हीं सेवाओं के लिए, जिनके लिए विशेष योग्यता रखनेवाले व्यक्तियों की आवश्यकता है, संयुक्त भर्ती की योजनाओं के बनाने तथा उन्हें चलाने में उन राज्यों की सहायता करे। यथास्थिति संघ या राज्य-लोकसेवा-आयोग से, असैनिक सेवाओं के लिए भर्ती की रीतियों; नियुक्ति, पदोन्नति और बदली की उपयुक्तता; अनुशासन-विषयों; और खर्च तथा पेंशन के लिए दावे सम्बन्धी सभी बातों पर, परामर्श किया जायगा। यथास्थिति राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल या राजप्रमुख इन विषयों के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर भी लोकसेवा आयोग से परामर्श कर सकता है। इस तरह से परामर्श के लिए सौंपे गये प्रत्येक विषय पर अपनी राय देना लोकसेवा आयोग का कर्तव्य होगा। किन्तु अखिल भारतीय सेवाओं और पदों के बारे में राष्ट्रपति तथा राज्य के कार्यों से सम्बन्ध रखनेवाली सेवाओं और पदों के बारे में यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख, विनियम बना कर उन विषयों का उल्लेख कर सकेगा, जिनके लिए साधारणतया अथवा किसी विशेष वर्ग के मामले में अथवा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लोक-सेवा-आयोग से परामर्श किया जाना आवश्यक नहीं होगा। इस तरह से बनाये गये सभी विनियम यथासम्भव शीघ्र यथास्थिति संसद के अथवा राज्य के विधानमंडल के सामने कम से कम चौदह दिनों के लिए रखे जायँगे। उनके इस प्रकार रखे जाने के बाद वे यथास्थिति संसद या राज्य के विधान-मंडल द्वारा रद्द या संशोधित भी किये जा सकते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में लोक-सेवाओं में नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिए उपबन्ध बनाने अथवा अधीन न्यायालयों पर उच्च न्यायालय के नियन्त्रण के भीतर आनेवाली बातों के सम्बन्ध में भी लोकसेवा-आयोग से परामर्श करना आवश्यक है। यथास्थिति संसद अथवा राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित अधिनियम लोक-सेवा-आयोग के कामों को और भी बढ़ा सकेगा। इन कामों

के भीतर किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा सार्वजनिक संस्था की सेवाओं के बारे में किये जाने वाले काम भी हैं।

संघ-आयोग का कर्तव्य होगा कि वह प्रति वर्ष आयोग द्वारा किये गये कामों के बारे में राष्ट्रपति को रिपोर्ट दे। ऐसी रिपोर्ट के मिलने पर राष्ट्रपति उसकी प्रतिलिपि को संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखवायेगा। इसके साथ ही साथ उन मामलों का विवरण भी रखा जायगा जिनमें कि आयोग का परामर्श नहीं स्वीकार किया गया तथा उसका कारण भी स्पष्ट किया जायगा। राज्य-आयोग द्वारा राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख को तथा संयुक्त आयोग द्वारा ऐसे राज्यों में से, जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति संयुक्त आयोग द्वारा की जाती हो, प्रत्येक के राज्यपाल या राजप्रमुख को भी प्रति वर्ष इसी तरह की रिपोर्ट दी जायगी। राज्यपाल या राजप्रमुख भी इस रिपोर्ट की प्रतिलिपि को समान विवरण तथा स्पष्टीकरण के साथ राज्य के विधान-मंडल के सामने रखवायेगा।

लोक-सेवाओं की स्थिति

संघ और राज्य की अधीनस्थ सेवाओं के सम्बन्ध में भारतीय संविधान में जो उपबन्ध किये गये हैं, उन्हें ऊपर दे दिया गया है। उनको पढ़ जाने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि ये उपबन्ध बहुत अंशों में आदर्श हैं। लोक-सेवाओं में बहाली लोक-सेवा-आयोगों के परामर्श के अनुसार की जायगी। इसके अलावे लोक-सेवाओं के सदस्यों के सम्बन्ध में करीब-करीब सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर लोक-सेवा-आयोग से परामर्श किया जायगा। साधारणतः किसी को बिना अपनी सफाई पेश करने का मौका दिये हुए उसके पद से हटाया नहीं जायगा। लोकसेवा-आयोगों के सम्बन्ध में जो उपबन्ध हैं वे भी प्रशंसनीय हैं। नियुक्ति और बर्खास्तगी की दृष्टि से इन आयोगों के सदस्यों की स्थिति करीब-करीब उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की तरह रहेगी। इससे इनके लिए एकदम निष्पक्ष और स्वतन्त्र होकर अपना काम कर सकना सम्भव हो सकेगा। संयुक्त आयोगों की स्थापना सम्भव बनाकर भी उचित ही किया गया है। इसी तरह संघ और राज्यों के लिए कुछ सम्मिलित सेवाओं के सृजन की व्यवस्था भी लाभदायक सिद्ध होगी। इन सेवाओं के सदस्य राज्य के मन्त्रियों के अनुचित हस्तक्षेप से और भी अधिक स्वतन्त्र होकर अपना काम कर सकेंगे।

लेकिन भारतमन्त्री की सेवाओं के सम्बन्ध में दिये गये उपबन्धों की सराहना नहीं की जा सकती। उनके सदस्यों को आवश्यकता से अधिक वेतन दिया जाता था। उस समय ब्रिटेन के हितों की दृष्टि से यह उचित कहा जा सकता था, क्योंकि भारत में ब्रिटिश शासन के ये मुख्य आधार थे। लेकिन अब भी उनको उसी दर से वेतन मिलता रहे, इसके लिए कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता है। संविधान में इसे सुरक्षित कर देने का यह परिणाम होगा कि अगर कोई सरकार इसे कम करना भी चाहे, तब भी यह कम नहीं किया जा सकता है। यह सर्वथा अनुचित है। सरकार को देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए लोकसेवकों के वेतन की दर इत्यादि में परिवर्तन करने का अधिकार रहना चाहिए। अन्य सेवकों के सम्बन्ध में सरकार के इस अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। इसके अलावे न्याय की दृष्टि से भी यह दोषपूर्ण जान पड़ता है। अगर इतना अधिक वेतन पानेवाले सेवकों का वेतन सुरक्षित करना उचित समझा गया तो न्याय यही कहता है कि कम वेतन पाने-वाले सेवकों और साधारण मजदूरों का वेतन भी सुरक्षित कर देना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं किया गया है।

अध्याय २६

निर्वाचन

भारतीय संविधान के अनुसार इस देश में जनतन्त्र की स्थापना की कोशिश की गई है। जनतन्त्र की एक मुख्य विशेषता यह है कि वहाँ समय-समय पर निर्वाचन होते हैं और उन निर्वाचनों में जिनको बहुमत प्राप्त होता है, उन्हीं की सरकार बनती है। ऐसी अवस्था में स्वतन्त्र निर्वाचन का बहुत अधिक महत्त्व है। अगर यह कहा जाय कि बहुत अंशों में इसी पर जनतंत्र की सफलता निर्भर करती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अगर निर्वाचन में धाँधली होने लगे और सरकार उसमें अनुचित हस्तक्षेप करना शुरू कर दे, तो मतदान के जरिये सरकार नहीं बदली जा सकती है। अगर यह स्पष्ट हो जाय और लोगों का विश्वास जम जाय कि स्वतंत्र मतदान संभव नहीं है, तो विरोधी पार्टी के लोग चुनाव का मार्ग छोड़कर सशस्त्र क्रांति का मार्ग अपनाने के लिए बाध्य होंगे। इसलिए संविधान को कायम रखने, शांतिपूर्ण राजनीतिक जीवन बनाये रखने और बिना खून-खराबी के परिवर्तन सम्भव करने के लिए स्वतंत्र निर्वाचन की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। ब्रिटेन में जनतन्त्र के इतने दिनों से और इतनी मजबूती से टिके रहने का यह एक प्रधान कारण है कि वहाँ स्वतन्त्र निर्वाचन संभव है। दूसरे देश में भी ऐसा हो सके इसके लिए यह परम आवश्यक है कि निर्वाचन का संचालन ऐसे लोगों के हाथ में रहे जो सरकार के अनुचित हस्तक्षेप से स्वतन्त्र हों।

निर्वाचन के संबन्ध में यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि मतदान का अधिकार किस आधार पर दिया जाय। आज करीब-करीब सभी देशों में बालिग मताधिकार का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार देश के भीतर बसनेवाले प्रत्येक बालिग को, चाहे वह धनी हो या गरीब, स्त्री हो या पुरुष, वोट का अधिकार दिया जाता है। लेकिन यह समझना गलत होगा कि यह सिद्धान्त बिना किसी कठिनाई के ही स्वीकार कर लिया गया है। इसके विपरीत स्वयं ब्रिटेन में—जो कम से कम राजनीतिक दृष्टि से सबसे सफल

जनतन्त्र का नमूना समझा जाता है—पूर्णरूप से यह सिद्धांत कहीं जाकर १९२८ में स्वीकार किया गया। भारत में अंग्रेजी राज के जमाने में यह सिद्धान्त कभी नहीं लागू किया गया। १९३५ के ऐक्ट के अधीन भी पन्द्रह फी सदी से अधिक लोगों को वोट देने का अधिकार नहीं दिया गया था।

अंग्रेजों के शासनकाल में एक और विशेषता यह थी कि यहाँ पर सांप्रदायिक निर्वाचन-पद्धति लागू की गई थी। इसके अनुसार विधानमण्डलों के सदस्यों का चुनाव साम्प्रदायिक आधार पर होता था। प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग जैसे, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, अलग-अलग अपने प्रतिनिधियों को चुनते थे। इससे भारत को जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति तो शायद ही कभी संभव हो। इससे साम्प्रदायिकता के विकास में बहुत मदद मिली और एकता की भावना कमजोर पड़ने लगी। देश के दो टुकड़े होने में इस साम्प्रदायिक निर्वाचन-पद्धति का बहुत बड़ा हाथ था, इसे सभी स्वीकार करते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर नहीं होना चाहिए। इस पृष्ठभूमि में, निर्वाचन के सम्बन्ध में भारतीय संविधान में जो व्यवस्था की गई है, उस पर विचार किया जायगा।

संविधान के उपबन्ध

संविधान के अनुसार संसद और प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल के निर्वाचन के लिए नामावलि (Electoral Rolls) तैयार कराने का, उन समस्त निर्वाचनों के संचालन का, तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण (Superintendence, direction and control) एक आयोग में निहित होगा जो निर्वाचन-आयोग कहलायेगा। संसद तथा राज्यों के विधान-मंडलों से सम्बन्ध रखनेवाले सन्देहों और विवादों के निर्णय के लिए निर्वाचन-न्यायाधिकरण की नियुक्ति का काम भी निर्वाचन-आयोग के ही जिम्मे रहेगा। निर्वाचन-आयोग मुख्य निर्वाचन-आयुक्त (Chief Election Commissioner) तथा, यदि कोई हों तो, अन्य उतने निर्वाचन-आयुक्तों से, जितने कि राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिल कर बनेगा। मुख्य निर्वाचन-आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन-आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा इसके लिए बनोई गई किसी विधि के अधीन रहते हुए,

राष्ट्रपति द्वारा की जायगी। अगर कभी कोई अन्य निर्वाचन-आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया जाय, तो मुख्य निर्वाचन-आयुक्त निर्वाचन-आयोग के सभापति के रूप में कार्य करेगा। राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग से परामर्श करके उसके काम में सहायता देने के लिए आवश्यकतानुसार प्रादेशिक आयुक्त Regional Commissioners भी नियुक्ति कर सकेगा। इस तरह के प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति, लोकसभा और प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पूर्व, तथा विधान-परिषद् वाले प्रत्येक राज्य की विधान परिषद् के लिए पहले साधारण निर्वाचन तथा इसके बाद प्रत्येक द्विवार्षिक (Biennial) निर्वाचन से पूर्व की जा सकेगी।

संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुए निर्वाचन-आयुक्तों तथा प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पद की अवधि ऐसी होंगी जैसा कि राष्ट्रपति नियम द्वारा तय करे। लेकिन मुख्य निर्वाचन-आयुक्त अपने पद से वैसे ही कारणों और वैसी ही रीति से हटाया जा सकता है जैसे कारणों और रीति से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जा सकता है। साथ ही साथ, उसकी नियुक्ति के बाद उसकी सेवा की शर्तों में उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा। किसी अन्य निर्वाचन-आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को भी, मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की सिफारिश के बिना, उसके पद से नहीं हटाया जायगा। जब निर्वाचन-आयोग इसके लिए प्रार्थना करे तब, राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख निर्वाचन-आयोग या प्रादेशिक आयुक्त को, अपने काम करने में सहायता पहुँचाने के लिए, आवश्यक कर्मचारी-वृन्द दिये जाने की व्यवस्था करवायेगा।

संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के निर्वाचन के लिए प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र (Territorial Constituency) के लिए एक साधारण निर्वाचक-नामावलि होगी। कोई व्यक्ति केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर ऐसी किसी नामावलि में सम्मिलित किये जाने के लिए अपात्र नहीं होगा और न तो ऐसे किसी निर्वाचन-क्षेत्र के लिए किसी विशेष निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किये जाने का ही दावा करेगा।

लोक-सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के लिए निर्वाचन वयस्क

मताधिकार के आधार पर होंगे। इसका अर्थ यह है कि भारत का प्रत्येक नागरिक जो ऐसी तारीख पर, जो कि समुचित विधान-मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन इसके लिए नियत की गई हो, इक्कीस वर्ष का हो चुका हो, ऐसे किसी निर्वाचन में वोटर होने का हकदार होगा। लेकिन वही व्यक्ति ऐसा वोटर हो सकेगा जो इस संविधान, अथवा समुचित विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन अनिवास (Non-residence), चित्त-विकृति, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचार के आधार पर अयोग्य नहीं कर दिया गया हो।

इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, संसद, समय-समय पर, विधि द्वारा संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों से सम्बन्धित सभी विषयों के सम्बन्ध में व्यवस्था कर सकेगी। इनके अन्तर्गत निर्वाचक-नामावलियों का तैयार कराना, निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन (Delimitation) तथा ऐसे सदन या सदनों का गठन कराने के लिए अन्य सब आवश्यक विषय भी हैं। जहाँ तक संसद इसके लिए उपबन्ध नहीं करती, वहाँ तक संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मंडल, समय समय पर विधि द्वारा, उस राज्य के विधान-मंडल के निर्वाचन से सम्बन्ध रखने वाले सभी आवश्यक विषयों के बारे में उपबन्ध कर सकेगा।

निर्वाचन-सम्बन्धी विषयों में न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक लगा दी गई है। संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित किसी ऐसी विधि की, जो निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रों के स्थानों के बाँटने (Allotment of seats) से सम्बन्धित है, मान्यता पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायगी। इसी तरह संसद के अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के किसी निर्वाचन पर निर्वाचन सम्बन्धी ऐसे आवेदन-पत्र (निर्वाचन याचिका—Election petition) के बिना कोई आपत्ति नहीं की जा सकेगी जो ऐसे प्राधिकारी के समक्ष तथा ऐसी रीति से उपस्थित किया गया हो, जो समुचित विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि के अधीन उपबन्धित है।

निर्वाचन-सम्बन्धी उपबन्धों पर विचार

भारतीय संविधान में निर्वाचन के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है, उसे ऊपर दे दिया गया है। उनको देखने के बाद सभी इस विचार से सहमत होंगे कि यह व्यवस्था सराहनीय है। निर्वाचन की देखरेख के लिए एक स्वतंत्र प्राधिकारी की स्थापना की जायगी, जिसे निर्वाचन-आयोग कहकर पुकारा जायेगा। मुख्य निर्वाचन-आयुक्त कहाँ तक स्वतंत्र रह सकेगा यह इसीसे समझा जा सकता है कि उसको उसके पद से उसी प्रकार हटाया जा सकता है जिस प्रकार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को। अब निर्वाचन-आयोग की स्वतंत्रता सुरक्षित रखने के लिए इससे अधिक क्या किया जा सकता था? साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली को हटाकर भी बहुत अच्छा किया गया है। अब इस देश के सभी लोग यहाँ के नागरिक के रूप में वोटर होंगे, किसी खास धार्मिक सम्प्रदाय के सदस्य के रूप में नहीं। इससे देश में एकता की भावना कायम रखने में सहायता मिलेगी। वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त भी स्वीकार कर लिया गया है। अब कोई धनी हो या गरीब, सबको चुनाव में वोट देने का समान अधिकार रहेगा। इससे कम से कम राजनीतिक दृष्टि से देश के विभिन्न वर्गों में समानता की भावना कायम होगी। इसके अलावे गरीब से गरीब वर्ग के लिए अपनी पसन्द के अनुसार सरकार बनाना अब सम्भव होगा। ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका यह अर्थ नहीं है कि भारत में स्वतंत्र निर्वाचन बराबर के लिए सुरक्षित हो गया है। यह तो बहुत अंशों में संसद द्वारा निर्वाचन-सम्बन्धी विषयों के बारे में बनाये जानेवाली विधियों और उनको लागू करने की रीति पर निर्भर करेगा। सरकार की ईमान्दारी और जनता की चेतना का भी इस पर प्रभाव पड़ेगा। यह भी ठीक है कि संविधान में निर्वाचन-सम्बन्धी बहुत-से महत्त्वपूर्ण विषयों के बारे में व्यवस्था नहीं कर उन्हें संसद के लिए छोड़ दिया गया है। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संविधान में जो उपबन्ध किये गये हैं, उनमें कोई दोष नहीं है। यह भी याद रखना चाहिए कि आखिर सभी बातें संविधान में ही नहीं दी जा सकतीं।

एक बात के सम्बन्ध में कुछ संशोधन की आवश्यकता बताई जा सकती है। संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति वोटर तभी हो सकता है जब वह इक्कीस

साल का हो जाय। कुछ लोगों की राय में अठारह वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर ही प्रत्येक व्यक्ति को मतदान का अधिकार मिल जाना चाहिए। वैसे तो दोनों तरह की व्यवस्था के पक्ष विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यह भी ठीक है कि किसी को इसमें से कौन सी व्यवस्था अधिक अच्छी लगे, यह बहुत कुछ उसके व्यक्तिगत झुकाव पर निर्भर करता है। लेकिन अगर इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो इक्कीस साल का उपबन्ध कोई खास दोषपूर्ण नहीं मालूम पड़ता है। यह ठीक है कि अठारह साल के हो जाने के बाद प्रत्येक व्यक्ति बालिग समझा जाने लगता है और उसे सम्पत्ति इत्यादि के मामलों में सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। लेकिन मतदान का अधिकार और अधिकारों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसके सदुपयोग के लिए अधिक परिपक्व मस्तिष्क की आवश्यकता है। मतदान के अधिकार तथा अन्य अधिकारों के आधार में यह विभेद मतदान के अधिकार के अत्यधिक महत्त्व का परिचायक भी समझा जा सकता है। संविधान में तो इसकी चर्चा नहीं की गई है, लेकिन व्यवहार में यह देखा जाता है कि करीब-करीब सभी महत्त्वपूर्ण नौकरियों के लिए नियुक्त किये जाने के लिए कम से कम इक्सीस साल का होना जरूरी समझा जाता है। तब मतदान का काम क्या इन नौकरियों में किये जानेवाले कामों से किसी तरह से कम जवाबदेही का है?

अध्याय १६

कतिपय वर्गों से सम्बद्ध विशेष उपबन्ध

पिछले अध्याय में यह देखा जा चुका है कि निर्वाचन-सम्बन्धी उपबन्धों में साम्प्रदायिक निर्वाचन-पद्धति को कोई स्थान नहीं दिया गया है। सरकारी सेवाओं के सम्बन्ध में भी भारत के सभी नागरिकों को समान अधिकार दिये गये हैं। लेकिन ऐसा होते हुए भी भारतीय समाज के कतिपय वर्गों के लिए निर्वाचन तथा सेवाओं के सम्बन्ध में कुछ विशेष उपबन्ध किये गये हैं। ऐसा करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? बात यह है कि भारत में कई वर्ग के लोग अन्य वर्गों से सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। उनको दूसरे वर्गों के स्तर पर लाने के लिए कुछ विशेष सुविधाओं की आवश्यकता महसूस की गई। संविधान के निर्माताओं ने समझा कि अगर इन वर्गों को विशेष सुविधाएँ नहीं दी जातीं तो ये बराबर पिछड़े रह जायेंगे। इसके अलावे कुछ ऐसे वर्ग के लोग भी हैं, जो पिछड़े हुए तो नहीं कहे जा सकते, लेकिन जो संख्या में इतने कम हैं कि उनमें सुरक्षा की भावना कायम करने के लिए उन्हें भी कुछ विशेष सुविधाओं का दिया जाना आवश्यक था। साथ ही साथ ये लोग नये संविधान के बनने के पहले कई तरह की विशेष सुविधाओं के पाने के आदी भी थे। इसलिए नई परिस्थिति के लायक बनने में उनको कुछ समय की आवश्यकता थी। इसी पृष्ठभूमि में संविधान के इन विशेष उपबन्धों पर विचार किया जायगा।

इन उपबन्धों के अनुसार लोक-सभा में अनुसूचित जातियों, आसाम के आदिम जाति-क्षेत्रों में की अनुसूचित आदिम जातियों को छोड़कर अन्य आदिम जातियों तथा आसाम के स्वायत्तशासित जिलों में की अनुसूचित आदिम जातियों के लिए स्थान रक्षित (Reserved) रहेंगे। इसी तरह प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) में के प्रत्येक राज्य की विधान-सभा में भी अनुसूचित जातियों तथा आसाम के आदिम जाति-क्षेत्रों में की अनुसूचित आदिम जातियों को छोड़ कर अन्य आदिमजातियों के लिए स्थान रक्षित रहेंगे।

आसाम की विधान-सभा में स्वायत्तशासित जिलों के लिए भी स्थान रक्षित रहेंगे। इस तरह से अनुसूचित जातियों या आदिम जातियों के लिए किसी राज्य में रक्षित रखे गये स्थानों की संख्या का लोक-सभा में उस राज्य को दिये गये स्थानों की, अथवा किसी राज्य की विधान-सभा में के स्थानों की, समस्त संख्या से वही अनुपात होगा जो अनुपात उनकी जनसंख्या का उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है। अनुसूचित जातियों और आदिम जातियों की तरह आंग्ल-भारतीय समुदाय (Anglo-Indian Community) के प्रतिनिधित्व के लिए भी विशेष उपबन्ध किया गया है। अगर राष्ट्रपति समझे कि लोक-सभा में उस समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है, तो वह उसमें उसके अधिक से अधिक दो सदस्यों को नामजद कर सकेगा। इसी तरह अगर किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख यह समझे कि उस राज्य की विधान-सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व आवश्यक है और पर्याप्त नहीं है, तो वह विधान-सभा में, उस समुदाय के जितने सदस्यों को समुचित समझे, नामजद कर सकेगा। लोक-सभा और राज्यों की विधान-सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए स्थानों के रक्षण तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी ऊपर दिये गये उपबन्ध, इस संविधान के प्रारम्भ से दस साल के बाद नहीं लागू होंगे। लेकिन इससे लोक-सभा या राज्य की विधान-सभा के किसी प्रतिनिधित्व पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक कि यथास्थिति उस समय विद्यमान लोक-सभा या विधान-सभा का विघटन न हो जाय।

सेवाओं और पदों के बारे में भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के दावों के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध किया गया है। इसके अनुसार संघ या राज्य के कार्यों से सम्बन्ध रखनेवाली सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियाँ करने में, प्रशासन-कार्यपटुता का ख्याल रखते हुए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जायगा।

कतिपय सेवाओं के सम्बन्ध में आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए विशेष उपबन्ध किये गये हैं। इनके अनुसार इस संविधान के प्रारम्भ के बाद पहले दो वर्षों तक संघ की रेल, बहिः शुल्क (Customs), डाक तथा तार सम्बन्धी सेवाओं

के पदों के लिए उस समुदाय के सदस्यों की नियुक्तियाँ उसी आधार पर की जायँगी, जिस आधार पर वे १५ अगस्त, १९४७ के तुरत पूर्व की जाती थीं। इसके बाद प्रत्येक दो वर्षों की कालावधि में उस समुदाय के सदस्यों के लिए, उन सेवाओं में, रक्षित पदों की संख्या, इसके ठीक पहले वाले दो वर्षों में इस प्रकार रक्षित संख्या से यथासम्भव दस प्रतिशत कम होगी। लेकिन इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष के अन्त में ऐसे सब रक्षणों का अन्त हो जायगा। साथ ही साथ अगर आंग्ल-भारतीय समुदाय के सदस्य दूसरे समुदायों के सदस्यों की तुलना में कुशलता के कारण नियुक्ति के लिए योग्य पाये जायँ, तो ऊपर दिये गये उपबन्ध के अधीन उस समुदाय के लिए रक्षित पदों से अन्य, अथवा उन से अधिक पदों पर उनकी नियुक्ति में इस उपबन्ध की किसी बात से कोई रुकावट नहीं होगी।

आंग्ल-भारतीय समुदाय के लाभ के लिए शिक्षण अनुदान के लिए भी विशेष उपबन्ध किया गया है। इसके अनुसार इस संविधान के प्रारम्भ के बाद पहले तीन वित्तीय वर्षों तक उस समुदाय के लाभ के लिए शिक्षा के सम्बन्ध में, संघ तथा प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) में के प्रत्येक राज्य द्वारा वही अनुदान दिये जायँगे जो ३१ मार्च, १९४८ को अन्त होने वाले वित्तीय वर्ष में दिये गये थे। ये अनुदान प्रत्येक अनुवर्ती (Succeeding) तीन वर्ष की कालावधि में, निकट पूर्ववर्ती (Immediately preceding) तीन वर्ष की कालावधि की अपेक्षा, दस प्रतिशत कम किये जा सकेंगे। लेकिन इस उपबन्ध के अनुसार अनुदान पाने का किसी शिक्षा-संस्था को तब तक कोई अधिकार नहीं होगा, जब तक कि उसमें यह व्यवस्था नहीं की गई हो कि उसमें प्रत्येक साल नाम लिखानेवाले विद्यार्थियों में कम से कम चालीस प्रतिशत विद्यार्थी आंग्ल-भारतीय समुदाय से भिन्न दूसरे समुदाय के हों। साथ ही साथ इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष के अन्त में, जिस मात्रा तक ऐसे अनुदान आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए विशेष रियायत के रूप में हैं, वहाँ तक उनका अन्त हो जायगा।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए एक विशेष पदाधिकारी होगा, जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। इन जातियों और आदिम जातियों के लिए इस संविधान द्वारा दी गई विशेष सुविधाओं (परित्राणों—

Safeguards) से सम्बन्धित सभी विषयों की जाँच करना तथा उन पर कार्य होने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को, उसके आदेशानुसार, समय-समय पर रिपोर्ट देना उस विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा। राष्ट्रपति ऐसे सब रिपोर्टों को संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखवायेगा। यहाँ पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों से ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों का, जिनको राष्ट्रपति आदेश द्वारा उल्लिखित करे, तथा आंग्ल-भारतीय समुदाय का भी बोध होगा।

अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन पर तथा अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण के लिए राज्यों पर संघ के नियंत्रण की भी व्यवस्था की गई है। राष्ट्रपति किसी भी समय, आदेश द्वारा, एक आयोग की नियुक्ति कर सकेगा जिसका काम प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) में उल्लिखित राज्यों में के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण के बारे में रिपोर्ट देना होगा। इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर ऐसे आयोग की नियुक्ति अवश्य की जायगी। आयोग की रचना, शक्तियों और प्रक्रिया की परिभाषा भी राष्ट्रपति के आदेश में की जा सकेगी तथा उसमें वे प्रासंगिक या सहायक उपबन्ध भी रह सकेंगे जिन्हें राष्ट्रपति आवश्यक या वांछनीय समझे। संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार ऐसे किसी राज्य को उस प्रकार के निर्देश देने तक होगा जो उस राज्य की अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण के लिए निर्देश में परमावश्यक बताई हुई योजनाओं के बनाने और कार्यान्वित करने से सम्बन्ध रखते हों।

राष्ट्रपति आदेश द्वारा, भारत में सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशाओं की, तथा जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनकी, जाँच के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर सकेगा। संघ या किसी राज्य द्वारा उन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधारने के लिए करने योग्य उपायों के बारे में तथा उस प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान दिये जाने चाहिए और जिन शर्तों के अधीन वे अनुदान दिये जाने चाहिए उनके बारे में, सिफारिश करना भी इस आयोग का काम होगा। यह आयोग ऐसे व्यक्तियों से मिल कर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति उचित समझे। आयोग की

नियुक्ति करने वाले आदेश में उसकी प्रक्रिया की परिभाषा भी रहेगी। इस प्रकार नियुक्त आयोग अपने ऊपर सौंपे जाने वाले सभी विषयों की जाँच कर अपनी रिपोर्ट देगा। इस रिपोर्ट में आयोग द्वारा पाये गये तथ्यों का समावेश होगा और इसमें ऐसी सिफारिशें की जायँगी जिन्हें आयोग उचित समझे। राष्ट्रपति इस प्रकार दी गई रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखवायेगा। इसके साथ इस पर की गई कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण भी प्रस्तुत किया जायगा।

इस संविधान के प्रयोजनों के लिए कौन जातियाँ या आदिम जातियाँ अनुसूचित जातियाँ या अनुसूचित आदिम जातियाँ समझी जायँगी, इसका निर्णय राष्ट्रपति लोक-अधिसूचना द्वारा करेगा। ऐसा करते समय वह यथास्थिति उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श कर लेगा जिसमें ये जातियाँ या आदिम-जातियाँ निवास करती हों। संसद विधि द्वारा इसमें परिवर्तन कर सकेगी। लेकिन इसके सिवाय और किसी तरीके से राष्ट्रपति की अधिसूचना में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा।

विशेष उपबन्धों पर विचार

कतिपय वर्गों के सम्बन्ध में संविधान में जो विशेष उपबन्ध किये गये हैं उन्हें ऊपर दे दिया गया है। उन उपबन्धों को पढ़ने के बाद वे सब तरह से उचित ही जान पड़ते हैं। अभी तत्काल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए संसद और राज्यों की विधान-सभाओं में स्थानों के रक्षित हो जाने से उनके बीच भारत की बहुसंख्यक जातियों के प्रति अविश्वास के प्रचार में बाधा पड़ेगी और देश में एकता की भावना सुदृढ़ होगी। दस साल ही के लिए यह व्यवस्था कायम रहेगी। इससे यह लाभ होगा कि ये जातियाँ और आदिम जातियाँ कुछ दिनों के बाद सभी बातों में भारतीय समाज के और लोगों की तरह ही हो जायँगी और उनमें पृथकता की भावना नहीं पनपने पायगी। सेवाओं के सम्बन्ध में भी इन्हें कुछ विशेष सुविधा देकर अच्छा ही किया गया है। अन्य पिछड़े वर्गों के हित में भी विशेष उपबन्ध किया गया है। यह भी ठीक ही है, क्योंकि हरिजनों और आदिम जातियों को छोड़ कर भारत में ऐसे

बहुत से पिछड़े लोग हैं, जिन्हें औरों के स्तर पर बिना विशेष सुविधा प्रदान किये हुए नहीं लाया जा सकता है। समय-समय पर आयोग की नियुक्ति करके इनकी स्थिति की जाँच भी की जायगी। संघ सरकार को इनके सम्बन्ध में विशेष जिम्मेदारी देकर भी उचित ही किया गया है। राज्यों में तो कभी दलगत स्वार्थों के कारण इनकी उपेक्षा भी हो सकती है, लेकिन संघ सरकार के हाथ से ऐसा होने की सम्भावना बहुत कम है। आंग्लभारतीय समुदाय के लोग तो किसी बात में पिछड़े हुए नहीं हैं। लेकिन उनको जो सुविधाएँ प्रदान की गई हैं, वे भी उचित ही जान पड़ती हैं। कारण, इनकी संख्या बहुत कम है। अंग्रेजी राज के जमाने में इन्हें कई तरह की विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। इसलिए इनके हृदय में इस बात की शंका उठ सकती थी कि स्वतंत्रता हो जाने के बाद शायद इनके हितों की उपेक्षा की जाय। इसके अलावे इतने दिनों तक विशेष सुविधाओं को पाते रहने के बाद एक-ब-एक उनसे वञ्चित हो जाने पर इन्हें विशेष कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता। लेकिन संविधान में जो उपबन्ध किया गया है उससे न इन्हें कोई विशेष कठिनाई होगी और न बहुसंख्यक लोगों के प्रति इनके हृदय में अविश्वास की भावना ही पैदा होगी। साथ ही साथ ये विशेष सुविधाएँ इन्हें सिर्फ दस साल के लिए ही प्राप्त होंगी। इससे इनमें पृथकता की भावना भी नहीं बढ़ने पायगी और कुछ ही दिनों में ये सब तरह से भारतीय समाज के अविच्छिन्न अंग बन जायँगे। कुछ सेवाओं और शिक्षण-संस्थाओं के सम्बन्ध में इन्हें जो विशेष सुविधाएँ दी गई हैं, वे दस साल के बाद एकाएक नहीं खतम होकर पहले से ही धीरे-धीरे कम होती चली जायँगी। इससे इन्हें अपने को बदली हुई परिस्थिति के अनुकूल बनाने में और भी आसानी होगी।

अध्याय १७

राजभाषा

करीब-करीब प्रत्येक देश में राजकीय प्रयोजनों के लिए एक ऐसी भाषा रहती है, जिसका उस देश के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र में प्रयोग होता है। जो संघीय देश हैं, वहाँ कम से कम संघ के प्रयोजनों के लिए एक राजभाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है। एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार (Communication) के लिए भी उसी भाषा का प्रयोग होता है। वैसे तो ऐसे भी देश हो सकते हैं जहाँ राजभाषा के रूप में एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग हो। स्वीट्ज़रलैंड इसी तरह का एक देश है। वहाँ तीन-तीन भाषाओं का प्रयोग राजभाषा के रूप में होता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इससे वहाँ के लोगों में राष्ट्रीय भावना की सुदृढ़ता में किसी तरह की कमी आ जाती है। लेकिन स्वीट्ज़रलैंड के उदाहरण को अपवाद मानना ही उपयुक्त होगा। आज संसार के अधिकांश देशों में, कम से कम केन्द्रीय शासन के प्रयोजनों के लिए, एक ही भाषा का प्रयोग होता है। यही वांछनीय भी है। इससे शासन के काम में सहूलियत होगी और राष्ट्रीय एकता की भावना भी सुदृढ़ रहेगी। जब भारत का संविधान बनाया जा रहा था तब अन्य प्रश्नों के साथ यह प्रश्न भी उठा कि भारत की राजभाषा क्या हो। इसके पहले अंग्रेजी शासन के युग में अंग्रेजी भाषा ही यहाँ की राजभाषा थी। केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन दोनों में इसीका प्रयोग किया जाता था। लेकिन यहाँ के अधिकांश व्यक्तियों की राय में एक विदेशी भाषा को भारत की राजभाषा का पद देना उचित नहीं था। इसे समझते भी बहुत कम ही लोग थे। इसलिए यह निश्चय करने में देर नहीं लगी कि भारत की किसी भाषा को ही राजभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। लेकिन यह निश्चय करना उतना आसान नहीं था कि भारत की कौन भाषा राजभाषा हो। बहुत दिनों तक हिन्दी-हिन्दुस्तानी का विवाद बड़े जोरों पर चलता रहा। शुरू में संविधान-सभा में के चोटी के नेताओं में भी इस

विषय पर एकमत नहीं जान पड़ता था। भाषा के साथ-साथ लिपि और अंकों के रूप का भी प्रश्न था। कुछ लोग देवनागरी लिपि का समर्थन करते थे तो कुछ लोग रोमन लिपि का। इसी तरह कुछ लोग अंकों के रूप के बारे में भारतीय रूप के, तो कुछ लोग अन्तर्राष्ट्रीय रूप के, समर्थक थे। उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत की भाषाओं में विभेद रहने से किसी निश्चय पर पहुँचना और भी कठिन हो गया था। संघ के साथ-साथ राज्य की राजभाषा का भी प्रश्न था। क्योंकि यहाँ कई राज्यों की भाषाएँ एक दूसरे से भिन्न हैं। कई ऐसे राज्य भी हैं जहाँ एक ही राज्य के भीतर एक से अधिक भाषाओं के प्रयोग करने-वाले रहते हैं। अगर इन प्रश्नों पर कोई निर्णय हो भी जाय, तो फिर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि इसे तुरत कार्यान्वित किया जाय या धीरे-धीरे या एक निश्चित अवधि के बाद। बहुत वाद-विवाद के बाद संविधान-सभा जिस निर्णय पर पहुँची उसी के आधार पर भारतीय संविधान के राजभाषा-सम्बन्धी उपबन्ध स्थिर किये गये। उन्हें नीचे दिया जा रहा है।

(१) संघ की भाषा

संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होनेवाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा। लेकिन इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष तक संघ के सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा। परन्तु इस कालावधि में भी, राष्ट्रपति के आदेश से, संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग किया जा सकेगा। इसके साथ ही साथ संसद पन्द्रह साल के बाद भी विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा का, अथवा अंकों के देवनागरी रूप का, उन प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जो कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों।

राजभाषा सम्बन्धी विषयों पर विचार करने और राय देने के लिए आयोग तथा संसद की समिति की स्थापना की भी व्यवस्था की गई है। राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारम्भ से पाँच वर्ष की समाप्ति पर तथा इसके बाद ऐसे प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक

आयोग गठित करेगा। यह आयोग एक सभापति तथा संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित विभिन्न भाषाओं (—असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तामिल, तेलुगु, पंजाबी, बँगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत और हिन्दी—) का प्रतिनिधित्व करनेवाले उन सदस्यों से मिलकर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करे। आयोग द्वारा अनुसरण की जानेवाली प्रक्रिया भी राष्ट्रपति के आदेश द्वारा ही परिभाषित की जायगी। आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के उत्तरोत्तर प्रयोग के, इनमें से सब या किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर प्रतिबन्ध के, संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिए प्रयोग किये जानेवाले अंकों के रूप के, तथा उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों, अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जानेवाली भाषा के, बारे में राष्ट्रपति के सामने अपनी सिफारिश रखे। संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा तथा उनके प्रयोग के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गये किसी अन्य विषय के बारे में सिफारिश करना भी आयोग का कर्तव्य होगा। इस तरह अपनी सिफारिश करते समय आयोग द्वारा भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोक-सेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखा जायगा।

तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जायगी। इनमें से बीस लोक-सभा के, तथा दस राज्य-परिषद् के, सदस्य होंगे। ये क्रमशः लोक-सभा तथा राज्यपरिषद् के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्वक-पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायँगे। ऊपर दिये गये उपबन्ध के अनुसार गठित आयोग की सिफारिशों पर विचार करना तथा उन पर अपनी राय कायम कर राष्ट्रपति को रिपोर्ट देना इस समिति का कर्तव्य होगा। राष्ट्रपति उस रिपोर्ट पर विचार करने के बाद उस पूरी रिपोर्ट के अथवा उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश निकाल सकेगा।

(२) राज्य की भाषा

वही भाषा किसी राज्य की राजभाषा होगी जिसे उस राज्य का विधान-

मंडल विधि द्वारा इस रूप में अंगीकार करे। इस प्रयोजन के लिए किसी राज्य का विधान-मंडल उस राज्य में प्रयोग में आनेवाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा। लेकिन जब तक राज्य का विधान-मंडल इससे अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिनके लिए इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले उसका प्रयोग किया जाता था। वही भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में, संचार के लिए राजभाषा होगी जो उस समय संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में आती हो। लेकिन यदि दो या अधिक राज्य आपस में यह करार करें कि उन राज्यों के बीच में संचार के लिए राजभाषा हिन्दी होगी, तो ऐसे संचार के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा। राज्य के जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जानेवाली भाषा के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध किया गया है। इसके लिए माँग की जाने पर, यदि राष्ट्रपति यह समझे कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जानेवाली कोई भाषा उस राज्य द्वारा मंजूर (अभिज्ञात—Recognised) की जाय, तो वह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जैसा कि वह उल्लिखित करे सरकारी मंजूरी (राजकीय अभिज्ञा) दी जाय।

(३) उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

ऊपर के उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक उच्चतम न्यायालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब कार्यवाहियाँ, तथा संघ और राज्य के सभी विधेयकों, उन पर किए जानेवाले संशोधनों, अधिनियमों, और अध्यादेशों के तथा सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के प्राधिकृत पाठ (Authoritative texts) अंग्रेजी भाषा में होंगे। लेकिन किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य में मुख्य स्थान रखनेवाले उच्च न्यायालय में की कार्यवाहियों के लिए, हिन्दी भाषा का या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयोग में आनेवाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग

प्राधिकृत कर सकेगा। लेकिन इसमें की कोई बात वैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश पर नहीं लागू होगी। साथ ही साथ यदि किसी राज्य का विधान-मंडल वहाँ के विधेयकों, अधिनियमों या अध्यादेशों में, अथवा किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से अन्य किसी भाषा के प्रयोग को विहित करे, तो उस राज्य के राजकीय सूचनापत्र (Official Gazette) में उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद ऊपर दिए गए उपबन्ध के अभिप्रायों के लिए प्राधिकृत पाठ समझा जायगा।

भाषा-सम्बन्धी कुछ विधियों के अधिनियमित किये जाने के लिए विशेष प्रक्रिया दी गई है। इसके अनुसार इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्षों की कालावधि तक उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों अथवा विधेयकों, अधिनियमों, अध्यादेशों, आदेशों, नियमों, विनियमों या उपविधियों के प्राधिकृत पाठ के लिए प्रयोग की जानेवाली भाषा के लिए उपबन्ध करने-वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना न तो पेश और न प्रस्तावित किया जायगा। ऊपर दिये गये उपबन्ध के अनुसार राजभाषा के लिए गठित आयोग की सिफारिशों तथा संसद की समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही राष्ट्रपति ऐसे किसी विधेयक अथवा संशोधन के पेश या प्रस्तावित किये जाने की मंजूरी देगा।

(४) विशेष निर्देश

प्रत्येक व्यक्ति को किसी शिकायत को दूर किये जाने के लिए संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होनेवाली किसी भाषा में दर्खास्त (अभिवेदन—Representation) देने का अधिकार होगा। हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सम्मिलित संस्कृति (Composite culture) के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा। उसकी अपनी विशेषता (Genius) में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अन्य भारतीय भाषाओं (असमिया,

उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तामिल, तेलुगु, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत और हिन्दी) के रूप, शैली और पदावलि को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए हिन्दी की समृद्धि सुनिश्चित की जायगी।

राजभाषा-संबन्धी उपबन्धों पर विचार

भारतीय संविधान के राजभाषा, सम्बन्धी उपबन्ध दिये जा चुके हैं। उनके अनुसार भारत की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। यह सब तरह से उचित है। भारत की भाषाओं में सबसे अधिक प्रचार इसी भाषा का है। प्रत्येक राज्य को अपने राज्य-क्षेत्र के भीतर बोली जानेवाली किसी भाषा को अपनी राजभाषा के रूप में स्वीकार करने का अधिकार भी दिया गया है। ऐसा करना आवश्यक था, क्योंकि भारत एक बड़ा देश है और इसमें भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ के कई राज्यों के भीतर भी भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले लोग रहते हैं। यदि किसी राज्य के जन-समुदाय के पर्याप्त अनुपात की भाषा को वहाँ के राज्य द्वारा राजकीय अभिज्ञा नहीं मिले, तो उसे राष्ट्रपति के पास इसके लिए माँग रखने का अधिकार होगा और राष्ट्रपति इस तरह की अभिज्ञा के दिये जाने के लिए निर्देश निकाल सकेगा। इससे किसी राज्य के अल्पमत की भाषा को भी उचित स्थान प्राप्त हो सकेगा। साथ ही साथ उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में तथा संसद और राज्यों के विधानमंडलों के विधेयकों, अधिनियमों आदि में प्रयोग की जानेवाली भाषा में एकरूपता कायम रखने की भी कोशिश की गई है। हिन्दी भाषा के विकास के लिए जो विशेष निर्देश दिया गया है, वह भी सराहनीय है। इसके लिए संघ पर जिम्मेदारी दी गई है। हिन्दी के रूप, शैली, पदावलि और शब्दभंडार के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है, वह भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। इससे हिन्दी की अपनी विशेषता भी कायम रहेगी और भाषा के क्षेत्र में आज कहीं-कहीं पर पाई जानेवाली संकीर्णता से अछूती रह कर यह सच्चे अर्थ में अखिल भारतीय भाषा के रूप में विकसित होगी जिसे भारत के सभी भाषा-भाषी बिना किसी

झिझक के अंगीकार करेंगे। इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी के प्रयोग का उपबन्ध भी बहुत उचित है। इस बीच में अहिन्दी भाषा-भाषी लोग हिन्दी में पूरी योग्यता प्राप्त कर लेंगे और हिन्दी भी राजभाषा की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सब तरह से योग्य हो जायगी। इस बीच में भी धीरे-धीरे कुछ खास-खास प्रयोजनों के लिए इसका प्रयोग भी शुरू किया जा सकता है। पन्द्रह वर्ष के बाद भी आवश्यकता रहने पर संसद द्वारा किन्हीं प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग उपबन्धित किया जा सकेगा।

लेकिन संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किये जानेवाले अंकों के रूप के सम्बन्ध में संविधान में जो उपबन्ध किया गया है उसकी सराहना नहीं की जा सकती। संविधान के अनुसार यह भारतीय अङ्कों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा। संविधान सभा में इस विषय पर बहुत विवाद चला था कि देवनागरी रूप स्वीकार किया जाय या अन्तर्राष्ट्रीय रूप। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के साथ-साथ तो अङ्कों का भारतीय रूप ही अधिक स्वाभाविक जान पड़ता है। लेकिन अहिन्दी भाषा-भाषी, विशेषकर दक्षिण भारत के, प्रतिनिधियों के रुख के कारण इसे स्वीकार करना कठिन हो गया। कुछ लोगों की राय में जब दक्षिण भारत के लोगों ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया तब अङ्कों के रूप के सम्बन्ध में उनके विचारों का आदर करना आवश्यक था, नहीं तो वे यही समझते कि उत्तर भारत के लोग अपने बहुमत के बल से उन पर अपना निर्णय लाद रहे हैं। इससे दक्षिण भारत के लोगों के बीच पृथकता की भावना के प्रचार में सहायता मिलती। अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के पक्ष में यह एक बहुत बड़ी बात थी। इसलिए इस निर्णय को समझा जा सकता है। लेकिन यह नहीं समझ में आता है कि एक बार ऐसा निर्णय कर लेने के बाद फिर इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की अवधि के भीतर तथा इसके बाद भी किन्हीं प्रयोजनों के लिए अंकों के देवनागरी रूप के प्रयोग को क्यों सम्भव बनाया गया है। इससे इस विषय पर बहुत दिनों तक अनिश्चिन्तता की भावना रहेगी और यह किसी तरह भी लाभदायक नहीं हो सकती।

अध्याय १८

आपात-उपबन्ध

पिछले अध्यायों में भारतीय संविधान के जिन उपबन्धों पर विचार किया गया है, वे सब साधारण समय के शासन से सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन संविधान निर्माताओं ने भारत की राजनीतिक स्थिति देखते हुए यह सोचा कि कभी ऐसी परिस्थिति भी पैदा हो सकती है जब इन साधारण उपबन्धों से देश का शासन नहीं चलाया जा सके। विशेषकर आपात (Emergency) के समय ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे समय में शासन का काम चलाने के लिए संविधान में विशेष उपबन्ध किया गया है। इन उपबन्धों के अनुसार राष्ट्रपति को आपात का सामना करने के लिए कई तरह की विशेष शक्तियाँ दी गई हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मन प्रजातंत्र के संविधान में भी—जिसे वेयमर (Weimer) संविधान के नाम से पुकारा जाता है—राष्ट्रपति को आपात के समय के लिए इसी तरह विशेष शक्तियाँ दी गई थीं। वे शक्तियाँ उस संविधान के ४८ वें अनुच्छेद में उल्लिखित थीं। उनके अनुसार जर्मनी का राष्ट्रपति वहाँ के किसी राज्य की सरकार को संविधान तथा विधियों के अधीन अपनी जिम्मेदारियों को मान कर अपना कर्तव्य करने पर बाध्य कर सकता था तथा सार्वजनिक सुरक्षा और सुव्यवस्था को स्थापित करने के लिए सभी तरह की आवश्यक कार्रवाइयाँ कर सकता था। ऐसा करते समय वह, संविधान के अनुसार प्राप्त, जर्मन नागरिकों के कई मूल अधिकारों को भी स्थगित कर सकता था। लेकिन इस अनुच्छेद के अधीन कोई कदम उठाने के बाद उसे तुरत वहाँ के विधान-मंडल को उसकी सूचना देनी पड़ती थी और विधान मंडल को राष्ट्रपति द्वारा इस सम्बन्ध में निकाले गये आदेश को रद्द करने की भी शक्ति थी। भारतीय संविधान के आपात उपबन्ध जर्मनी के वेयमर संविधान के इस ४८ वें अनुच्छेद से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। यहाँ पर तीन तरह के आपात की कल्पना की गई है और तीनों के लिए अलग-अलग उपबन्ध किया गया है।

(१) युद्ध या आन्तरिक उपद्रव से उत्पन्न हुआ आपात

यदि कभी राष्ट्रपति समझे कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे कि युद्ध या बाहरी आक्रमण या भीतरी उपद्रव से भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह इस आशय की उद्घोषणा निकाल सकेगा। इसे आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) कहा जायगा। यदि राष्ट्रपति यह समझे कि इस तरह के युद्ध या आक्रमण या उपद्रव का खतरा तुरत आनेवाला है, तो वास्तव में इनमें से किसी के नहीं होने पर भी आपात की उद्घोषणा की जा सकेगी। यह उद्घोषणा संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखी जायगी और जब तक कि उद्घोषणा की जाने के दो महीने के भीतर संसद के दोनों सदन प्रस्ताव द्वारा इसका अनुमोदन नहीं कर दें, तब तक यह उस कालावधि के बाद नहीं लागू रह सकेगी। अब यह प्रश्न उठता है कि यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई हो जब कि लोक-सभा का विघटन हो चुका हो अथवा इस उद्घोषणा के निकाले जाने के दो महीने के भीतर ही उसका विघटन हो जाय तथा यदि उद्घोषणा का अनुमोदन करनेवाला प्रस्ताव राज्य-परिषद् द्वारा पास किया जा चुका हो किन्तु ऐसी उद्घोषणा के विषय में लोक-सभा द्वारा दो महीने की समाप्ति से पहले कोई प्रस्ताव नहीं पास किया गया हो, तब क्या होगा? ऐसी अवस्था में लोक-सभा के अपने पुनर्गठन के बाद पहली बार बैठने से तीस दिन के बाद यह उद्घोषणा तभी लागू रह सकेगी जब कि इसके पहले ही लोक-सभा प्रस्ताव पास कर इसका अनुमोदन कर दे। इसके अतिरिक्त ऐसी उद्घोषणा बाद की किसी उद्घोषणा द्वारा भी रद्द की जा सकेगी।

आपात की उद्घोषणा का प्रभाव बहुत व्यापक होगा। जिस समय इस तरह की उद्घोषणा लागू हो, उस समय इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को इस विषय में निर्देश देने तक होगा कि वह राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस रीति से प्रयोग करे। साथ ही साथ किसी विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की संसद की शक्ति के अन्तर्गत ऐसी विधियाँ बनाने की शक्ति भी होगी जो उस विषय के बारे में संघ अथवा संघ के पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्तियाँ

प्रदान करती तथा कर्तव्य सौंपती हों अथवा ऐसा किया जाना प्राधिकृत करती हों चाहे वह विषय ऐसा क्यों न हो जो संघ-सूची में प्रगणित नहीं है। ऐसे समय में राष्ट्रपति यह भी निर्देश दे सकेगा कि इस संविधान के, संघ और राज्यों में राजस्व के वितरण-सम्बन्धी उपबन्धों में से सब या कोई उपबन्ध ऐसी किसी कालावधि में, जैसी कि उस निर्देश में उल्लिखित की जाय, ऐसे अपवादों और परिवर्तनों के साथ लागू होंगे जिन्हें वह उचित समझे। लेकिन किसी भी अवस्था में यह कालावधि उस वित्तीय वर्ष के समाप्ति के आगे विस्तृत नहीं होगी, जिसमें कि उद्घोषणा का लागू होना खतम हो जाता हो।

आपात की उद्घोषणा के लागू रहने के समय में, स्वतन्त्रता-सम्बन्धी मूल अधिकार, जो संविधान के १९ वें अनुच्छेद में दिये गये हैं, (भाषण देने, सभा करने, संघ बनाने, भारत में जहाँ मन चाहे आने-जाने, निवास करने और बसने, सम्पत्ति हासिल करने, रखने और हटाने, तथा कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने के अधिकार) स्थगित किये जा सकेंगे। लेकिन आपात की उद्घोषणा का लागू होना खतम होते ही उन विधियों का प्रभाव भी खतम हो जायगा जिनके अधीन इस तरह से कोई अधिकार स्थगित किये गये हों। इसी तरह राष्ट्रपति आदेश द्वारा, संविधान के तीसरे भाग में दिये गये उन मूल अधिकारों को, जो आदेश में वर्णित हों, चालू कराने के लिए, न्यायालयों में सवाल पेश करने का अधिकार स्थगित कर सकेगा। इस आदेश द्वारा किसी न्यायालय में इस सम्बन्ध में लम्बित सब कार्यवाहियाँ भी स्थगित की जा सकेंगी। उपर्युक्त अधिकार तथा कार्यवाहियाँ, उस कालावधि के लिए जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहे अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिए, जो कि राष्ट्रपति के आदेश में उल्लिखित की जाय, स्थगित रहेंगी। इस प्रकार दिया गया आदेश भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग में लागू हो सकेगा। ऐसा प्रत्येक आदेश यथा-सम्भव शीघ्र संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखा जायगा।

(२) राज्यों में सांविधानिक तंत्र की विफलता

बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक उपद्रव से प्रत्येक राज्य की रक्षा करना, तथा प्रत्येक राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अधीन चलाया जाय, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा। यदि किसी राज्य के राज्यपाल

या राजप्रमुख से रिपोर्ट मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति समझे कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अधीन नहीं चलाया जा सकता, तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा उस राज्य की सरकार के सब या कोई काम तथा यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख में अथवा राज्य के विधान-मंडल को छोड़कर राज्य के अन्य किसी निकाय या प्राधिकारी में विहित या उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली सब या कोई शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकेगा, तथा घोषित कर सकेगा कि उस राज्य के विधान-मंडल की शक्तियों का प्रयोग संसद के प्राधिकार के द्वारा या अधीन किया जायगा। राष्ट्रपति ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध भी बना सकेगा जो उद्घोषणा के उद्देश्यों को पूरी तरह से लागू करने के लिए आवश्यक या वांछनीय जान पड़ें। इनके अन्तर्गत वे उपबन्ध भी शामिल रह सकेंगे, जिनके अनुसार राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बन्ध रखनेवाले इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों का लागू होना पूर्णतः या अंशतः स्थगित किया जाय। लेकिन यहाँ दी हुई किसी बात से राष्ट्रपति को यह अधिकार नहीं होगा कि वह उच्च न्यायालय में निहित या उसके द्वारा प्रयोग की जानेवाली शक्तियों में से किसी को अपने हाथ में ले ले अथवा इस संविधान के उच्च न्यायालयों से सम्बन्ध रखनेवाले किन्हीं उपबन्धों का लागू होना पूर्णतः या अंशतः स्थगित कर दे।

जहाँ इस तरह की उद्घोषणा द्वारा यह घोषित किया गया हो कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियाँ संसद के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोग में लाई जायँगी वहाँ संसद राज्य के विधान-मंडल की विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को दे सकेगी तथा उसे ऐसी दी हुई शक्ति को किसी दूसरे प्राधिकारी को सौंपने के लिए प्राधिकृत कर सकेगी। इसी तरह संसद को अथवा राष्ट्रपति को या ऐसी विधि बनाने की शक्ति जिस अन्य प्राधिकारी में निहित है उसको संघ या उसके पदाधिकारियों और अधिकारियों को शक्ति देने या कर्तव्य सौंपने, अथवा ऐसा किया जाना प्राधिकृत करने की शक्ति होगी। साथ ही साथ, जब लोक-सभा का अधिवेशन नहीं चल रहा हो, तब राष्ट्रपति, व्यय के लिए संसद की मंजूरी लम्बित रहने तक, राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को प्राधिकृत कर सकेगा। राज्य के विधान-मंडल की शक्ति

के प्रयोग में संसद या राष्ट्रपति या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जिसे राष्ट्रपति की उद्घोषण के अभाव में इनमें से कोई नहीं बना सकता, ऐसी उद्घोषण के खतम होने के एक साल बाद नहीं लागू रहेगी, जब तक कि उसके पहले ही समुचित विधान-मंडल ने उसे रद्द अथवा परिवर्तन के साथ या बिना परिवर्तन के अधिनियमित न कर दिया हो।

राज्य में सांविधायिक तंत्र की विफलता पर राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली उद्घोषणा भी, युद्ध या आन्तरिक उपद्रव की स्थिति में उसकी आपात की उद्घोषणा की तरह ही, संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जायगी और दो महीने के बाद तभी लागू रह सकेगी जब कि इसके पहले उसे उनका अनुमोदन प्राप्त हो जाय। इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा अनुमोदन की तिथि से छ महीने के बाद नहीं लागू रहेगी। लेकिन जब-जब और जितनी बार संसद के दोनों सदन प्रस्ताव द्वारा ऐसी उद्घोषणा के लागू रहने का अनुमोदन करें, तब-तब और उतनी बार यह उद्घोषणा छ महीने की और कालावधि तक लागू रहेगी। किन्तु किसी अवस्था में भी ऐसी कोई उद्घोषणा लगातार तीन साल के बाद नहीं लागू रहेगी। साथ ही साथ, यदि कभी छ महीने के भीतर ही लोकसभा का विघटन हो गया हो तथा राज्य-परिषद् द्वारा किसी उद्घोषणा रखने के लागू रखे जाने का अनुमोदन करनेवाला प्रस्ताव पास कर दिया गया हो किन्तु लोक-सभा द्वारा नहीं, तो लोक-सभा के अपने पुनर्गठन के बाद प्रथम बार बैठने से तीस दिन के बाद ऐसी उद्घोषणा तबतक नहीं लागू रहेगी जबतक कि इसके पहले ही लोक-सभा इस आशय का प्रस्ताव नहीं पास कर दे। ऐसी कोई उद्घोषणा कभी भी बाद की किसी उद्घोषणा द्वारा रद्द या परिवर्तित की जा सकेगी।

(३) वित्तीय आपात

यदि कभी राष्ट्रपति को यह जान पड़े कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिससे भारत अथवा उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय (Financial stability or credit) संकट में है, तो वह इस आशय की उद्घोषणा कर सकेगा। जब तक ऐसी उद्घोषणा लागू रहे, तब तक संघ की कार्यपालिका शक्ति किसी राज्य को वित्तीय

औचित्य-सम्बन्धी ऐसे सिद्धान्तों का पालन करने के लिए निर्देश देने तक, जो कि निर्देशों में उल्लिखित हों, तथा ऐसे अन्य निर्देश देने तक, जिन्हें राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिए देना आवश्यक और समुचित समझे, विस्तृत होगी। इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी ऐसे किसी निर्देश के अन्तर्गत राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सब या किन्हीं वर्गों के वेतनों और भत्तों में कमी की, तथा धन-विधेयकों को राज्य के विधान-मण्डल द्वारा उनके पास किये जाने के बाद राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित किये जाने की, अपेक्षा करनेवाले उपबन्ध भी हो सकेंगे। इस तरह की उद्घोषणा के लागू रहने तक राष्ट्रपति संघ के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सभी या किसी वर्ग के वेतनों और भत्तों में कमी के लिए निर्देश निकाल सकेगा। इनमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते भी शामिल हैं। बाह्य आक्रमण या आन्तरिक उपद्रव के समय निकाले जानेवाली आपात की उद्घोषणा की तरह ही वित्तीय आपात के समय की उद्घोषणा भी संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जायगी और इनका अनुमोदन पाने पर ही दो महीने के बाद लागू रह सकेगी।

आपात-उपबन्धों का स्वरूप

भारतीय संविधान में किये गये आपात-उपबन्ध ऊपर दिये जा चुके हैं। अब इनके स्वरूप पर विचार कर लेना वांछनीय होगा। इन उपबन्धों की कई लोगों द्वारा बहुत कड़ी आलोचना की गई है। कुछ लोग तो यह भी कहते हुए सुने गये हैं कि इनसे राष्ट्रपति की अधिनायकशाही (Dictatorship) कायम होने की सम्भावना है। इतना तो शुरू में ही स्पष्ट कर देना अच्छा होगा कि राष्ट्रपति के अधिनायक या डिक्टेटर बनने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मन्त्रियों से परामर्श कर के ही करेगा। यह भी देखा जा चुका है कि यहाँ की कार्य-पालिका संसद-मूलक है; अर्थात् यहाँ पर शासन के सभी काम असल में मंत्रिमंडल द्वारा किये जायँगे और राष्ट्रपति का सिर्फ नाम भर रहेगा। संविधान में यह कहीं नहीं कहा गया है कि आपात की उद्घोषणा निकालते समय, या ऐसी उद्घोषणा के लागू रहने के समय में शासन चलाते समय, राष्ट्रपति

मंत्रियों के परामर्श के बिना ही कार्य कर सकेगा। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि आपात-काल में भी शासन के सभी काम मंत्रियों द्वारा ही किये जायँगे और साधारण समय की तरह इस समय भी राष्ट्रपति का सिर्फ नाम भर ही रहेगा। हाँ, संघीय कार्यपालिका के, अर्थात् मंत्रिपरिषद् या प्रधान मन्त्री के अधिनायक बन जाने का प्रश्न उठ सकता है। लेकिन गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर इसकी सम्भावना भी नहीं मालूम पड़ती। आपात की उद्घोषणा, संसद के दोनों सदनों के अनुमोदन के विना, दो महीने से अधिक कालावधि के लिए नहीं लागू रह सकेगी। इस उद्घोषणा के लागू रहने के समय भी किसी एक व्यक्ति का शासन नहीं होगा। हाँ, संघ की कार्यपालिका शक्ति तथा संसद की विधि बनाने की शक्ति का विस्तार अवश्य बढ़ जायगा। इसका तो यही अर्थ हुआ कि आपातकाल में राज्य की सरकार की जगह पर संघ की सरकार शासन का काम चलायेगी। लेकिन उस समय भी संघ की सरकार संसद के नियंत्रण में रहकर ही काम करेगी। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय भी साधारण समय की तरह ही अपना काम करते रहेंगे और उनके साथ कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी भी अवस्था में अधिनायकशाही कायम ही नहीं की जा सकती। अगर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रि-परिषद् और संसद सभी इसके लिए एकमत हो जायँ और देश का जनमत भी उनके साथ हो, तो अधिनायकशाही अवश्य कायम हो जा सकती है, लेकिन अन्यथा नहीं। और अगर किसी देश में इस तरह की परिस्थिति पैदा हो जाय, तो संविधान में आपात-उपबन्ध रहें चाहे नहीं रहें, अधिनायकशाही की स्थापना तो बराबर संभव रहेगी। ऊपर कहा जा चुका है कि भारतीय संविधान के ये आपात-उपबन्ध जर्मनी के वेयमर संविधान के आपात-उपबन्ध से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। उसी संविधान के लागू रहते समय हिटलर ने अपनी अधिनायक-शाही कायम की थी। इसलिए कुछ लोगों को शंका हो सकती है कि यहाँ भी ऐसा होना सम्भव है। लेकिन ऐसे लोगों को यह याद रखना चाहिए कि जर्मनी की जैसी परिस्थिति थी, उस परिस्थिति में वहाँ अधिनायकशाही की स्थापना अवश्य होती, चाहे संविधान सहायक होता या नहीं। वही बात

भारत के सम्बन्ध में भी लागू है। अगर लोकतंत्रात्मक पद्धति से देश की समस्याएँ नहीं हल हों और सभी अधिनायकशाही का स्वागत करने के लिए तैयार हो जायँ, तो यहाँ भी अधिनायकशाही की स्थापना अवश्य सम्भव हो जायगी। दूसरी तरफ अगर जनमत लोकतंत्र के पक्ष में रहे, तो इसकी सम्भावना कभी भी नहीं होगी चाहे संविधान में कुछ भी उपबन्ध किया गया हो।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह भारतीय संविधान के आपात-उपबन्धों के साधारण स्वरूप के बारे में है। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक आपात-उपबन्ध सर्वथा उचित ही है। राज्य में सांविधानिक तंत्र की विफलता की अवस्था में संघ द्वारा उसके शासन का भार लिये जाने का उपबन्ध तो ठीक मालूम पड़ता है। वैसे तो अगर एक दल की सरकार संघ में रहे और दूसरे दल की किसी राज्य में, तो इस उपबन्ध के दुरुपयोग की सम्भावना भी हो सकती है। लेकिन इस तरह दुरुपयोग का डर तो सभी अवस्थाओं में हो सकता है और कोई भी संविधान इसके खिलाफ निश्चित गारण्टी नहीं दे सकता। यह बराबर याद रखना चाहिए कि भारत में लोकतंत्रात्मक पद्धति की जड़ें बहुत नीचे नहीं जाने पाई हैं और न यहाँ अभी राजनीतिक दलों का ही पूरा विकास हुआ है। इसलिए ऐसे अवसर आ सकते हैं जब किसी राज्य की विधान-सभा में कई छोटे-छोटे राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि जमा हो जायँ और कोई स्थिर मंत्रिमंडल बनना नहीं सम्भव हो। दूसरे भी ऐसे कारण आ खड़े हो सकते हैं जिनके चलते किसी राज्य में सांविधानिक तंत्र विफल हो जाय। ऐसी हालत में संघ-शासन ही एकमात्र रास्ता बच जायगा। राज्य के अधिकार बराबर के लिए खतम भी नहीं होंगे, क्योंकि संघ की सरकार अधिक से अधिक तीन साल तक ही किसी राज्य की सरकार का काम अपने हाथ में ले सकती है। वित्तीय-आपात की अवस्था के लिए जो उपबन्ध किया गया है, उसके विरुद्ध भी कुछ कहना उचित नहीं जान पड़ता है। अगर एक राज्य का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में पड़ जाय, तो इसका असर समूचे देश पर पड़ेगा। वित्तीय क्षेत्र में अलग-अलग राज्यों में कार्य करके किसी संकट को दूर करना भी कठिन होगा। इसलिए संघ सरकार को भारत के किसी भाग के वित्तीय संकट को दूर करने के लिए विशेष शक्ति देकर अच्छा ही किया गया है।

लेकिन यही बात बाहरी आक्रमण या युद्ध या आन्तरिक उपद्रव से उत्पन्न हुए आपात का सामना करने के लिए किये गये उपबन्धों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती है। जहाँ तक आन्तरिक उपद्रव का प्रश्न है, ऐसी अवस्था में उसे दबाने में संघ की मदद करने का उपबन्ध रहना चाहिए। अगर कभी किसी राज्य में कोई उपद्रव या अशान्ति पैदा हो, या कोई हिंसात्मक कार्रवाई फैल जाय तथा उस राज्य की सरकार न तो उसे खुद दबा सके और न संघ-सरकार से इस काम में मदद ही माँगे, तो ऐसी अवस्था में संविधान में यह भी उपबन्ध रहना चाहिए कि संघ-सरकार उस उपद्रव को दबाने के लिए स्वयं आवश्यक निर्देश दे सके तथा उस राज्य को संघ की मदद लेने पर बाध्य कर सके। युद्ध की अवस्था में भी ऐसा उपबन्ध रहना चाहिए जिससे राज्य की सरकार इससे निबटने में संघ की सरकार के साथ पूरा सहयोग करे, और ऐसा नहीं करने पर संघ सरकार द्वारा उसे इसके लिए बाध्य किया जा सके। युद्ध या आन्तरिक उपद्रव के समय में मूल अधिकारों को कुछ समय के लिए स्थगित करने की जरूरत भी पड़ सकती है। लेकिन संविधान में संघ सरकार को इससे कहीं अधिक शक्तियाँ दी गई हैं। उसके अनुसार संघ सरकार राज्य की सरकार को उसकी कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग के सम्बन्ध में कोई भी निर्देश दे सकती है। इसी तरह संसद की विधि बनाने की शक्ति भी बिना किसी प्रतिबन्ध के बढ़ा दी जा सकती है। इतनी व्यापक शक्तियों की कोई आवश्यकता नहीं है। जब इस पर ध्यान दिया जाता है कि युद्ध या उपद्रव के विद्यमान नहीं रहते हुए भी, उनकी शंका होने पर ही आपात की उद्घोषणा की जा सकती है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी उद्घोषणा के लागू रहने की कालावधि में संघ सरकार को विशेष शक्तियाँ प्रदान करते समय अधिक सावधानी की आवश्यकता थी। शक्तियों में स्वयं एक आकर्षण रहता है और उनसे चिपकने के लिए व्यक्तियों और दलों का प्रयत्न करना स्वाभाविक है। इसलिए किसी भी सरकार को शक्ति देते समय यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि उसे आवश्यकता से अधिक तनिक भी शक्ति नहीं दी जाय। तब शक्तियों के दुरुपयोग का डर कम रहता है। अतः आपात-उपबन्धों के इस अंश में संशोधन की आवश्यकता है।

अध्याय १९

संविधान का संशोधन

संशोधन की दृष्टि से संविधान दो तरह के होते हैं—परिवर्तनशील (Flexible) और स्थिर (Rigid)। परिवर्तनशील उस संविधान को कहा जाता है जिसमें संशोधन करने के लिए किसी विशेष प्रक्रिया की अपेक्षा नहीं होती है और स्थिर उसे, जिसमें संशोधन के लिए इसकी अपेक्षा होती है। परिवर्तनशील संविधान में संशोधन ठीक उसी तरह से किया जा सकता है जिस तरह से साधारण विधि बनाई जाती है। ब्रिटेन का संविधान इसी तरह का है। वहाँ की पार्लियामेंट उसमें, जो परिवर्तन चाहे, कर सकती है और वह भी साधारण विधि बनाने की प्रक्रिया के अनुसार ही। दूसरी तरफ संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का संविधान स्थिर संविधान का उदाहरण है। वहाँ पर जब संघीय विधानमंडल (जिसे कांग्रेस कहते हैं) के प्रत्येक सदन के सदस्यों की समस्त संख्या के कम-से-कम दो तिहाई बहुमत से किसी संशोधन के पक्ष में कोई प्रस्ताव पास हो अथवा दो तिहाई राज्यों के विधानमंडलों से इसके लिए माँग पेश किये जाने पर, संशोधन पर विचार करने के लिए कांग्रेस एक विशेष कनवेंशन (Convention) बुलावे, तब वह संशोधन पेश किया गया समझा जायगा। इसके बाद जब कम-से-कम तीन चौथाई राज्यों के विधान-मंडल उस संशोधन का समर्थन करें, तब वह पास हुआ समझा जायगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी स्थिर संविधानों में परिवर्तन करना इतना ही कठिन है। लेकिन किसी संविधान में संशोधन करना कितना भी आसान क्यों न हो, अगर साधारण विधि बनाने की प्रक्रिया से यह तनिक भी भिन्न हो, तो उसे स्थिर संविधान ही कहा जायेगा।[1]

अब यह देखा जाय कि भारतीय संविधान में संशोधन के लिए क्या उपबन्ध किया गया है। इस दृष्टि से संविधान के उपबन्ध तीन श्रेणियों में रखे

१—C. F. Strong—Modern Political Constitutions पृ० १४६।

गये हैं। पहली श्रेणी में संघ और राज्य की न्यायपालिका, संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार, संघ और राज्यों के बीच सम्बन्ध, संघ, राज्य और समवर्ती सूचियों, संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन तथा संविधान के संशोधन से सम्बन्ध रखनेवाले उपबन्ध हैं। इनको छोड़कर अधिकांश उपबन्ध द्वितीय श्रेणी में रखे गये हैं। द्वितीय श्रेणी में के किसी उपबन्ध में तभी संशोधन हो सकता है जब संसद के किसी सदन में उस प्रयोजन के लिए विधेयक पेश किये जाने पर, वह प्रत्येक सदन द्वारा उस सदन की समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत से तथा उस सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से पास कर दिया जाय और इसके बाद उसपर राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाय। लेकिन अगर प्रथम श्रेणी में के किसी उपबन्ध में संशोधन करना हो तब उसके लिए कोई विधेयक राष्ट्रपति के सामने उसकी अनुमति के लिए तभी रखा जायगा जब प्रथम अनुसूची के भाग (क) और (ख) में के राज्यों में से कम से कम आधे राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा भी उसके समर्थन में प्रस्ताव पास हो जाय। इनके बाद जो उपबन्ध बच जाते हैं, उनमें समुचित विधान-मंडलों द्वारा साधारण विधि बनाने की प्रक्रिया के अनुसार संशोधन किया जा सकता है। ऐसे उपबन्धों का जिक्र यथास्थान, पिछले अध्यायों में किया जा चुका है।

अब भारतीय संविधान के संशोधन-सम्बन्धी उपबन्धों पर विचार किया जा सकता है। ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है, कि भारत के संविधान के अधिकांश उपबन्धों में संशोधन करने के लिए विशेष प्रक्रिया अपेक्षित है, हालाकि यह संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के संविधान में दी हुई प्रक्रिया के इतना कठिन नहीं है। इसीलिए इसे स्थिर संविधानों की श्रेणी में ही रखा जा सकता है, परिवर्तनशील संविधानों की श्रेणी में नहीं। यह कोई दोष की बात नहीं है। संघीय संविधान में संशोधन के लिए विशेष प्रक्रिया ही स्वाभाविक है। विशेषकर जिन उपबन्धों का राज्यों के हितों से सम्बन्ध है, उनमें संशोधन के लिए राज्यों की सम्मति की व्यवस्था करना उचित जान पड़ता है। हाँ, यह अवश्य विचारणीय है कि किसी संशोधन के पास होने के लिए संसद के प्रत्येक सदन के उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत के समर्थन की अपेक्षा रहनी चाहिए या नहीं। भारतीय

संविधान में कुछ ऐसे उपबन्ध हैं जिनके कारण सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के रास्ते में बड़ी बाधा पहुँचेगी। उदाहरण के लिए, सम्पत्ति-सम्बन्धी उन उपबन्धों को लिया जा सकता है, जिन पर 'मौलिक अधिकार' शीर्षक अध्याय में विस्तार के साथ विचार किया गया है। कभी ऐसी स्थिति आ सकती है जब सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण और पुनर्विभाजन के बिना देश में शान्ति और सुव्यवस्था-कायम रखना भी मुश्किल हो जाय। ऐसी स्थिति में भी ऐसा हो सकता है कि जिस दल में देश की अधिकांश जनता का विश्वास हो तथा जिस पर शासन चलाने की जिम्मेदारी हो उसे संसद में दो तिहाई बहुमत नहीं प्राप्त हो। किसी पार्टी के लिए दो तिहाई बहुमत प्राप्त करना कोई बहुत आसान काम नहीं है। यह भी हो सकता है कि विरोधी दल अल्पमत में रहते हुए भी बहुमत के साथ सहयोग नहीं करे और जिद का रास्ता अपनावे। वैसी अवस्था में सिवाय गृहयुद्ध, सशस्त्र क्रान्ति, संविधान के अतिक्रमण या डिक्टेटरशिप के कोई दूसरा रास्ता नहीं बच जायगा। इसलिए देश में शान्तिपूर्वक ही विकास का क्रम चलता रहे, इसके लिए तो यह आवश्यक जान पड़ता है कि संसद में किसी संशोधन के पास होने के लिए दो तिहाई बहुमत की जगह पर साधारण बहुमत अपेक्षित रखना अधिक बुद्धिमानी का काम होगा। अगर यह उचित नहीं जान पड़े तो कम से कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि जिस तरह ऊपर बताई गई दोनों श्रेणियों से बचे हुए कुछ उपबन्ध विधान-मडंलों द्वारा साधारण प्रक्रिया के अनुसार ही संशोधित किये जा सकते हैं, उसी प्रकार सम्पत्ति-सम्बन्धी मूल अधिकार भी संशोधित किये जा सकें। तब बहुमत के मार्ग में कोई बहुत बड़ा रोड़ा नहीं रहेगा और संविधान का अतिक्रमण किये बिना ही निर्वाचन द्वारा प्रकट की गई जनमत की इच्छा के अनुसार समय की आवश्यकताओं को देखते हुए सामाजिक और आर्थिक सुधार या पुनर्निर्माण की योजनाएँ लागू की जा सकेंगी।

अध्याय ३०

अस्थायी तथा अन्तर्कालीन उपबन्ध

जब किसी देश के लिए नया संविधान बनता है, तब उसमें के सभी उपबन्ध एक ही साथ नहीं लागू हो जाते। इसके अलावे पहले से जो न्यायालय, इत्यादि काम करते आते हैं, उन्हें हटाकर सब कुछ नया ही नहीं गठित किया जाता है। इसलिए प्रायः प्रत्येक नये संविधान में इस तरह की बातों की व्यवस्था के लिए कुछ अस्थायी तथा अन्तर्कालीन उपबन्ध (Temporary and Transitional Provisions) रहते हैं। भारतीय संविधान में भी ये उपबन्ध हैं। इनमें से मुख्य उपबन्धों को नीचे दिया जा रहा है।

इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए इसके प्रारम्भ से ठीक पहले भारत में चालू रहने वाली सभी विधियाँ उसमें तब तक चालू होती रहेंगी जब तक कि सक्षम (Competent) विधान-मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा बदली, रद्द या संशोधित नहीं की जायँ। ऐसी विधियों को इस संविधान के उपबन्धों से संगत करने के प्रयोजन से राष्ट्रपति आदेश द्वारा उनमें आवश्यक परिवर्तन कर सकेगा। लेकिन इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष की समाप्ति के बाद राष्ट्रपति को ऐसा परिवर्तन करने की शक्ति नहीं होगी। किसी सक्षम विधान-मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी को राष्ट्रपति द्वारा इस तरह परिवर्तित किसी विधि को रद्द या संशोधित करने की भी शक्ति होगी।

जब तक कि इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार राष्ट्रपति निर्वाचित न हो जाय तथा पद ग्रहण न कर ले, तब तक वह व्यक्ति राष्ट्रपति होगा जिसे भारत डोमिनियन की संविधान-सभा ने उस पद के लिए निर्वाचित किया हो। इस प्रकार संविधान-सभा द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति के मर जाने, पदत्याग करने या हटाये जाने के कारण या अन्यथा, उसके पद के खाली होने पर, अन्तर्कालीन

संसद द्वारा उस पद के लिए निर्वाचित व्यक्ति राष्ट्रपति होगा। जब तक ऐसा व्यक्ति निर्वाचित न हो, तब तक भारत का मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। ऐसे व्यक्ति, जिन्हें राष्ट्रपति उस रूप में नियुक्त करे, इस संविधान के अधीन राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद् के सदस्य होंगे। जब तक इस प्रकार नियुक्तियाँ नहीं की जायँ, तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन के लिए मंत्रियों के रूप में काम करने वाले सब व्यक्ति ऐसे प्रारम्भ पर राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद् के सदस्य हो जायँगे तथा उस रूप में कार्य करेंगे। इसी तरह जब तक कि इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार संसद के दोनों सदन सम्यक् रूप से गठित न हो जायँ तथा उनका प्रथम अधिवेशन नहीं बुला लिया जाय, तब तक भारत डोमिनियन की संविधान-सभा अन्तर्कालीन संसद होगी और इस संविधान के उपबन्धों द्वारा संसद को दी गई सब शक्तियों का प्रयोग तथा कर्तव्यों का पालन करेगी।

जब तक संविधान के उपबन्धों के अनुसार नया राज्यपाल नियुक्त न हो गया हो तथा उसने अपना पद ग्रहण न कर लिया हो, तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले जो व्यक्ति किसी प्रान्त में राज्यपाल के पद पर रहा हो, वह ऐसे प्रारम्भ पर प्रथम अनुसूची के भाग (क) में के तत्स्थानीय राज्य का राज्यपाल होगा। प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में के राज्य की मन्त्रि-परिषद् के सदस्य वही होंगे, जिन्हें यथास्थान राज्यपाल या राजप्रमुख उस पद के लिए नियुक्त करे। जब तक इस प्रकार नियुक्तियाँ न की जायँ तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानीय प्रान्त या देशी राज्य के लिए मन्त्रियों के रूप में काम करने वाले सब व्यक्ति ऐसे प्रारम्भ पर यथास्थान उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख की मंत्रि-परिषद् के सदस्य होंगे तथा उस रूप में, कार्य करेंगे। जब तक प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) में उल्लिखित प्रत्येक राज्य का विधान-मंडल इस संविधान के उपबन्धों के अधीन सम्यक् रूप से गठित न हो जाय तथा उसकी प्रथम बैठक न बुला ली जाय, तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानीय प्रान्त या देशी राज्य का विधान-मंडल इस संविधान के उपबन्धों द्वारा ऐसे राज्य के विधान-मंडल को दी गई सब शक्तियों का प्रयोग तथा कर्तव्यों का पालन करेगा।

इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले फेडरल न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर काम करने वाले व्यक्ति, यदि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों तो, ऐसे प्रारम्भ पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश हो जायँगे। इस संविधान के प्रारम्भ पर फेडरल न्यायालय में लम्बित सभी व्यवहारवाद, अपीलें और कार्यवाहियाँ उच्चतम न्यायालय में चली जायँगी तथा उच्चतम न्यायालय को उनके सुनने तथा निर्धारण करने का क्षेत्राधिकार होगा। साथ ही साथ इस संविधान के प्रारम्भ से पहले फेडरल न्यायालय द्वारा सुनाये या दिये गये निर्णयों और आदेशों का ऐसा बल और प्रभाव होगा मानों वे उच्चतम न्यायालय द्वारा सुनाये या दिये गये हों। भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र व्यवहार, दंड और राजस्व क्षेत्राधिकार रखनेवाले सब न्यायालय तथा न्यायिक, कार्यचालक और अनुसचिवीय (Ministerial), प्राधिकारी और पदाधिकारी इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए अपने अपने कार्यों या कृत्यों को करते रहेंगे। इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रान्त या देशी राज्य के उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर काम करनेवाले सब व्यक्ति, यदि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों तो, ऐसे प्रारम्भ पर यथास्थान प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में के तत्स्थानीय राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो जायँगे। इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के महालेखा-परीक्षक के रूप में काम करनेवाला व्यक्ति, ऐसे प्रारम्भ पर, यदि वह अन्यथा पसन्द न कर चुका हो तो, भारत का नियंत्रक महालेखा परीक्षक हो जायगा। इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन के लोक सेवा-आयोग के सदस्य के रूप में काम करनेवाले व्यक्ति ऐसे प्रारम्भ पर, यदि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों तो, संघ-लोकसेवा-आयोग के सदस्य हो जायँगे। इसी तरह इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रान्त के लोकसेवा-आयोग के अथवा प्रान्तों के किसी समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले किसी लोकसेवा-आयोग के सदस्य के रूप में काम करनेवाले व्यक्ति, जब तक कि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों, यथास्थिति तत्स्थानीय राज्य के लोकसेवा-आयोग के अथवा राज्यों के समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करने-वाले संयुक्त राज्य-लोकसेवा-आयोग के सदस्य हो जायँगे।

इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इसके प्रारम्भ से पाँच वर्षों

तक सूती और ऊनी कपड़ा, कच्ची रूई, बिनौले (Cotton Seed), कागज, खाद्य-पदार्थ, मवेशियों के चारे, कोयले, लोहे, इस्पात और अभ्रक के किसी राज्य के अन्दर व्यापार और वाणिज्य तथा उनके उत्पादन, संभरण (Supply) और वितरण के बारे में विधि बनाने की संसद को इस प्रकार शक्ति होगी मानों ये विषय समवर्ती सूची में दिये गये हैं। संसद को इन विषयों में से किसी से सम्बद्ध विधियों के विरुद्ध अपराध, उच्चतम न्यायालय से भिन्न सब न्यायालयों का उन विषयों में से किसी के बारे में क्षेत्राधिकार और शक्तियों तथा उनमें से किसी के सम्बन्ध में किसी न्यायालय में ली जानेवाली फीसों से अन्य फीसों के बारे में विधि बनाने की भी पाँच वर्षों तक इसी प्रकार शक्ति होगी। लेकिन संसद द्वारा बनाई गई कोई विधि, जिसे इस उपबन्ध के अभाव में बनाने के लिए वह सक्षम न होती, पाँच वर्षों के बाद असमता की मात्रा तक इसके पहले की गई या की जाने से छोड़ी गई बातों को छोड़ कर अन्य बातों के सम्बन्ध में प्रभावहीन हो जायगी।

प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्यों के विषय में विशेष उपबन्ध किये गये हैं। इनके अनुसार इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इसके प्रारम्भ से दस वर्ष तक इस तरह के प्रत्येक राज्य की सरकार राष्ट्रपति के साधारण नियन्त्रण के अधीन होगी तथा उन निर्देशों का पालन करेगी जिन्हें वह समय समय पर दे। संसद विधि द्वारा दस वर्ष की इस कालावधि को किसी राज्य के लिए बढ़ा-घटा भी सकती है। लेकिन राष्ट्रपति आदेश द्वारा यह निर्देश दे सकेगा कि ये उपबन्ध उस आदेश में उल्लिखित किसी राज्य के सम्बन्ध में नहीं लागू होंगे।

इसी तरह जम्मू और काश्मीर राज्य के सम्बन्ध में भी कुछ विशेष उपबन्ध हैं। उनके अनुसार प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्यों के शासन के लिए संविधान में दिये गये उपबन्ध उस राज्य पर नहीं लागू होंगे। संसद की उस राज्य के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति संघ-सूची और समवर्ती सूची में के उन विषयों तक सीमित होगी, जिनको राज्य की सरकार से परामर्श करके राष्ट्रपति उन विषयों का तत्स्थानीय विषय घोषित कर दे जो भारत डोमिनियन में उस राज्य के प्रवेश को शासित करनेवाले प्रवेश-पत्र में उल्लिखित ऐसे विषय

हैं जिनके बारे में डोमिनियन विधान-मंडल को विधि बनाने की शक्ति थी। संसद उक्त सूचियों में के उन अन्य विषयों के बारे में भी विधि बना सकेगी जिनको उस राज्य की सरकार की सहमति से राष्ट्रपति आदेश द्वारा उल्लिखित करे। संविधान के पहले अनुच्छेद[1] के उपबंध, जिनके अनुसार भारतीय संघ के राज्य-क्षेत्र की परिभाषा की गई है, जम्मू और काश्मीर राज्य पर लागू होंगे। इस संविधान के उपबन्धों में से ऐसे अन्य उपबन्ध ऐसे अपवादों और परिवर्तनों के साथ उस राज्य के बारे में लागू होंगे जिन्हें राष्ट्रपति आदेश द्वारा उल्लिखित करे। लेकिन ऐसा कोई आदेश, यदि वह उस राज्य के प्रवेश-पत्र में उल्लिखित विषयों से सम्बद्ध हो तो, राज्य की सरकार से परामर्श किये बिना तथा, यदि इनसे भिन्न विषयों से सम्बन्ध रखता हो तो, उस सरकार की सहमति के बिना, नहीं निकाला जायगा। यदि ऊपर दिये गये अवसरों पर उस राज्य की सरकार की सहमति उस राज्य के लिए संविधान बनानेवाली संविधान-सभा के बुलाये जाने से पहले दी जाय तो उसे ऐसी सभा के सामने उसके निर्णय के लिए रखा जायगा। उपर्युक्त उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति लोक-अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगा कि ये उपबन्ध अब नहीं लागू होंगे अथवा ऐसे अपवादों और परिवर्तनों के सहित तथा उस तारीख से लागू होंगे जिन्हें वह उल्लिखित करे। लेकिन उस राज्य की संविधान-सभा की सिफारिश के बिना राष्ट्रपति के द्वारा ऐसी अधिसूचना नहीं निकाली जा सकेगी। इन उपबन्धों के प्रयोजनों के लिए राज्य की सरकार का अर्थ है वह व्यक्ति जो १९४८ की मार्च के पाँचवें दिन निकाली गई महाराज की उद्घोषणा के अधीन पदस्थ मंत्रि-परिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करते हुए राष्ट्रपति द्वारा जम्मू और काश्मीर के महाराज के रूप में स्वीकार किया जाता हो।

१—यह अनुच्छेद इस प्रकार है—भारतीय संघ के "राज्य और राज्य-क्षेत्र प्रथम अनुसूचि के भाग (क), (ख) और (ग) में उल्लिखित राज्य और उनके राज्य-क्षेत्र होंगे"। प्रथम अनुसूचि के भाग (ख) में जम्मू और काश्मीर राज्य का भी उल्लेख है। इसलिए संविधान के अनुसार वह भी भारतीय संघ का एक राज्य है।

अध्याय ३१

संविधान-संशोधन अधिनियम (१९५१)

भारतीय संविधान के भिन्न-भिन्न भागों पर पिछले अध्याय में विचार किया जा चुका है। इसका जिक्र भी कर दिया गया है कि यह संविधान २६ जनवरी, १९५० से लागू है। इसके करीब १६ महीने लागू रहने के बाद भारत सरकार ने इसमें कुछ संशोधन की आवश्यकता महसूस की और इसके लिए प्रस्ताव पेश करने का निश्चय किया। इसी निश्चय के अनुसार प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने १२ मई, १९५१ को संसद में संविधान संशोधन बिल पेश किया। उस बिल में संविधान के कई अनुच्छेदों में संशोधन के लिए उपबन्ध किये गये थे। उस पर संसद ने विचार किया और कुछ परिवर्तन के साथ उसे ३१ मई को पास कर दिया। इसके बाद १८ जून, १९५१ को राष्ट्रपति ने उस पर अपनी अनुमति भी दे दी। इसलिए अब उसके द्वारा किये गये संशोधन संविधान के भाग बन चुके हैं[१]। पीछे के 'संविधान में संशोधन' शीर्षक अध्याय में यह बताया गया है कि संविधान के कुछ भागों में संशोधन करने के लिए संसद का समर्थन ही पर्याप्त है। उसी उपबन्ध के अधीन आनेवाले अनुच्छेदों में ये संशोधन किये गये हैं। यहाँ पर संक्षेप में इन संशोधनों का जिक्र किया जायगा। इसके बाद इनके स्वरूप पर विचार होगा।

संशोधन

अधिकांश संशोधन मूल अधिकारों से सम्बन्ध रखते हैं। संविधान के पन्द्रहवें अनुच्छेद के अनुसार राज्य की ओर से किसी नागरिक के विरुद्ध केवल

---

१. वैसे तो बिहार और उत्तरप्रदेश के कुछ जमींदारों की ओर से उच्चतम न्यायालय में यह सवाल पेश किया गया कि इनमें से जमींदारों के हितों से सम्बन्ध रखनेवाले संशोधन ऐसे हैं जिन्हें पास करने का संसद को अधिकार नहीं है। इसी तरह अन्य संशोधनों के सम्बन्ध में भी आपत्ति की जा सकती है और उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद ही उन्हें स्थायित्व प्राप्त हो सकता है।

धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद किये जाने की मनाही की गई है। हाँ, इससे राज्य की स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबन्ध बनाने में बाधा नहीं होती। इसी तरह उन्तीसवें अनुच्छेद के अनुसार राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य-निधि से सहायता पानेवाली किसी शिक्षा-संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वञ्चित नहीं रखा जा सकता था। अब संशोधन द्वारा इन अनुच्छेदों के रहते हुए भी राज्य को सामाजिक या शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए किन्हीं वर्गों के, अथवा अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के विकास के लिए विशेष उपबन्ध करने की शक्ति दे दी गई है।

भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के अधिकार-सम्बन्धी उपबन्ध में भी संशोधन किया गया है। संविधान के अनुच्छेद १९ (२) के अनुसार इस स्वतन्त्रता पर अपमान-लेख, अपमान-वचन, मान-हानि, न्यायालय-अवमान, शिष्टाचार या सदाचार अथवा राज्य की सुरक्षा के आधार पर रुकावट लगाई जा सकती थी। संशोधन द्वारा इन अपवादों में से अपमान-लेख और अपमान-वचन तो हटा दिये गये हैं, लेकिन इनमें तीन और अपवाद जोड़ दिये गये हैं। ये अपवाद हैं—सार्वजनिक सुव्यवस्था (Public order), बाहरी देशों के साथ मित्रवत सम्बन्ध (Friendly relations with foreign states) और कोई जुर्म करने के लिए उभाड़ना (Incitement to an offence)। इसका परिणाम यह हुआ कि अब अगर कोई व्यक्ति या समाचार-पत्र अपने भाषण या विचारों की अभिव्यक्ति द्वारा सार्वजनिक सुव्यवस्था में बाधा उपस्थित करे अथवा किसी को कोई जुर्म करने के लिए उभाड़े, तो उसकी भाषण या अभिव्यक्ति की स्वतत्रंता पर कानून के जरिए रुकावट डाली जा सकती है। लेकिन शर्त यह है कि ये रुकावटें युक्तिसंगत (Reasonable) होनी चाहिए। साथ ही साथ इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले इस तरह की युक्तिसंगत रुकावटें डालने वाली जितनी विधियाँ लागू थीं वे सभी तब तक लागू बनी रहेंगी जब तक कि समुचित विधान-मंडल द्वारा वे परिवर्तित या रद्द नहीं कर दी जायँ। इस संशोधन के अभाव में अगर ऐसी कोई विधि किसी

न्यायालय के निर्णय द्वारा अवैध भी घोषित कर दी जा चुकी हो, तब भी ऐसे निर्णय का अब कोई असर नहीं होगा।

संविधान के अनुच्छेद १९ (१) (छ) के अनुसार सभी नागरिकों को कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार दिया गया था। अनुच्छेद १९ (६) के अनुसार राज्य को साधारण जनता के हितों में इस अधिकार के प्रयोग पर रुकावट डालने की तथा किसी वृत्ति, उपजीविका इत्यादि के लिए आवश्यक योग्यताएँ विहित करने की शक्ति थी। इस अनुच्छेद में संशोधन द्वारा राज्य को ऐसी विधि बनाने की शक्ति भी दे दी गई है जिसके अनुसार स्वयं राज्य द्वारा अथवा राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में रहने वाली किसी संस्था (Corporation) द्वारा कोई व्यापार, कारबार, उद्योग-धंधा या सेवा की जा सके। ऐसा करते समय नागरिकों को पूर्णतः या अंशतः ऐसे व्यापार, कारबार इत्यादि से हटाया (Exclude) भी जा सकता है।

मूल अधिकार वाले अध्याय में यह देखा जा चुका है कि सम्पत्ति को भी मूल-अधिकार मान लिया गया है। सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकार संविधान के इकतीसवें अनुच्छेद में दिया गया है। उस अनुच्छेद को ज्यों के त्यों कायम रखा गया है। लेकिन संशोधन द्वारा उसके नीचे दो और अनुच्छेद—अनुच्छेद ३१ (क) और ३१ (ख)—जोड़ दिये गये हैं। अनुच्छेद ३१ (क) के अनुसार मूल-अधिकार शीर्षक अध्याय में किसी बात के होते हुए भी ऐसी कोई विधि जो राज्य द्वारा किसी जमीन्दारी के लिये जाने का उपबन्ध करती हो, इस आधार पर शून्य नहीं ठहराई जा सकेगी कि वह उस अध्याय के किसी उपबन्ध द्वारा दिये गये किसी अधिकार से असंगत है। इसका अर्थ यह है कि ऐसी किसी विधि को किसी न्यायालय द्वारा अवैध नहीं किया जा सकेगा। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण शर्त यह है कि राज्यों द्वारा बनाई गई ऐसी विधियाँ न्यायालयों के हस्तक्षेप से तभी स्वतंत्र हो सकेंगी जब उन पर राष्ट्रपति की अनुमति मिल चुकी हो। अनुच्छेद ३१ (ख) द्वारा, ऊपर के उपबन्ध की व्यापकता पर बिना कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले हुए, यह व्यवस्था की गई है कि इसके पहले भिन्न-भिन्न राज्यों द्वारा जमीन्दारी खतम करने के लिए बनाये गये अधिनियम मूल-अधिकार शीर्षक अध्याय में दिये गये किसी अधिकार से असंगत होने के कारण

किसी न्यायालय द्वारा अवैध नहीं करार दिये जा सकते तथा किसी न्यायालय के प्रतिकूल निर्णय के होते हुए भी ये तब तक लागू होते रहेंगे जब तक कि समुचित विधान-मंडल द्वारा उन्हें रद्द या परिवर्तित नहीं कर दिया जाय। इस तरह के अधिनियमों की संख्या सब मिलाकर तेरह है। संविधान में पहले आठ अनुसूचियाँ थीं। अब संशोधन द्वारा एक नवीं अनुसूची भी जोड़ दी गयी है और उसी में ये सब अधिनियम रखे गये हैं। इनमें बिहार के एक, उत्तर प्रदेश के एक, मध्य प्रदेश के एक, बम्बई के छः, मद्रास के दो तथा हैदराबाद के दो अधिनियम हैं। इनका नाम पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट में दे दिया गया है।

इनके अतिरिक्त कई और संशोधन भी हैं जो उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। एक संशोधन के अनुसार अब यह जरूरी नहीं रहा कि संसद तथा राज्य के विधान-मंडल का अधिवेशन प्रति वर्ष कम से कम दो बार बुलाया जाय। हाँ, पहले की तरह अब भी यह जरूरी है कि उनके एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक तथा आगामी अधिवेशन की प्रथम बैठक के लिए नियुक्त तारीख के बीच में ६ मास का अन्तर नहीं हो। इसी तरह अब राष्ट्रपति संसद के प्रत्येक अधिवेशन में भाषण नहीं दे कर सिर्फ प्रत्येक वर्ष के प्रथम अधिवेशन में भाषण देगा और अब यह जरूरी नहीं है कि संसद के अन्य कार्यों से पहले इस भाषण में कही गई बातों पर विचार कर लिया जाय। यही बात राज्यों के विधान-मंडलों में राज्यपालों या राजप्रमुखों द्वारा दिये जाने वाले भाषणों के सम्बन्ध में भी लागू है। अन्य दो अनुच्छेदों में संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) में के राज्यों की तरह उस अनुसूची के भाग (ग) में के राज्यों के लिए भी अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों की सूची तैयार करने का अधिकार दिया गया है। पहले राष्ट्रपति को संविधान के प्रारम्भ से दो साल के भीतर देश में लागू विधियों को संविधान के उपबन्धों से संगत बनाने की शक्ति दी गई थी। अब संशोधन द्वारा इन दो वर्षों को बढ़ा कर तीन वर्ष कर दिया गया है। एक अन्य संशोधन के अनुसार अगर कोई व्यक्ति इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो, तो भारत का नागरिक नहीं होने पर भी वह उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अथवा किसी दूसरे उच्च न्यायालय

या उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या अन्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किये जाने के योग्य समझा जायगा।

संशोधनों पर विचार

संविधान में जो संशोधन किये गये हैं, उनका जिक्र ऊपर हो चुका है। इन संशोधनों पर संसद के भीतर तथा बाहर बहुत विवाद हुआ है। यहाँ संक्षेप में इसके सभी पक्षों पर विचार किया जायगा। सबसे पहले कुछ लोगों की राय में संविधान के प्रारम्भ से सोलह महीनें के भीतर ही इसमें संशोधन करना उचित नहीं था। उनकी दृष्टि में इससे संविधान की पवित्रता नहीं रह जाती है और वह एक साधारण वस्तु की श्रेणी में आ जाती है जिसमें लोग जब चाहें परिवर्तन कर सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा विचार निरी भावुकता का उदाहरण है। संविधान स्वयं साध्य नहीं; बल्कि साधन मात्र है। इसलिए इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन हो सकते हैं, बल्कि होने चाहिए। अगर इसमें बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन नहीं होते चलें, तो इससे लाभ के बदले हानि की ही अधिक सम्भावना रहेगी। और सोलह महीने तो बहुत हैं अगर सोलह सप्ताह या दिन के भीतर ही संविधान में कहीं पर दोष दिखाई पड़े तो उसे दूर करने में देर करना उचित नहीं है। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि जो संशोधन किये गये हैं, वे आवश्यक थे। यह तो उनके स्वरूप पर विचार करने के बाद ही कहा जा सकता है। लेकिन अगर संशोधन आवश्यक हों, तो सिर्फ इस कारण से उनका होना नहीं रोका जा सकता कि संविधान के प्रारम्भ के बाद इतना शीघ्र संशोधन करना उचित नहीं है।

कुछ लोगों की यह भी राय थी कि वर्तमान संसद बालिग मताधिकार के आधार पर नहीं, बल्कि बहुत सीमित मताधिकार के आधार पर निर्वाचित हुई थी। इसलिए नैतिक दृष्टि से संविधान में संशोधन—जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए यह पूरी तरह योग्य नहीं थी। इस दलील में कुछ सार अवश्य है। इसके साथ-साथ यह भी कहा जा सकता है कि इस संसद का गठन भी प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर नहीं हुआ था। लेकिन यह भी तो नहीं भूलना चाहिए कि ठीक यही अयोग्यताएँ संविधान-सभा के सम्बन्ध में भी लागू थीं।

इसलिए ऊपर दी हुई आलोचना के जवाब में यह कहा जा सकता है—और पंडित नेहरू ने संसद में संशोधन के समर्थन में बोलते हुए कहा भी—जब कि संविधान-सभा संविधान बनाने के योग्य थी तब यह संसद भी उसमें इधर उधर कुछ संशोधन करने के लिए अयोग्य नहीं करार दी जा सकती है। लेकिन यह कोई बहुत सन्तोषजनक जवाब नहीं है। अगर पहले कभी एक गलती हो गई तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि बराबर उस तरह की गलती की जा सकती है। हाँ, अगर यह साबित किया जा सके कि ये संशोधन इतने आवश्यक थे कि तनिक भी देर करना खतरे से खाली नहीं था, तब जरूर इस आलोचना का माकूल जवाब मिल जायगा। इसलिए इस आलोचना का उत्तर संशोधनों के स्वरूप पर विचार करने के बाद ही दिया जा सकता है। इसका उत्तर भी तभी दिया जायगा कि संशोधन-बिल को पास करने में जितनी जल्दीबाजी दिखलाई गई है, वह उचित थी अथवा नहीं।

इसलिए अब इन संशोधनों के स्वरूप पर विचार करना ठीक होगा। यहाँ सभी संशोधनों पर नहीं विचार करके सिर्फ इनमें से मुख्य संशोधनों पर ही विचार किया जायगा। सभी मुख्य संशोधन मूल अधिकार-सम्बन्धी उपबन्धों में ही किये गये हैं। सबसे पहले हम समता-सम्बन्धी उपबन्ध में किये गये संशोधन को ले लें। इसके पहले पिछड़े वर्गों के हित में विशेष उपबन्ध करने में संविधान से बहुत बाधा उपस्थित हो सकती थी, क्योंकि अनुच्छेद १५ के अनुसार किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध सिर्फ उसकी जाति इत्यादि के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जा सकता था। इसी तरह अनुच्छेद २९ के अनुसार किसी शिक्षा-संस्था में किसी को सिर्फ उसकी जाति, धर्म, इत्यादि में से किसी बात के कारण भर्ती करने से इनकार नहीं किया जा सकता था। सरकार की दृष्टि में भारत में ऐसे बहुत से पिछड़े हुए वर्ग हैं जिनके सदस्यों को बिना कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान किये हुए उन्हें दूसरे वर्गों की श्रेणी में नहीं लाया जा सकता है। मद्रास की सरकार ने अपने यहाँ इसी तरह शिक्षा-संस्थाओं में कुछ वर्गों के लिए स्थान सुरक्षित करने की कोशिश की थी। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने इसे संविधान से असंगत होने के कारण अवैध घोषित कर दिया था। अब संशोधन के बाद सामाजिक तथा शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों

के लिए शिक्षा-संस्थाओं में स्थान सुरक्षित किये जा सकेंगे। यह उचित है अथवा अनुचित इसका जवाब एक शब्द में नहीं दिया जा सकता है। वैसे तो सिद्धान्त की दृष्टि से उचित यही जान पड़ता है कि सबके लिए समान सुविधा हो और किसी भी तरह का विभेद नहीं हो। देश में एक राष्ट्रीयता की सबल भावना की सृष्टि भी इसी से होगी। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से कुछ लोगों को इसमें कठिनाई मालूम पड़ती है। कुछ वर्ग इतने पिछड़े हुए हैं कि अगर बराबर इसी सिद्धान्त का पालन किया जाय तो वे कभी भी दूसरों की समता में नहीं खड़े हो सकेंगे। ऐसा करते समय जाति इत्यादि का ख्याल अवश्य आ जायगा और आजकल सामाजिक स्वास्थ्य के लिए इस तरह का ख्याल अच्छा नहीं है। लेकिन फिर भी आज भारतीय समाज की जो अवस्था है उसमें अभी तत्काल सामाजिक उन्नति की कोई योजना बनाते समय शायद इससे बचा नहीं जा सकता है। विशेष कर यह बात वैसी योजना के लिए लागू होती है जो वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को एकदम तोड़ कर कोई निर्माण करने की बात नहीं सोचती है। इसलिए यह संशोधन करके उचित ही किया गया है। लेकिन इस उपबन्ध के प्रयोग में बहुत सावधानी की जरूरत होगी। नहीं तो, इससे लाभ के बदले हानि भी हो सकती है।

सबसे अधिक विवाद भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता-सम्बन्धी संशोधन पर हुआ है। संशोधन द्वारा इस स्वतंत्रता पर नई-नई रुकावटों का लगाया जाना सम्भव कर दिया गया है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, ये रुकावटें सार्वजनिक सुव्यवस्था या बाहर के देशों से मित्रवत सम्बन्ध में बाधा पहुँचानेवाले अथवा किसी को कोई जुर्म करने के लिए उभाड़नेवाले व्यक्ति या समाचार-पत्र की स्वाधीनता पर लगाई जा सकती हैं। सरकार की दृष्टि में इन रुकावटों का अभाव उचित नहीं था। एक उच्च न्यायालय ने तो यहाँ तक कह दिया था कि अगर कोई व्यक्ति भाषण या लेख द्वारा हत्या का प्रचार करे तब भी उसके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती। इसके विपरीत संसद के भीतर और बाहर दोनों जगह इस संशोधन की बहुत निन्दा की गई है। समाचार-पत्रों में भी शायद ही ऐसा कोई समाचार-पत्र हो जिसने कड़े से कड़े शब्दों में इसका विरोध नहीं किया हो।

विरोधियों की राय में इस संशोधन से भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रत एकदम खतम सी हो जाती है। विचार करने पर विरोधियों की यह धारणा उचित नहीं जान पड़ती है। अगर कोई व्यक्ति हत्या या लूट या अन्य किसी जुर्म का प्रचार करे, तो यह नहीं कहा जा सकता कि भाषण या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उसे इसके लिए पूरी छूट रहनी चाहिए। हाँ, दूसरे देश के साथ मित्रवत सम्बन्ध के नाम पर भाषण की स्वतंत्रता पर रुकावट का लगाया जाना उतना उपयुक्त नहीं जान पड़ता। इसके पहले कभी इस तरह के उपबन्ध की चर्चा भी सुनने में नहीं आई थी। सरकार ने क्यों इसकी जरूरत महसूस की इसको भी स्पष्टतः सबके सामने नहीं रखा गया। फिर भी, यह कल्पना की जा सकती है कि कभी ऐसा समय आ सकता है जब भाषण की स्वतंत्रता के दुरुपयोग से किसी देश के साथ मित्रवत सम्बन्ध बनाये रखने में सचमुच में बाधा उपस्थित हो और युद्ध निकट आ जाय। आजकल की तरह अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी के युग में ऐसी स्थिति का आ जाना एकदम असम्भव नहीं जान पड़ता है। विशेषकर बगल में पाकिस्तान के होने से इस तरह की शंका की और भी गुञ्जाइश रहती है। असल प्रश्न इन शक्तियों के प्रयोग का है। संविधान में अगर ये शक्तियाँ रहें, तो सिर्फ इसी से भाषण या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं खतम हो जायगी। लेकिन अगर सरकार द्वारा इनका दुरुपयोग हो, तो सचमुच में ये शक्तियाँ इतनी व्यापक हैं कि व्यक्ति की स्वाधीनता बहुत हद तक खतरे में पड़ जायगी। लेकिन जैसा कि मूल अधिकारों के स्वरूप पर विचार करते समय एक पिछले अध्याय में ही कहा जा चुका है, इस दुरुपयोग को रोकने का उपाय संविधान में सरकार की शक्तियों को सीमित करना नहीं, बल्कि लोगों में अपने अधिकारों के लिए चेतना का फैलना, विरोधी दलों का शक्तिशाली होना, राजनीतिक दलों में सार्वजनिक ईमान्दारी का विकास तथा देश में जनतांत्रिक वायुमंडल का छाया रहना है। संविधान के द्वारा इस दुरुपयोग को रोकने के लिए जो कुछ किया जा सकता था वह रुकावटों का युक्तिसंगत होना जरूरी करके किया गया है। इसका परिणाम यह होगा कि जब कभी संसद भाषण या अभिव्यक्ति की स्वाधीनता पर रुकावट डालते हुए कोई विधि

बनावेगी, तो उसके खिलाफ न्यायालयों में यह कह कर आपत्ति की जा सकेगी कि वह रुकावट युक्तिसंगत नहीं है और वह विधि तभी लागू की जा सकेगी जब न्यायालय उसे युक्तिसंगत करार दें। इससे सरकार या संसद की तरफ से मनमानी कारवाई नहीं की जा सकेगी और भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बहुत हद तक सम्भव होगी।

जिस संशोधन द्वारा सरकार को स्वयं कोई व्यापार, कारबार, उद्योग या सेवा करने का तथा ऐसा करते समय इनमें से किसी से नागरिकों को पूर्णतः या अंशतः अलग करने का अधिकार दिया गया है, वह सराहनीय है। इससे उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के मार्ग का एक रोड़ा हट गया है। लेकिन जब हम इससे आगे बढ़कर सम्पत्ति-सम्बन्धी उपबन्ध में किये गये संशोधन पर विचार करते हैं, तो वह सन्तोषप्रद नहीं मालूम पड़ता है। जमीन्दारी खतम करने के लिए भिन्न-भिन्न राज्यों में जो विधियाँ बनाई गई थीं, उन्हें जायज करार देना तथा उनको और भविष्य में इस काम के लिए बनाई जाने वाली विधियों को न्यायालयों के हस्तक्षेप से बचा देना तो अवश्य ही प्रशंसनीय है। लेकिन सिर्फ इसी से देश की आर्थिक समस्या नहीं सुलझाई जा सकती। जमीन का बँटवारा करने में या उद्योगों के राष्ट्रीयकरण में इस संशोधन से तनिक भी सहायता नहीं मिलेगी। इन कामों में तो अब भी वही बाधाएँ रहेंगी जो पहले थीं। संविधान का सम्पत्ति-सम्बन्धी उपबन्ध कितना दोषपूर्ण है इसे पहले ही उचित स्थान पर बताया जा चुका है। जब इस दोष के चलते जमीन्दारी खतम करने में रुकावट पड़ने लगी, तभी यह संशोधन किया गया। ऐसी स्थिति में यह आशा करना स्वाभाविक था जब उस उपबन्ध में संशोधन होगा तो सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण या बँटवारे के लिए भी रास्ता साफ कर दिया जायगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ और उसके अधिकांश दोष ज्यों के त्यों बने ही रह गये हैं। जब तक ये दोष बने रहेंगे, तब तक यह संविधान सामाजिक और आर्थिक प्रगति का बाधक ही बना रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यही नहीं, संविधान द्वारा प्रत्येक नागरिक को दिये गये सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन के अधिकार को भी ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया है। यह भी एक दोषपूर्ण उपबन्ध ही है और इससे भी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण में बाधा पड़ने

की सम्भावना है। साथ ही साथ जमीन्दारी खतम करने में मदद देने के लिए जो संशोधन किया गया है वह भी दोष से सर्वथा रहित नहीं है। उसके अनुसार किसी राज्य द्वारा बनाई गई विधि न्यायालयों के हस्तक्षेप से तभी बच सकेगी जब उस पर राष्ट्रपति की अनुमति मिल चुकी हो। इससे संघ-सरकार, द्वारा राज्य द्वारा बनाई गई विधि में अनुचित हस्तक्षेप की आशंका रहेगी और जमीन्दारों को अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए संघ-सरकार में अपील और पैरवी करने का मौका मिलेगा।

अब इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है कि इन संशोधनों का अभी तुरत किया जाना एकदम जरूरी था या नहीं। यह प्रश्न स्वाभाविक है, क्योंकि यह कोई नहीं इनकार कर सकता कि इनके करने में बहुत जल्दीबाजी की गई है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्तमान संसद बहुत सीमित मताधिकार के आधार पर अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा गठित की गई है। यही नहीं, इस काम में इतनी जल्दीबाजी की गई कि सर्वसाधारण की राय जानने के लिए भी समय नहीं निकाला जा सका और पन्द्रह-बीस दिनों में संसद ने सभी संशोधनों को पास कर दिया और इसके तुरत बाद राष्ट्रपति ने भी उन पर अपनी अनुमति दे दी। संविधान एक स्थायी वस्तु है और साधारणतः उसमें संशोधन करने के लिए कहीं अच्छा होता यदि वह ऐसी संसद द्वारा किया जाता जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप में बालिग मताधिकार के आधार पर गठित की गई होती तथा संशोधन करनेवाली विधि को तुरत नहीं पास कर सर्व-साधारण की राय भी मालूम कर ली जाती। हाँ, अगर संशोधन ऐसे हों जिनके किये बिना किसी तरह काम ही नहीं चल सकता, तब बात दूसरी है। ऐसी अवस्था में इन आपत्तियों पर विचार करना बुद्धिमानी का काम नहीं है। तब क्या भारतीय संविधान में जो संशोधन किये गये हैं, वे इतने जरूरी थे कि अगर जल्दीबाजी नहीं की जाती तो हानि की सम्भावना पैदा हो जाती? ऊपर इन संशोधनों के स्वरूप पर विचार किया जा चुका है। वहाँ हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सिद्धान्त की दृष्टि से ये सभी संशोधन वांछनीय कहे जा सकते हैं। लेकिन किसी संशोधन के वांछनीय होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उसका तुरत किया जाना भी आवश्यक है। जमीन्दारी उठाने

वाली विधियों को जायज बनाने वाले संशोधन को तो इतना आवश्यक कहा जा सकता है। लेकिन अन्य संशोधनों के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं है। संशोधनों के समर्थकों की ओर से जो कुछ कहा गया उससे भी यह सिद्ध नहीं किया जा सका। विशेषकर यह तो तनिक भी समझ में नहीं आता कि भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रुकावट डाले बिना अभी तुरत क्या बिगड़ा जा रहा था और वह भी इस चुनाव के साल में। इसलिए अगर कुछ लोगों को यह शंका होती है कि ये संशोधन संविधान की किसी कमी को दूर करने के लिए नहीं बल्कि निकट भविष्य में सरकार को और भी शक्तिशाली बनाने और उसके विरोधियों की आवाज को बन्द करने में सहूलियत पाने के लिए किये गये हैं, तो यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। आखिर इतने दिनों तक तो बिना इन संशोधनों के ही देश का शासन चलाया गया है और इस बीच में कोई ऐसी गड़बड़ी नहीं पैदा हुई है। साधारण निर्वाचन में अब साल भर से भी कम देर थी। तो क्या इतने दिन और इन संशोधनों के बिना काम नहीं चल सकता था? यह ठीक है कि भविष्य के बारे में कोई एकदम निश्चिन्त नहीं हो सकता। लेकिन अगर इस बीच में कोई असाधारण परिस्थिति पैदा ही हो जाती तो उससे निबटने के लिए आपात-उपबन्धों का सहारा तो कहीं नहीं गया था। संविधान में अनेक दोष हैं। डेढ़-दो साल के अनुभव के बाद ये दोष और भी स्पष्ट रूप से ज्ञात हो सकते थे। यह कितना अच्छा होता अगर साधारण निर्वाचन में भाग लेनेवाली राजनीतिक पार्टियाँ संविधान में सुधार के सम्बन्ध में अपनी-अपनी नीति निश्चित कर लेतीं और उसे अपने-अपने घोषणा-पत्र में स्थान देतीं। निर्वाचन के बाद जिस पार्टी को बहुमत प्राप्त होता वह अपनी नीति के अनुसार संशोधन का प्रस्ताव पेश करती तथा संसद उसे पास करने में जल्दीबाजी करने के बजाय उसपर पूरी तरह विचार कर, सर्वसाधारण की राय लेने के बाद उसमें उचित परिवर्तनों के साथ उसे पास करती। लोकतंत्र के सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल भी यही होता।

यह तो हुआ इन संशोधनों के अभी किये जाने के औचित्य के सम्बन्ध में। लेकिन कुछ लोगों की तरफ से—जिनमें वकील ही अधिक हैं—यह भी

कहा गया है कि कानूनी दृष्टि से वर्तमान संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति नहीं है और अभी संशोधन करके नाजायज काम किया गया है। यह दलील एक दम आधारहीन जान पड़ती है। जैसा कि ऐसे आलोचकों की ओर से कहा गया है, यह ठीक है कि संविधान में संशोधन-सम्बन्धी जो उपबन्ध हैं उनमें दो सदनों वाली संसद का उल्लेख है। लेकिन इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान संसद में एक ही सदन होने के कारण इसे संशोधन करने की शक्ति नहीं है। अस्थायी तथा अंतर्कालीन उपबन्धों में यह स्पष्ट कर दिया गया है जब तक संविधान के अनुसार साधारण निर्वाचन के बाद नई संसद का गठन नहीं हो जाता तब तक वर्तमान संसद को ऐसी संसद की सभी शक्तियाँ रहेंगी। अगर आलोचकों की यह दलील मान ली जाय तब तो वर्तमान संसद को कोई विधि बनाने की भी शक्ति नहीं रहेगी, क्योंकि विधि बनाने के सम्बन्ध में संविधान में जो उपबन्ध हैं, वहाँ भी तो दो सदन वाली संसद का ही उल्लेख है। इस तरह इस आधार पर यह नहीं साबित किया जा सकता है कि वर्तमान संसद को संविधान में संशोधन करने की कोई शक्ति नहीं है। वैसे तो इस पर अन्तिम निर्णय उच्चतम न्यायालय ही दे सकता है।

अध्याय ३१

स्थानीय स्वशासन

स्थानीय स्वशासन का महत्त्व

पिछले अध्यायों में भारतीय संविधान के विविध अंगों पर विचार किया गया है। संविधान में संघ और राज्य की सरकारों के सम्बन्ध में ही व्यवस्था की गई है। लेकिन सिर्फ इन्हीं से भारतीय शासन का नक्शा पूरा नहीं होता है। आजकल करीब-करीब प्रत्येक देश में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था है और कई दृष्टियों से इसका बहुत बड़ा महत्त्व भी है। आधुनिक शासन का उद्देश्य जन-कल्याण ही है। अगर गौर करके देखा जाय कि इस जन-कल्याण के भीतर कौन सी वस्तुएँ आती हैं, तो हमारा ध्यान सबसे पहले अच्छे मकानों, चौड़ी और साफ सड़कों, नालियों के अच्छे प्रबन्ध, गाँव या शहर की सफाई, साफ पीने के पानी के इन्तजाम, जैसी चीजों की ओर जायगा। यह उचित ही है, क्योंकि इन बातों से जीवन को सुखमय और सुन्दर बनाने में बहुत सहायता मिलती है। ऐसी अवस्था में किसी शासन की सफलता पर विचार करते हुए यह भी अवश्य देखा जायगा कि इन बातों का कैसा प्रबन्ध किया गया है। लेकिन ये बातें ऐसी हैं जिनका संघ या राज्य की राजधानी से बैठकर ठीक प्रबन्ध नहीं किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि महत्त्वपूर्ण होते हुए भी ये बातें स्थानीय महत्त्व की हैं। इन बातों के सम्बन्ध में एक जगह की आवश्यकताएँ दूसरी जगह से भिन्न हो सकती हैं और यथार्थ में होती भी हैं। इसलिए स्थानीय अधिकारियों द्वारा ही उनका सुन्दर प्रबन्ध हो सकता है। इन स्थानीय अधिकारियों को स्थानीय जनता के प्रति उत्तरदायी रहना चाहिए, संघ या राज्य की सरकार के प्रति नहीं। इसी को स्थानीय स्वशासन कहते हैं। शहरों और दिहातों की जनता अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करती है और वही लोग स्थानीय शासन के लिए जिम्मेवार होते हैं। इससे एक लाभ यह होता है कि प्रत्येक क्षेत्र का शासन वहाँ की विशेषताओं के अनुसार किया जाता है। राजनीतिक दृष्टि से भी यह लाभदायक है। जनतंत्र की सुरक्षा के लिए

शासन का विकेन्द्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है। नहीं तो, एक ही जगह सभी शक्तियों के केन्द्रीकरण से अधिनायकशाही के पैदा होने का डर होता है। साथ ही साथ इससे जनता को राजनीतिक कामों की ट्रेनिंग भी मिलती है। संघ और राज्य के शासन से साधारण जनता का सम्पर्क अपेक्षाकृत कम होता है, और समय-समय पर वोट के अवसर पर ही उसे अपनी राजनीतिक जिम्मेवारी की चेतना होती है। लेकिन स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के साथ यह बात नहीं है। इनके पदाधिकारी सर्वसाधारण की आँखों के सामने काम करते हैं और उनके कामों का प्रभाव भी लोगों के रोजमर्रे के जीवन पर सबसे अधिक दिखाई पड़ता है। इसलिए स्थानीय स्वशासन में लोग दिलचस्पी लें, इसकी सम्भावना अधिक है। एक बार अगर लोगों ने सार्वजनिक कामों में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी, तो फिर वे संघ और राज्य के शासन में भी अपना पार्ट अदा करने के लिए उत्सुक होने लगेंगे। जनतंत्र की सफलता के लिए जनता की यह उत्सुकता कितनी आवश्यक है, यह सभी जानते हैं। इस तरह यह स्पष्ट है कि स्थानीय स्वशासन के महत्त्व पर जो कुछ कहा जाय वह थोड़ा है। लेकिन इस सम्बन्ध में एक बात याद रखने लायक है। स्थानीय संस्थाओं का इतना महत्त्व होते हुए भी उनकी शक्तियाँ संघ या राज्य की सरकार की शक्तियों की तरह संविधान से नहीं प्राप्त होती हैं। इसलिए जहाँ एकात्मक संविधान है वहाँ केन्द्रीय विधान-मंडल द्वारा और जहाँ संघीय संविधान है वहाँ राज्य के विधान-मंडल द्वारा उनमें सभी तरह के परिवर्तन किये जा सकते हैं।

भारत में स्थानीय स्वशासन का विकास

भारत में स्थानीय स्वशासन की परम्परा बहुत पुरानी है। प्राचीन काल के इतिहास में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का जिक्र बार-बार आता है। मौर्यकाल के शासन में उनका क्या स्थान था, यह तो शायद सभी पढ़े-लिखे लोग जानते हैं। मध्यकालीन भारत में भी वे खतम नहीं हुई थीं। आधुनिक काल में जब अंग्रेजों का राज शुरू हुआ, तब इनका एकदम अन्त हो गया। अंग्रेज लोग शुरू में केन्द्रीय और प्रांतीय राजधानियों से ही शासन के सभी काम करते थे। लेकिन आगे चलकर उनको इस तरह शासन करने में कठिनाई मालूम हुई और उन्हें स्थानीय स्वशासन की स्थापना करनी पड़ी। इसी समय

से उन संस्थाओं का विकास शुरू हुआ जिन्हें हम आज इस क्षेत्र में पाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही यह विकास शुरू हुआ। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में शुरू-शुरू इन संस्थाओं की स्थापना हुई। इसके बाद इनका क्षेत्र कुछ और बढ़ा। लेकिन इनका असल विकास लौर्ड रिपन के समय से शुरू हुआ। सन् १८८२ में उसकी सरकार ने वह प्रसिद्ध प्रस्ताव प्रकाशित किया जिसके फलस्वरूप समूचे देश में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ स्थापित होने लगीं। उस प्रस्ताव में इस पर जोर दिया गया कि अधिक-से-अधिक जगहों में ये संस्थाएँ स्थापित की जायँ, उनके गठन में निर्वाचन की प्रणाली शुरू की जाय, उनके प्रधान गैरसरकारी व्यक्ति रहें, उनकी शक्तियाँ बढ़ा दी जायँ और उनके कामों में सरकार की ओर से कम हस्तक्षेप किया जाय। इसके बाद स्थानीय स्वशासन का विकास जोरों से आगे बढ़ा। १९१७ में भारतमंत्री मांटेग्यू की ओर से वह प्रसिद्ध घोषणा की गई, जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार की नीति का उद्देश्य भारत में स्वशासन का विकास करना बतलाया। १९१८ में भारत-सरकार ने फिर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया जिसमें स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं से सभी तरह के अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेपों को हटाने और उनकी शक्तियों को बढ़ाने पर जोर दिया गया। १९१९ के मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार के अनुसार स्थानीय स्वशासन को हस्तान्तरित विषयों में रखा गया, और उनके शासन की देखरेख उत्तरदायी मंत्रियों द्वारा होने लगी। इन मंत्रियों ने स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने के लिए काफी कोशिश की। इसी समय से राष्ट्रीय आन्दोलन भी बहुत जोर पकड़ने लगा। राष्ट्रीय चेतना के विकास से स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में एक नई जान आ गई। बहुत-से राष्ट्रीय नेता उनके पदाधिकारी चुने गये और इनलोगों ने उनके शासन में सुधार लाने की कोशिश की। इससे सर्वसाधारण की उनमें और भी दिलचस्पी बढ़ी। १९३५ के ऐक्ट के मुताबिक 'प्रान्तीय स्वराज' स्थापित किया गया। अब हस्तान्तरित और रक्षित विषयों का भेद खतम हो गया और सभी विषय मंत्रियों के अधीन आ गये। १९३७ ई० में भारत के सभी प्रान्तों में लोकप्रिय मंत्रिमंडल कायम हुए। उनके शासनकाल में इस क्षेत्र में कई सुधार किये गये। इसके अलावे देश में एक नया वातावरण छा गया और राष्ट्रीय स्वतंत्रता नजदीक मालूम पड़ने लगी। इससे स्थानीय

स्वशासन की संस्थाओं की जड़ और भी मजबूत हुई। १९४७ में देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद इस क्षेत्र में और भी प्रगति हुई है और भिन्न-भिन्न राज्यों में नये-नये सुधार लागू किये गये हैं।

आजकल भारत में स्थानीय शासन की जो संस्थाएँ हैं, उनमें मुख्य हैं— कौरपोरेशन, म्युनिसिपैलिटी, जिला-बोर्ड और ग्राम-पंचायत। इनके अलावे बड़े-बड़े बन्दरगाहों के लिए पोर्ट-ट्रस्ट तथा किसी-किसी शहर के लिए नोटीफायड एरिया, ऐडमिनिस्ट्रेशन कमिटी, तथा टाउन कमिटी भी हैं। कुछ बड़े-बड़े शहरों की अवस्था में सुधार लाने के लिए टाउन इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट भी कायम किये गये हैं। इसी तरह दिहातों के लिए किसी-किसी राज्य में लोकल-बोर्ड और युनियन-बोर्ड भी हैं। जहाँ कैण्टोनमेंट या सैनिक छावनी है, वहाँ कैण्टोनमेंट बोर्ड कायम है। इन सभी संस्थाओं की दृष्टि से सभी राज्यों की एक ही अवस्था नहीं है। इनके सम्बन्ध में जो नियम हैं, वे भी सभी जगह एक समान नहीं हैं। फिर भी अधिकांश बातें बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं। यहाँ पर इन संस्थाओं का अलग-अलग संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया जायगा। ऐसा करते समय बिहार की अवस्था पर विशेष ध्यान दिया जायगा।

कौरपोरेशन

बहुत बड़े-बड़े नगरों में कौरपोरेशन रहते हैं। आजकल कलकत्ता, बम्बई और मद्रास—भारत के इन तीन नगरों—में ये संस्थाएँ हैं। कम्पनी के शासन के प्रारम्भिक काल से ही ये चली आ रही हैं। इनमें सबसे पुराना मद्रास-कौरपोरेशन है, जिसकी नींव १६८७ ई० में ही पड़ी थी। कलकत्ता-कौरपोरेशन के सदस्यों की संख्या ९८, बम्बई के सदस्यों की ११७ और मद्रास की ६५ है। इनमें से अधिकांश सदस्य उन नगरों के निवासियों द्वारा निर्वाचित होते हैं और कुछ राज्य की सरकार द्वारा नामजद किये जाते हैं। ये सदस्य कौंसिलर कहे जाते हैं। कौंसिलरों द्वारा मेयर (Mayar) का निर्वाचन किया जाता है। मेयर कौरपोरेशन का प्रधान होता है। उसकी सहायता के लिए एक डेपुटी मेयर भी रहता है। मेयर का चुनाव एक ही साल के लिए होता है। लेकिन उसके फिर से चुने जाने पर कोई रुकावट नहीं है। अलग-अलग विभागों के कामों को देखने के लिए कौरपोरेशन के सदस्यों की भिन्न-भिन्न

कमिटियाँ रहती हैं। मेयर, डेपुटी मेयर तथा कौंसिलरों को कोई वेतन नहीं दिया जाता है। लेकिन कौरपोरेशन के कामों की देखभाल करने के लिए इसके कई वैतनिक पदाधिकारी और कर्मचारी रहते हैं, जैसे हेल्थ-अफसर, इञ्जीनियर इत्यादि। इन सबका एक प्रधान होता है जिसे एक्जीक्युटिव अफसर कहते हैं। कलकत्ते का एक्जीक्युटिव अफसर स्वयं कौरपोरेशन द्वारा नियुक्त किया जाता है, लेकिन मद्रास और बम्बई में उसकी नियुक्ति राज्य की सरकार करती है। इन स्थानों में उसे म्युनिसिपल कमिश्नर कहा जाता है। कौरपोरेशन के कार्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। नगर की सफाई कराना, नगर में प्राथमिक शिक्षा, रोशनी, पानी, बिजली इत्यादि का प्रबन्ध करना, लोगों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए साधन जुटाना तथा इस तरह के और भी बहुत-से काम कौरपोरेशन द्वारा किये जाते हैं। इसके अधिकारों का क्षेत्र भी बहुत बड़ा है और शहरों में इसकी तरह शक्तिशाली स्वायत्तशासित संस्था दूसरी कोई नहीं है। इसके खर्च के लिए इसे नगर के निवासियों पर तरह-तरह के टैक्स लगाने की शक्ति दी गई है। कभी-कभी राज्य की ओर से भी आर्थिक सहायता दी जाती है। पटने में भी कॉरपोरेशन कायम करने की योजना बिहार-सरकार द्वारा बनाई गई है, लेकिन अभी इसे कार्य में परिणत नहीं किया गया है। पटना-कॉरपोरेशन बिल अवश्य बन चुका है और विधान-मंडल में पेश भी हो चुका है, लेकिन अभी वह पास भी नहीं हुआ है, लागू किये जाने की बात तो दूर रहे।

म्युनिसिपैलिटी (नगरपालिका)

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के अतिरिक्त भारत के अन्य शहरों में स्थानीय स्वशासन की जो संस्थाएँ हैं, उन्हें म्युनिसिपैलिटी कहते हैं। भारत में सब मिलाकर म्युनिसिपैलिटियों की संख्या आठ और नौ सौ के बीच में है। बिहार में भी म्युनिसिपैलिटियाँ कायम हैं। ये वहीं पर हैं जहाँ की आबादी पाँच हजार से अधिक है। इनका गठन बिहार एण्ड उड़ीसा म्युनिसिपल ऐक्ट, १९२२ तथा उसमें समय-समय पर किये गये संशोधनों के अनुसार होता है। म्युनिसिपैलिटी के शासन के लिए म्युनिसिपल कमिश्नर होते हैं। ये शहर की जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। इनके निर्वाचन में शहर के वे सभी

निवासी भाग ले सकते हैं जो २१ वर्ष से ऊपर के हों और जो विकृतमस्तिष्क, दिवालियापन इत्यादि निश्चित की गई अयोग्यताओं से मुक्त हों। पहले कुछ म्युनिसिपल कमिश्नर राज्य की सरकार द्वारा नामजद किये जाते थे, लेकिन अब यह प्रथा खतम कर दी गई है। म्युनिसिपल कमिश्नरों द्वारा उनमें से ही एक व्यक्ति म्युनिसिपैलिटी का चेयरमैन और एक व्यक्ति वाइस-चेयरमैन चुने जाते हैं। ये क्रमशः म्युनिसिपैलिटी के प्रधान तथा उप-प्रधान होते हैं। उत्तर-प्रदेश में इधर हाल में एक नया परिवर्तन किया गया है जिसके मुताबिक चेयरमैन म्युनिसिपल कमिश्नरों द्वारा नहीं, बल्कि सभी वोटरों द्वारा निर्वाचित किया जाता है। लेकिन बिहार में अभी पुराना नियम ही चल रहा है। म्युनिसिपल कमिश्नरों, चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन, सबका कार्यकाल पाँच साल है; लेकिन इसके पहले भी कोई इस्तीफा देकर अपने पद से हट सकता है। इसके अलावे म्युनिसिपल कमिश्नरों के दो तिहाई बहुमत से पास किये गये प्रस्ताव द्वारा भी चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन अपने पद से हटाये जा सकते हैं। किसी-किसी म्युनिसिपैलिटी में चेयरमैन और वाइस चेयरमैन के अतिरिक्त एक प्रेसिडेण्ट भी होता है। उसके निर्वाचन और अवधि के सम्बन्ध में भी वही नियम लागू होते हैं, जो चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन के सम्बन्ध में। कुछ अवस्थाओं में म्युनिसिपल कमिश्नर भी अपनी जगह से हटाये जा सकते हैं।

साधारणतः म्युनिसिपल कमिश्नरों की हर महीने में कम-से-कम एक बार अवश्य सभा होगी। इसके अलावे चेयरमैन या उसकी अनुपस्थिति में वाइस चेयरमैन जितनी बार आवश्यक समझे, सभा बुला सकता है। अगर किसी मासिक बैठक में विचारणीय कोई विषय नहीं हो, तो इसके लिए निश्चित तारीख के तीन दिन पहले कमिश्नरों को चेयरमैन की तरफ से इसकी सूचना दे दी जायगी और सभा नहीं होगी। कभी आवश्यकता महसूस करने पर अगर तीन म्युनिसिपल कमिश्नर सभा बुलाने की माँग पेश करें, तो चेयरमैन एक विशेष सभा का आयोजन करेगा। अगर इस तरह की माँग रखी जाने के पन्द्रह दिनों के भीतर चेयरमैन या वाइस-चेयरमैन सभा नहीं बुलाये, तो इसकी माँग करनेवाले कमिश्नर स्वयं ऐसी सभा बुला सकते हैं। म्युनिसिपल कमिश्नरों की सभा का सभापतित्व प्रेसिडेंट और उसकी अनुपस्थिति में चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन

को छोड़कर कोई अन्य म्युनिसिपल कमिश्नर करेगा। जिस म्युनिसिपैलिटी में प्रेसिडेंट नहीं हो, उसकी सभा का सभापतित्व चेयरमैन या वाइस चेयरमैन और इन दोनों के अनुपस्थित रहने पर कोई अन्य कमिश्नर करेगा। सभा के सामने पेश किये गये सभी प्रश्नों का निर्णय बहुमत द्वारा किया जायगा। अर्थ, स्वास्थ्य, शिक्षा, अस्पताल इत्यादि विषयों के लिए कमिश्नरों द्वारा कई छोटी-छोटी कमिटियाँ संगठित की जा सकती हैं। इस तरह की प्रत्येक कमिटी में कम-से-कम तीन और अधिक-से-अधिक छः सदस्य रहेंगे। इनके सदस्य ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं जो म्युनिसिपल कमिश्नर नहीं हैं, लेकिन इनकी संख्या किसी ऐसी कमिटी के सदस्यों की कुल संख्या की एक-तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिए। कभी-कभी किसी दूसरे स्थानीय अधिकारी के साथ समान प्रयोजनों के लिए संयुक्त कमिटी भी बनाई जा सकती है। सभी म्युनिसिपल कमिश्नर अवैतनिक रहेंगे। लेकिन म्युनिसिपैलिटी के सभी कामों के लिए कई तरह के स्थायी पदाधिकारी तथा कर्मचारी रहेंगे, जिन्हें वेतन दिया जायेगा; जैसे स्वास्थ्य—अफसर, इंजीनियर, किरानी, मेहतर इत्यादि-इत्यादि। म्युनिसिपल ऐक्ट तथा राज्य की सरकार के अनुमोदन के अधीन रहते हुए म्युनिसिपल कमिश्नरों को चेयरमैन, वाइस-चेयरमैन और प्रेसिडेंट के निर्वाचन तथा कमिश्नरों और कमिटियों के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार होगा।

म्युनिसिपैलिटी के कार्य-क्षेत्र के भीतर शहर के सार्वजनिक जीवन के करीब-करीब सभी अंग आ जाते हैं। यह शहर की सभी सड़कों की देखभाल करेगी तथा आवश्यकता पड़ने पर नई सड़क निकालेगी। इसकी सीमा के भीतर बिना इसकी अनुमति के कोई नया मकान नहीं बनाया जा सकता। अपनी अनुमति देते समय म्युनिसिपैलिटी की तरफ से यह भी आदेश दिया जा सकता है कि अमुक मकान किस तरह बनाया जाय। शहर की सफाई का इसे विशेष ध्यान रखना पड़ता है और सड़क, रास्ता, पैखाना, पेशाबखाना, नाली इत्यादि सबको साफ कराने का प्रबन्ध करना होता है। इस सम्बन्ध में इसकी ओर से समय-समय पर आदेश निकाले जा सकते हैं जिन्हें सभी को मानना आवश्यक है। शहर के सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए इसे विशेष तरह से सचेष्ट रहना

होता है। लोगों के पीने का पानी साफ रहे, यह देखना इसी का काम है। और किसी तरह से शहर में कोई गन्दगी तथा कोई बीमारी नहीं फैले, इसका प्रबन्ध म्युनिसिपैलिटी करती है। लोगों को टीका भी लगवाया जाता है। आगलगी रोकना, शहर के बाजार की जाँच करना जिसमें कोई सड़ी-गली चीजें नहीं बेची जायँ, दवा की दूकानों की रजिष्ट्री करना, पानी का कल तथा बिजली की रोशनी का इन्तजाम करना, प्राथमिक शिक्षा के लिए स्कूल खोलना, शहर में इस्तेमाल में लाई जानेवाली सवारियों के सम्बन्ध में नियम बनाना तथा उन्हें लाइसेंस देना, ये सभी काम म्युनिसिपैलिटी के जिम्मे रहते हैं और इनको पूरा करने के लिए उसे कई तरह की शक्तियाँ दी गई हैं। ऊपर दिये गये प्रयोजनों के लिए म्युनिसिपैलिटी की तरफ से आज्ञा निकाली जा सकती है। जो लोग इस आज्ञा को नहीं मानें उनपर जुर्माना किया जा सकता है तथा मुकदमा चलाया जा सकता है। म्युनिसिपैलिटी से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों के लिए राज्य की सरकार की ओर से नियम बनाये जाते हैं। उनके अधीन रहते हुए म्युनिसिपल कमिश्नर भी नियम तथा उप-नियम बना सकते हैं।

इन कामों को करने के लिए रुपये की जरूरत पड़ती है। रुपया हासिल करने के लिए म्युनिसिपैलिटी को शहर के लोगों पर तरह-तरह के कर लगाने की शक्ति दी गई है। ये कर इनमें से कोई या सभी हो सकते हैं—मकान या जायदादवाले व्यक्तियों पर कर, मकान या जायदाद पर कर, रोशनी कर, पानी कर, पाखाना कर, सवारी या घोड़े इत्यादि पर कर, कुत्तों पर कर, कुत्तों की रजिष्ट्री के लिए कर, गाड़ियों की रजिष्ट्री पर कर, किराये पर चलनेवाली सवारियों तथा उनमें जोते जानेवाले पशुओं की रजिष्ट्री की फीस, म्युनिसिपैलिटी द्वारा बनाये गये घाटों पर रखी जानेवाली नावों इत्यादि पर कर तथा अन्य कर जो राज्य की सरकार द्वारा मंजूर किये जायँ। किसी काम के लिए लाइसेंस देने और उसे नया करने के लिए भी फीस ली जा सकती है।

शहर के भीतर की सड़कें, घाट, तालाब, म्युनिसिपैलिटी द्वारा बनाये गये मकान, नाली, रोशनी इत्यादि चीजें म्युनिसिपैलिटी की सम्पत्ति समझी जायँगी। इनमें वे चीजें नहीं शामिल हैं जो किसी व्यक्ति अथवा सरकार या किसी अन्य स्थानीय अधिकारी के अधिकार में हैं। प्रत्येक म्युनिसिपैलिटी के लिए एक कोष

रहेगा जिसे म्युनिसिपल कोष कहा जायगा। कर, जुर्माने तथा किसी दूसरे जरिये से जो भी रुपया आवे, सभी को इस कोष में रखा जायगा। म्युनिसिपल कोष का रुपया सरकारी खजाने में या किसी ऐसे बैंक में जो सरकारी खजाने के काम में लाया जाता हो,—रखा जायगा।

इस कोष में से सबसे पहले म्युनिसिपैलिटी के जिम्मे रहनेवाले किसी ट्रस्ट के खर्च के लिए, म्युनिसिपैलिटी द्वारा लिये गये कर्ज पर सूद देने के लिए तथा म्युनिसिपैलिटी में काम करनेवाले लोगों के वेतन और भत्ते के लिए रुपया निकाला जायगा। इसके बाद अगर रुपया हो तो म्युनिसिपल कमिश्नरों की सभा में किये गये निर्णय के अनुसार उसे समय-समय पर म्युनिसिपैलिटी की सड़कों, पुलों, तालाबों, घाटों, कुओं, नालाओं, नालियों, पाखानों, पेशाबखानों को कायम रखने और मरम्मत करने तथा म्युनिसिपैलिटी को साफ करने में लगाया जायगा। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से प्रयोजन हैं जिनमें से सभी या किसी के लिए म्युनिसिपल कोष का रुपया खर्च किया जा सकता है, बशर्ते कि ऊपर के खर्चों के बाद रुपया बचा रहे। ये प्रयोजन निम्नलिखित हैं—

सड़कों, ट्राम-पथों, पुलों, चौराहों, बागीचों, तालाबों, घाटों, कुओं, नालाओं, नालियों, पाखानों, पेशाबखानों को बनाना, कायम रखना और सुधारना; पानी देने का इन्तजाम करना, तथा सड़कों पर रोशनी देना और उन पर पानी छिड़कना; शारीरिक व्यायाम और शिक्षा की उन्नति के लिए खुले मैदानों को हासिल करना और कायम रखना, पेड़ लगाना और उनकी रक्षा करना, म्युनिसिपैलिटी के प्रयोजनों के लिए आफिस और दूसरे मकानों को बनाना और कायम रखना, रहने लायक आदर्श मकानों को बनाना और कायम रखना; स्कूलों और उनके साथ काम में आनेवाले होस्टलों को बनाना, स्थापित करना और कायम रखना—चाहे पूरा खर्च देकर, चाहे कुछ रुपयों से मदद देकर, छात्रवृत्ति स्थापित करना, अस्पताल, डिस्पेन्सरी, कोढ़ियों के रहने की जगह, सराय, दरिद्र-गृह, और धर्मशालाओं को बनाना, स्थापित करना और कायम रखना; टीका लगानेवालों को बहाल करना और टीका लगवाना; हेल्थ-अफसरों, सैनिटरी इंसपेक्टरों, जनानी डाक्टरों और दाइयों को नियुक्त करना; महामारियों के फैलने से बचाना; पशुओं के लिए अस्पताल

खोलना तथा पशु-चिकित्सा का प्रबन्ध करना; घोड़ों और मवेशियों की नस्ल सुधारना; हानिकारक पशुओं का नाश करने के लिए पारितोषिक देना; म्युनिसिपल बाजार स्थापित करना; दुग्ध-शाला स्थापित करना और दूध देने के प्रबन्ध में सुधार करना; निःशुल्क पुस्तकालयों की स्थापना; अगलगी बुझाने का सामान (Fire brigade) रखना; मेले और औद्योगिक प्रदर्शनी का प्रबन्ध करना; कमी या आपत्ति के समय लोगों को सहायता पहुँचाना; किसी को म्युनिसिपैलिटी की किसी शक्ति के प्रयोग के फलस्वरूप होनेवाली घटी के लिए मुआवजा देना; म्युनिसिपैलिटी के पदाधिकारी या सेवक को अच्छे काम के लिए बोनस या कर्तव्य करने में होनेवाली क्षति के लिए मुआवजा देना; म्युनिसिपैलिटी के पदाधिकारी या सेवक को सवारी खरीदने या अपने लिए मकान बनाने के लिए अग्रिम रुपया देना; ट्राम इत्यादि की व्यवस्था करना; और वे सभी काम जो म्युनिसिपल ऐक्ट के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए आवश्यक हों या जिनसे शहर के निवासियों की सुरक्षा, स्वास्थ्य, भलाई या सुविधा की उन्नति होने की संभावना हो अथवा जिनपर म्युनिसिपैलिटी द्वारा, राज्य की सरकार की मंजूरी से, म्युनिसिपल कोष से खर्च करना उचित घोषित किया जाय।

म्युनिसिपैलिटियों के सम्बन्ध में राज्य की सरकार कई तरह की शक्तियों का प्रयोग करती है। इनमें से नियम बनाने की शक्ति तथा कुछ अन्य शक्तियों को छोड़कर बाकी सभी शक्तियाँ राज्य की सरकार द्वारा डिवीजन के शासन की देखभाल करनेवाले कमिश्नरों के हाथ में सौंपी जा सकती हैं। राज्य की सरकार जिस किसी व्यक्ति को इस सम्बन्ध में अधिकार प्रदान करे वह म्युनिसिपैलिटी की किसी अचल सम्पत्ति, काम या कागजात की जाँच कर सकता है या करवा सकता है। अगर कभी जिला मजिस्ट्रेट यह समझे कि उसके जिले के भीतर की किसी म्युनिसिपैलिटी के किसी प्रस्ताव, आज्ञा या काम से शान्ति भंग होने अथवा सर्वसाधारण या व्यक्तियों के किसी वर्ग या समूह को क्षति पहुँचने की आशंका है, तो वह उसे चालू होने या रहने से रोक दे सकता है। अगर कभी जिला-मजिस्ट्रेट इस तरह का रोक लगावेगा, तो वह साथ-ही-साथ राज्य की सरकार को भी कारणों सहित उसकी सूचना दे देगा और राज्य की सरकार अपने

निर्णय के अनुसार चाहे उस आज्ञा को बहाल रखेगी या रद्द कर देगी या कुछ परिवर्तन के साथ लागू रखेगी। अगर कभी राज्य की सरकार समझे कि किसी म्युनिसिपैलिटी ने कानून के अनुसार प्राप्त शक्ति के बाहर जाकर कोई प्रस्ताव पास किया है या आज्ञा जारी की है, तो वह उसे रद्द कर दे सकती है।

अगर कभी राज्य की सरकार समझे कि म्युनिसिपल कमिश्नर अपने कर्तव्यों में से किसी को करने में देर कर रहे हैं, तो वह आज्ञा निकालकर उसके पूरे किये जाने की अवधि निश्चित कर सकती है। अगर इस अवधि के भीतर वह काम पूरा नहीं हो, तो सरकार जिला-मजिस्ट्रेट को वह काम पूरा करने के लिए कह सकती है और यह भी आदेश दे सकती है कि उसमें जो खर्च लगे उसे एक निश्चित अवधि के भीतर म्युनिसिपल कोष से दे दिया जाय। अगर सरकार समझे कि किसी म्युनिसिपैलिटी के सदस्य (म्युनिसिपल कमिश्नर) अपने कर्तव्य पालने के योग्य नहीं हैं या उसमें बराबर देर करते हैं अथवा अपनी शक्ति के बाहर काम करते हैं या उसका दुरुपयोग करते हैं, तो सरकार गजट में इसके कारणों के साथ अपनी आज्ञा निकालकर यह घोषणा कर सकती है और उस आज्ञा में उल्लिखित अवधि के लिए उन्हें 'सुपरसीड' (Supercede या भंग) कर सकती है। सरकार को यह भी अधिकार है कि वह सुपरसीड नहीं कर उसी तरह की आज्ञा निकालकर यह निर्देश दे दे कि उस आज्ञा में उल्लिखित तिथि से उन म्युनिसिपल कमिश्नरों का स्थान रिक्त समझा जायगा और उस तारीख को या उसके पहले नया चुनाव होगा।

जब किसी म्युनिसिपैलिटी के 'सुपरसीड' किये जाने की आज्ञा निकाली जायगी, तब उस आज्ञा की तिथि से सभी म्युनिसिपल कमिश्नर अपना स्थान रिक्त कर देंगे, उनके द्वारा किये जानेवाले सभी कामों तथा प्रयोग में आने-वाली सभी शक्तियों का भार उस व्यक्ति तथा उन व्यक्तियों पर चला जायगा जिन्हें इसके लिए सरकार निर्देश दे तथा म्युनिसिपैलिटी की सभी सम्पत्ति सरकार में निहित होगी। सुपरसीड होने की अवधि के खतम होने पर (जब तक कि सरकार अन्यथा निर्देश नहीं दे) म्युनिसिपैलिटी का फिर से निर्वाचन होगा और उसके सभी कर्तव्य तथा शक्तियाँ उसे वापस मिल जायँगी। जिन

म्युनिसिपल कमिश्नरों को अपना स्थान रिक्त करना पड़ा था, उनके भी चुनाव में खड़े होने में कोई रुकावट नहीं होगी। अगर सरकार सुपरसीड नहीं कर नया चुनाव करने की आज्ञा दे, तो उस आज्ञा के अनुसार म्युनिसिपल कमिश्नरों का स्थान रिक्त समझा जायगा और नया चुनाव होगा। लेकिन चेयरमैन नये कमिश्नरों की सभा होने पर अपना स्थान रिक्त करेगा। जो लोग इस तरह अपना स्थान रिक्त करेंगे, वे भी (जब तक कि सरकार अन्यथा निर्देश नहीं दे) नये चुनाव में खड़े हो सकेंगे अगर वे और सभी योग्यताएँ रखते हों।

अगर कभी एक म्युनिसिपैलिटी और दूसरी म्युनिसिपैलिटी के बीच में या म्युनिसिपैलिटी और जिला-बोर्ड या कैंटोनमेंट के अधिकारियों के बीच कोई विवाद खड़ा हो जाय, तो इसे राज्य की सरकार के सामने रखा जायगा और सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।

जिला-बोर्ड

जिला-बोर्ड स्थानीय स्वशासन की तीसरी महत्त्वपूर्ण संस्था है। जिन शहरों में म्युनिसिपैलिटियाँ कायम हैं, उनको छोड़कर एक जिले के भीतर के सभी गाँवों और शहरों को मिलाकर उस जिले का जिला-बोर्ड संघटित किया जाता है। समूचे भारत में जिला-बोर्डों की संख्या दो सौ से कुछ ऊपर है। सभी राज्यों में जिला-बोर्ड का नाम नहीं प्रचलित है—कहीं-कहीं पर इसे दूसरे नाम से पुकारा जाता है। बिहार में सत्रह जिले हैं और प्रत्येक जिले में एक जिला-बोर्ड है। उनका संगठन बिहार एण्ड उड़ीसा लोकल-सेल्फ गवर्मेण्ट ऐक्ट, १८८५ तथा उसमें समय-समय पर किये गये संशोधनों के अनुसार होता है। जिला-बोर्ड के संगठन, कर्तव्य, शक्तियाँ, आय-व्यय, राज्य की सरकार से सम्बन्ध, इत्यादि विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली अधिकांश बातें म्युनिसिपैलिटियों की तरह ही हैं। हाँ, उनके क्षेत्राधिकार के भीतर के इलाकों के आकार की विभिन्नता के चलते कुछ भेद अवश्य हैं। एक म्युनिसिपैलिटी का सम्बन्ध सिर्फ उस शहर में रहनेवालों से है, लेकिन एक जिला-बोर्ड को समूचे जिले के लोगों के सुख और कल्याण के लिए कार्य करना पड़ता है।

जिस तरह म्युनिसिपैलिटी के सदस्य शहर के निवासियों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं, उसी तरह जिला-बोर्ड के सदस्य भी। फर्क यही है कि उनके

निर्वाचन में समूचे जिले के लोग भाग लेते हैं। जिला-बोर्ड के भी एक चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन रहते हैं और वे भी म्युनिसिपैलिटी की तरह बोर्ड के सदस्यों में से उन्हीं के द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। यहाँ भी भिन्न-भिन्न विषयों के लिए बोर्ड के मेम्बरों की कमिटियाँ रहती हैं। जिला-बोर्ड के सदस्यों का कार्य-काल भी पाँच साल ही है। यही बात कामों के सम्बन्ध में भी लागू है। जिला-बोर्ड को जिले भर की सड़कों, पुलों, जन-स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि की देखभाल करनी पड़ती है। इसके कर्तव्यों और शक्तियों की सूची करीब-करीब म्युनिसिपैलिटी की ही तरह है। प्राइमरी और मिडूल स्कूल इसकी देख-रेख में रहते हैं। इसको भी उन्हीं कामों में अपने कोष का रुपया खर्च करना पड़ता है, जिनमें म्युनिसिपैलिटी को, फर्क सिर्फ बड़े क्षेत्र का है। इसकी आय के साधन अधिक हैं। भूमि-कर पर लगने वाले 'सेस' (Cess) की आमदनी सरकार इन्हें सौंप देती है। इसके अतिरिक्त कुछ खास-खास कामों के लिए सरकार से भी आर्थिक सहायता मिल जाती है। जिले भर में यातायात के प्रबन्ध का भार रहने के कारण कहीं-कहीं पर छोटी लाइनों पर चलने-वाली रेलें इन्हीं के स्वामित्व में चलती हैं। इनके उदाहरण के लिए पटना-जिला-बोर्ड का नाम रखा जा सकता है, जिसने अभी कुछ ही दिन हुए विहार-बख्तियारपुर रेल को अपने अधीन कर लिया है। जहाँ इस तरह की रेलें जो प्राइवेट कम्पनियों के हाथ में हैं, वहाँ ये कम्पनियाँ भी जिला-बोर्ड के चेयरमैन से परामर्श लेती हैं, हालाँकि इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। जिला-बोर्ड भी राज्य की सरकार द्वारा 'सुपरसीड' किये जा सकते हैं। जिला-बोर्डों के सम्बन्ध में इससे अधिक विस्तार के साथ विचार करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, विस्तृत वर्णन के लिए ऊपर म्युनिसिपैलिटियों के सम्बन्ध में जो बातें लिखी गई हैं, उनसे सहायता ली जा सकती है।

अन्य संस्थाएँ

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में कौरपोरेशन, म्युनिसिपैलिटी और जिला-बोर्ड के अतिरिक्त कई अन्य संस्थाएँ भी हैं। कुछ शहरों में 'नोटिफाएड एरिया कमिटी' के जरिए म्युनिसिपैलिटी के सभी काम कराये जाते हैं। जमशेदपुर में इसी तरह की कमिटी है। कुछ शहरों या शहरों

के भागों में टाउन ऐडमिनिस्ट्रेशन कमिटी के जरिए ये काम होते हैं। पटने के न्यू कैपिटल इलाके में ऐसी ही कमिटी है। यद्यपि इन कमिटियों द्वारा म्युनिसिपैलिटी के करीब-करीब सभी काम किये जाते हैं, फिर भी इनका संगठन म्युनिसिपैलिटियों की तरह बिल्कुल लोकतंत्रात्मक नहीं है। इनमें अधिकतर सरकारी पदाधिकारी या सरकार द्वारा नामजद व्यक्ति ही रहते हैं। कुछ ऐसे शहर हैं, जहाँ फौजी छावनियाँ या कैण्टोनमेण्ट हैं। वहाँ पर शहर का प्रबन्ध कैण्टोनमेंट बोर्ड द्वारा किया जाता है। उसमें छावनी की फौज के सदस्य और शहर की साधारण जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि दोनों रहते हैं। इनका काम भी बहुत-कुछ म्युनिसिपैलिटियों की तरह ही होता है। बिहार में दानापुर में इस तरह का कैण्टोनमेंट बोर्ड है। जहाँ पर बन्दरगाह हैं, वहाँ बन्दरगाहों से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों की देखभाल करने के लिए पोर्ट ट्रस्ट नाम की संस्था रहती है। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में इस तरह की संस्था है। इसके अधिकांश सदस्य भारत-सरकार द्वारा नामजद किये जाते हैं, सर्वसाधारण द्वारा निर्वाचित नहीं होते। इसलिए इसे स्थानीय स्वशासन की संस्था मानना सर्वथा उचित नहीं जान पड़ता है।

इसी तरह की एक संस्था इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट है। कुछ बड़े-बड़े शहरों में आबादी बहुत घनी हो जाती है और बिना किसी योजना के उनके फैलते जाने के कारण तरह-तरह की समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं। मकान सटे-सटे रहते हैं, सड़कें और गलियाँ पतली होती हैं और लोगों के टहलने, घूमने तथा बच्चों के खेलने के लिए उचित स्थान नहीं रहते। इन सब समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझा लेना और शहर को नये तरह से बसाना म्युनिसिपैलिटी की सीमित शक्ति के बाहर की बात है। इसीलिए समय-समय पर कुछ दिनों के लिए सरकार द्वारा इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की स्थापना की जाती है। इसके अधिकांश सदस्य भी सरकार द्वारा नामजद होते हैं। कुछ स्थानीय संस्थाओं के भी प्रतिनिधि रहते हैं। चौड़ी सड़कें बनवाना, जगह-जगह पर पार्क बनवाना, अस्वास्थ्यकर मकानों को तुड़वाकर उनकी जगह पर नये और स्वास्थ्यकर मकान बनवाना, इस तरह के अनेक काम इसके जिम्मे रहते हैं। भारत के कई शहरों में इसकी स्थापना की गई है। बिहार में इस तरह की कोई

संस्था नहीं है। इस तरह की संस्था कायम करने के लिए बिहार-सरकार ने 'बिहार टाउन प्लेनिंग ऐंड इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बिल, १९४८' के नाम का बिल बनाया था और विधानमंडल ने इसे पास भी कर दिया है। लेकिन इसे अभी लागू नहीं किया गया है। यह भी ठीक पता नहीं है कि आगे चलकर इसे लागू किया जायगा अथवा नहीं और अगर लागू किया जायेगा, तो कब।

इसी तरह जिला-बोर्ड के अलावे दिहातों से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ और संस्थाएँ भी हैं। प्रत्येक सबडिवीजन में एक 'लोकल-बोर्ड' रहता है। भारत के सभी भागों में लोकल बोर्ड नहीं हैं। बिहार में यह संस्था है। इसके सदस्य वही लोग होते हैं जो उस सबडिवीजन से जिला-बोर्ड की सदस्यता के लिए निर्वाचित हुए रहते हैं। इस तरह एक ही व्यक्ति जिला-बोर्ड और लोकल बोर्ड दोनों का सदस्य होता है। छोटे दायरे में लोकल बोर्ड भी जिला-बोर्ड का ही काम करता है। बिहार में बड़ी-बड़ी सड़कें जिला-बोर्ड के अधीन हैं और छोटी-छोटी लोकलबोर्ड के। इसी तरह प्राइमरी स्कूल लोकलबोर्ड की देख-रेख में रहते हैं, तो मिड्ल स्कूल जिला-बोर्ड की देख-रेख में। एक गाँव या कुछ गाँवों के समूह के लिए कहीं-कहीं पर युनियन कमिटियाँ रहती हैं। छोटे पैमाने पर इनके काम म्युनिसिपैलिटियों की तरह ही होते हैं। बिहार में इस तरह की कमिटियाँ थीं; लेकिन अब इनका स्थान ग्राम-पंचायतें ले रही हैं। स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में आज शायद सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था ग्राम-पंचायत है। इसके महत्त्व को देखते हुए इसके लिए अलग एक पूरा अध्याय ही देना ठीक होगा। अगले अध्याय में यह किया गया है।

स्थानीय संस्थाओं की समस्याएँ और उनका समाधान

अब स्थानीय संस्थाओं की वर्तमान अवस्था का अवलोकन करना चाहिए। इस अवस्था से जिसको थोड़ा भी परिचय होगा, वह यही कहेगा कि आज इन संस्थाओं की अवस्था किसी दृष्टि से भी सन्तोषजनक नहीं है। अधिकांश संस्थाएँ अपना-अपना कर्तव्य नहीं पूरा कर रही हैं। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस अवस्था के कारण क्या हैं। कारणों को खोज निकालना कोई मुश्किल काम नहीं है। पहली बात यह है कि स्थानीय संस्थाओं के पदाधिकारी अपने कामों में उतनी दिलचस्पी नहीं लेते, जितनी पदों में। जहाँ देखिए, वहीं पदों

के लिए होड़ लगी हुई है। पदों पर पहुँचने के बाद कर्तव्य एकदम भुला दिये जाते हैं। कहीं-कहीं पर तो भ्रष्टाचार की भी चर्चा सुनाई पड़ती है। अभी हाल में बिहार-सरकार के स्थानीय स्वशासनविभाग के सचिव ने पूर्णियाँ जिला-बोर्ड पर जो अभियोग लगाये थे, उन्हें हम उदाहरण के लिए ले सकते हैं। दूसरी बात यह है कि अधिकांश संस्थाओं में आज रुपयों का अभाव है। जो आय के साधन हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं। सरकार से आर्थिक सहायता अवश्य मिलती रहती है, लेकिन वह भी पर्याप्त नहीं है। नतीजा यह होता है कि जहाँ स्थानीय संस्थाओं के पदाधिकारी अपना कर्तव्य निभाना भी चाहते हैं, वहाँ आर्थिक कठिनाइयों के कारण वे सफल नहीं हो पाते। तीसरा बड़ा कारण यह है कि साधारण जनता स्थानीय स्वशासन की समस्याओं में बहुत कम दिलचस्पी दिखलाती है तथा ऐसा आचरण करती है जो नागरिकता के सिद्धान्तों के बिलकुल प्रतिकूल है। स्थानीय संस्थाओं के सदस्य तथा पदाधिकारी अगर यह जानें कि उनका काम ठीक नहीं रहने पर उनका फिर से निर्वाचित होना असम्भव हो जायगा, तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे अपने कामों को लगन और तत्परता के साथ करेंगे। लेकिन वे जानते हैं कि चाहे उनका शासन कैसा भी हो, अगर चुनाव के समय वे दौड़-धूप करेंगे, कुछ प्रचारकों को अपने साथ कर लेंगे और कुछ रुपया खर्च करने पर तैयार हो जायँगे, तो उनका फिर से निर्वाचन मुश्किल नहीं होगा। स्थानीय शासन की अवस्था की देख-भाल करते रहने के लिए कहीं पर कोई संस्था या संघ नहीं है। धीरे-धीरे कुछ जगहों में इस क्षेत्र में नई पार्टियाँ आ रही हैं और अब कहीं-कहीं चुनाव भी प्रोग्राम के आधार पर हुए हैं। लेकिन अभी इनकी शक्ति में सन्तोषजनक प्रगति नहीं हुई है। साधारण जनता अपने अन्य कर्तव्यों को भी नहीं पूरा करती है। कोई किसी भी शहर या दिहात में चला जावे, वह लोगों को सड़कों पर कूड़ा-करकट फेंकते हुए और बच्चों को उनपर पाखाना करते हुए पायेगा। यह दिन में सबके सामने किया जाता है, किसी से लुक-छिपकर नहीं।

इन सब बातों का क्या परिणाम होता है, इसे समझने के लिए पटना शहर की अवस्था का अवलोकन किया जा सकता है। यहाँ के म्युनिसिपल कमिश्नर अपना कर्तव्य करने में इतने अयोग्य थे, कि सरकार को इस म्युनिसि-

पैलिटी को 'सुपरसीड' करना पड़ा और अभी भी इसका सारा काम सरकार द्वारा ही किया जाता है। आय के साधनों की इतनी कमी है कि यहाँ के निवासियों पर टैक्स बढ़ते चले जा रहे हैं, फिर भी म्युनिसिपल कोष में पूरा रुपया नहीं है। सर्वसाधारण की म्युनिसिपैलिटी में कितनी दिलचस्पी है इसे इसीसे समझा जा सकता है कि यहाँ की म्युनिसिपैलिटी को सपरसीड हुए कई साल हो गये, लेकिन अभी भी यहाँ के लोग शान्त बैठे हुए हैं और इसके विरोध में अपना म्युनिसिपल अधिकार पाने के लिए कभी संगठित होकर आवाज नहीं बुलन्द करते। कुछ दिन हुए, 'पटना नागरिक समिति' नाम की एक संस्था इस अवस्था में सुधार के लिए प्रयास करने के निमित्त, कायम हुई थी। शुरू में इससे कुछ आशा होने का भी कारण था। श्री जयप्रकाश नारायण की तरह सुप्रसिद्ध नेता ने इसकी सफलता के लिए शुभ कामना प्रकट की थी और इसे अपना सहयोग देने का वचन दिया था। लेकिन इस संस्था की भी अब कहीं कोई चर्चा नहीं सुनाई पड़ती है। पटना शहर के निवासी, नागरिक की हैसियत से अपना कर्तव्य कहाँ तक निभाते हैं, इसे देखना हो तो कोई सुबह में किसी सड़क के किनारे—विशेष कर निचली सड़कों पर—चले और वह काफी सयाने-सयाने लड़कों को वहाँ पाखाना करते हुए पायेगा और यह इतनी सामान्य बात हो गई है कि कोई इसे रोकता भी नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि आज स्थानीय स्वशासन की–विशेषकर बिहार में—जो शोचनीय अवस्था है, उसमें सुधार हो सकता है या नहीं; और अगर हो सकता है, तो कैसे ? सुधार नहीं हो सकता है, यह मान लेना तो वर्तमान दुरवस्था को अमरता की गारंटी दे देनी होगी। सुधार तो करना ही है। हाँ, यह अवश्य विचारणीय है कि यह सुधार किस प्रकार सम्भव है। सन् १९४४ में डाक्टर ज्ञानचन्द ने स्थानीय स्वशासन की समस्या के सम्बन्ध में कहा था कि "यह समस्या एक विरोधाभास उपस्थित करती है। यह इसलिए कि आज विश्व को एक ही साथ और समान मात्रा में केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण दोनों की आवश्यकता है। इन दोनों परस्पर-विरोधी उद्देश्यों का समन्वय करना आसान नहीं है। कठिनाई वास्तविक और बुनियादी है, लेकिन उसे

हल करना ही है।"[1] आज की दुरवस्था में सुधार के लिए भी केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण दोनों की आवश्यकता जान पड़ती है। सबसे पहले यह जरूरी है कि स्थानीय संस्थाओं की आय के साधनों को बढ़ाया जाय। बिना रुपयों के आजकल कोई सुधार नहीं हो सकता है और अभी जो आय के साधन इन संस्थाओं के जिम्मे हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं। कुछ नये और स्वतंत्र साधनों को इनके जिम्मे कर देना चाहिए। बड़े-बड़े शहरों में मनोरञ्जन-कर (Entertainment tax) का एक हिस्सा म्युनिसिपैलिटियों को दिया जा सकता है। इस तरह के दूसरे साधन भी पाये जा सकते हैं; इसे सिर्फ उदाहरण के लिए दिया गया है। यह तो विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक कदम होगा। दूसरा आवश्यक सुधार केन्द्रीकरण की दिशा में स्थित जान पड़ता है। जिस तरह से शासन, न्याय, शिक्षा इत्यादि के लिए राज्य भर के लिए एक केन्द्रीय सेवा है और उन विभागों के पदाधिकारी उनके सदस्य हैं, उसी तरह स्थानीय स्वशासन-विभाग के लिए भी राज्य की एक केन्द्रीय सेवा रहनी चाहिए। स्थानीय संस्थाओं के जितने स्थायी सेवक या पदाधिकारी हैं, जैसे इंजीनियर, डाक्टर, शिक्षक, किरानी इत्यादि, उन सभी को तो राज्य की भिन्न-भिन्न सेवाओं का ही सदस्य रहना चाहिए। इनके अलावे प्रत्येक संस्था में एक एक्जिक्यूटिव अफसर रहना चाहिए। ये सभी अफसर स्थानीय स्वशासन-सेवा के सदस्य रहें। इसका परिणाम यह होगा कि ये सभी पदाधिकारी राज्य की सरकार के अधीन रहेंगे और साधारण रीति से उनका एक जगह से दूसरी जगह तबादला भी होता रहेगा। हाँ, अपना काम करते समय उन्हें स्थानीय संस्थाओं की ही आज्ञा मानकर चलना होगा। इसके विरोध में यह कहा जा सकता है कि इससे स्थानीय शासन के स्वायत्तशासी स्वरूप पर आघात पहुँचेगा। इसे इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन आज जो परिस्थिति है उसमें कोरे सिद्धान्तवाद से काम नहीं चलेगा, बल्कि परिस्थिति की यथार्थता को देखकर व्यावहारिक कदम उठाना पड़ेगा। इस सुधार से स्थानीय संस्थाओं के शासन में उन्नति अवश्य होगी। इससे यह "शासन का काम योग्य व्यक्तियों

---

१. Dr. Gyanchand Local finance in India पृष्ठ—७

के हाथ में रहेगा। उनकी बदली होते रहने से उनके सामने भ्रष्टाचार के मौके कम आवेंगे और यह ज्ञान कि यदि वे अपना काम अच्छी तरह करें, तो वे तरक्की करते-करते राज्य के बड़े-से-बड़े पद पर जा सकते हैं, उन्हें लगन और तत्परता से अपना कर्तव्य करने की ओर आकर्षित करेगा। राज्य की सरकार के स्थानीय स्वशासनविभाग के सचिव (सेक्रेटरी) के पद पर भी उन्हीं में से किसी व्यक्ति को होना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि उस विभाग का सचिव ऐसा व्यक्ति रहेगा जिसे स्थानीय संस्थाओं के काम का सीधा (first hand) अनुभव है। इससे सचिवालय के स्तर (Secretariat Level) पर भी इस विभाग के शासन में तरक्की होगी।

लेकिन सिर्फ इतने से ही काम नहीं चलेगा। म्युनिसिपैलिटी और जिला-बोर्ड के सदस्य तथा चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन अपने काम में अधिक दिलचस्पी लें और साधारण जनता नागरिक की हैसियत से अपने अधिकारों और अपनी जिम्मेवारियों को समझे, इसके लिए भी कुछ करना चाहिए। यह जितना कठिन है उतना ही आवश्यक भी। प्रश्न है, इसके लिए क्या किया जा सकता है। इसके लिए लोकतन्त्र के विकास की आवश्यकता है, जिसमें जनता की चेतना बढ़े। कुछ लोगों की राय है कि स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के लिए होनेवाले निर्वाचनों में देश के राजनीतिक दलों को नहीं पड़ना चाहिए। जो अच्छे व्यक्ति हैं, चाहे वे किसी दल के भी क्यों नहीं हों, उन्हें ही चुना जाना चाहिए। इस विचार में कुछ सार अवश्य मालूम पड़ता है। लेकिन पहले तो ऐसे अच्छे व्यक्तियों को ढूँढ़ निकालना ही मुश्किल है, जो किसी दल से सम्बन्धित नहीं हों। फिर ये चुनाव में खड़े होने के लिए तैयार हो जायँगे, यह भी सभी के बारे में नहीं कहा जा सकता। और चुनाव में ऐसे लोग जीत ही जायँगे, इसकी तो कोई गारण्टी नहीं कर सकता, क्योंकि अपनी व्यक्तिगत शक्ति से किसी के लिए चुनाव में जीतना बहुत कठिन है। दूसरी बात यह है कि वर्गभावना का मिटना बड़ा मुश्किल है। उदाहरण के लिए, अगर धनी व्यक्ति किसी म्युनिसिपैलिटी के पदाधिकारी चुने जाते हैं, तो उनके लिए स्वाभाविक है कि वे धनिकों के लिए पार्क बनवाने को, मेहतरों के लिए निवास-स्थान बनवाने से, अधिक महत्त्व दें और यही होता भी है। इसलिए, जो

दल गरीबों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं, उन्हें स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचन में भाग लेना ही पड़ेगा। लेकिन यह अवश्य वांछनीय है कि ये दल सिर्फ अपने राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर ही यह चुनाव नहीं लड़ें, बल्कि स्थानीय शासन में सुधार को भी अपने कार्यक्रम में उचित स्थान दें। इससे स्थानीय शासन के महत्त्व की ओर लोगों का ध्यान जायगा और उसमें सुधार भी होगा। साथ-ही-साथ सरकार, राजनीतिक दलों तथा अन्य संस्थाओं की ओर से जनता में ऐसा प्रचार करना चाहिए जिसमें सब लोग अपनी जिम्मेवारियों को समझें और सड़कों, नालियों इत्यादि को गन्दे होने से बचावें। बिहार-सरकार ने सामाजिक शिक्षा (Social Education) की एक योजना बनाई है और उसको कार्यान्वित भी कर रही है। अगर उसे उचित तरीके से चलाया जाय तो उससे भी यह काम बहुत आगे बढ़ सकता है। राजनीतिक दलों को चाहिये कि वे शहरों और गाँवों के महल्लों में नागरिकों को संगठित करें तथा उन्हें नागरिकता के मूल सिद्धांतों से परिचित करावें और स्वच्छ तथा स्वावलम्बी जीवन बिताने की ओर प्रेरित करें। कालेजों के विद्यार्थियों से भी इस काम में सहायता मिल सकती है। कुछ कालेज इस दिशा में प्रयत्न भी कर रहे हैं। उन्हें अपने प्रयत्नों को और भी बढ़ाना चाहिए और सरकार की ओर से उसमें पूरी मदद मिलनी चाहिए।

जिन सुधारों की चर्चा ऊपर की गई है, उनके अतिरिक्त अन्य सुधारों की भी आवश्यकता पड़ सकती है; बल्कि पड़ेगी। सुधारों की कोई विस्तृत और अन्तिम सूची तैयार करने की यहाँ कोशिश नहीं की गई है। लेकिन अगर इन सुधारों को कार्यान्वित किया जाय, तो स्थानीय शासन में उन्नति की सबल नींव पड़ सकेगी, यह आशा करना अनुचित नहीं जान पड़ता है। यह अध्याय समाप्त करने के पहले इतना कह देना जरूरी जान पड़ता है कि स्थानीय शासन में सुधार शुरू करने में अब और देर करना खतरे से खाली नहीं है। वैसे ही देश में निराशा का वातावरण काफी विस्तृत और घना है। स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में अगर बराबर विफलता ही दिखाई पड़ती रही, तो यह लोकतंत्रात्मक शासनपद्धति के विरुद्ध सबसे बड़ी दलील होगी और लोकतंत्र के शत्रु इसका प्रयोग करने से भी बाज नहीं आवेंगे। दूसरी तरफ अगर इस

क्षेत्र में सुधार लाकर सफलता हासिल किया जा सके, तो ये स्थानीय संस्थायें लोकतंत्र की आदर्श पाठशालाएँ सिद्ध होंगी और लोकतंत्र की जड़ मजबूती से इस देश में जमी रहेगी। तब जनता का दैनिक जीवन भी सफाई, सुख और आनन्द से युक्त होगा। यह एक ऊँचा उद्देश्य है, जिसके लिए कठिन-से-कठिन परिश्रम भी व्यर्थ या अनावश्यक नहीं कहा जा सकता।

अध्याय ३३

ग्राम-पंचायत

भारत की अधिकांश जनता गाँवों में ही रहती है। प्राचीन काल में गाँवों को स्थानीय शासन की इकाइयों के रूप में स्वीकार किया जाता था और इसके लिए ग्राम-पंचायतें संगठित की जाती थीं। इन पंचायतों को शासन-सम्बन्धी महत्वपूर्ण शक्तियाँ दी जाती थीं। साधारणतः गाँव से सम्बन्ध रखनेवाले सभी काम पंचायतों के जरिए ही किये जाते थे। छोटे-मोटे मुकदमों का फैसला भी गाँव में ही कर लिया जाता था। लेकिन अंग्रेजी शासन के युग में भारत की अन्य संस्थाओं की तरह ग्राम-पंचायतों का भी ह्रास होने लगा और कुछ दिनों में तो इनका कोई नामोनिशान ही नहीं रहा। यह स्वाभाविक था कि देश में राजनीतिक जागरण फैलने पर फिर लोगों का ध्यान इस तरफ जाय। भारतीय संविधान में राज्य-नीति के निर्देशक तत्त्वों में ग्राम-पंचायतों के संगठन का भी उल्लेख किया गया है। भारत के करीब-करीब सभी राज्यों में इस क्षेत्र में प्रगति हुई है और आज भारत में हजारों ग्राम-पंचायतें कायम हैं।

ग्राम-पंचायतों की स्थापना में प्रगति

बिहार में ग्राम-पंचायतों का संगठन बिहार-पंचायत-राज-विधान, १९४७ (बिहार-विधान ७, सन् १९४८) की धाराओं के अनुसार किया जा रहा है। यह विधान १९४९ की जनवरी से लागू किया गया है। उत्तरप्रदेश में एक ही साथ सभी जगहों में पंचायत-राज-कानून लागू किया गया है। लेकिन यहाँ पर एक ही साथ सब जगह पंचायत नहीं कायम कर कुछ चुने हुए गाँवों से ही यह काम शुरू किया गया है। बिहार-सरकार का विचार है कि पहले कुछ गाँवों में पंचायत कायम कर उनकी सफलता देखने के बाद दूसरी जगहों में इसे कायम किया जाय। इस तरह इसे धीरे-धीरे बढ़ाया जाय। इस काम की देखरेख करने के लिए राज्य में एक निर्देशक (डायरेक्टर) और एक उपनिर्देशक तथा

प्रत्येक जिले में एक जिला-पंचायत-अफसर बहाल किये गये हैं। प्रत्येक सब-डिवीजन में पंचायतों का एक सुपरवाइजर नियुक्त करने का भी सरकार ने निश्चय किया है। ग्राम-पंचायत-योजना में सरकारी सहयोग प्राप्त करने के लिए एक राज्य-पंचायत-बोर्ड कायम किया गया है और उसमें गैर-सरकारी व्यक्तियों को भी शामिल किया गया है।

जिस गाँव में पंचायत कायम करने का निश्चय किया जाता है वहाँ पर सबसे पहले जिला-पंचायत-अफसर जाते हैं और उस गाँव में रहनेवाले व्यक्तियों को पंचायत का महत्त्व बतलाते हैं तथा उन्हें बिहार-पंचायत-राज-विधान की धाराओं को समझाते हैं। इसके बाद वहाँ एक गैरसरकारी पंचायत कायम की जाती है। इससे यह पता चलता है कि गाँववाले पंचायत चला सकने के लायक हैं या नहीं। अगर गैरसरकारी पंचायत सफलतापूर्वक चल गई, तब वहाँ सरकारी तौर पर निर्वाचन कराकर बाकायदे पंचायत की स्थापना कर दी जाती है। इस तरह शुरू में बिहार के प्रत्येक सबडिवीजन में पहले पचीस पंचायतें कायम की गई और बाद में इनकी संख्या धीरे-धीरे बढ़ाई गई। १५ मई १९५० तक ३,२३२ गाँवों में जिला-पंचायत-अफसरों का दौरा हो चुका था। इस तारीख के पहले १,८९५ गाँवों में गैरसरकारी पंचायतों का संगठन किया गया था, जिनमें से ७७७ पंचायतों को सरकारी तौर पर संगठित होने की घोषणा की गई तथा इनमें से ३९५ पंचायतों का निर्वाचन भी किया जा चुका है। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष बिहार में १३०० पंचायत कायम करने का निश्चय किया गया है।[1]

ग्राम-पंचायतों का गठन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इन पंचायतों का संगठन बिहार-पंचायत-राज, १९४७ के अनुसार किया जा रहा है। इसलिए यहाँ पर उसके मुख्य धाराओं का संक्षेप में उल्लेख किया जायेगा। उनके अनुसार प्रत्येक गाँव में एक पंचायत स्थापित की जा सकती है। लेकिन सरकार यदि उचित समझे, तो आसपास के गाँवों के समूह के लिए एक पंचायत या कई टोलों के एक

१. प्रगति की ओर : बिहार : १९४९-५० पृ. १६८-६९।

बड़े गाँव में एक से अधिक पंचायत की स्थापना की जा सकती है। प्रत्येक ग्राम-पंचायत के ऐसे सभी व्यक्ति—चाहे वे स्त्री हों या पुरुष—सदस्य होंगे जो साधारणतः उस गाँव में रहते हों तथा इक्कीस वर्ष की आयु पूरी कर चुके हों। लेकिन अगर ऐसा कोई व्यक्ति विकृत-मस्तिष्क का हो, या दिवालियापन से बरी नहीं हुआ हो, या निर्वाचन-सम्बन्धी अपराध में अथवा नैतिक दुराचार-सम्बन्धी अपराध में दण्डित हुआ हो, तब वह ग्राम-पंचायत का सदस्य नहीं हो सकेगा।

प्रत्येक ग्राम-पंचायत की एक वार्षिक और एक अर्द्धवार्षिक साधारण सभा क्रमशः अगहनी और चैती फसलों के बाद हुआ करेगी। मुखिया चाहे तो स्वयं, या ग्राम-पंचायत के कम-से-कम पंचमांश सदस्यों की लिखित माँग पर अनिवार्य रूप से, किसी समय भी असाधारण सभा बुला सकता है। किसी साल की साधारण वार्षिक सभा में अगले वर्ष के आय-व्ययक (बजट) पर विचार कर उसे स्वीकृत किया जायेगा। अर्द्धवार्षिक सभा में पिछले वर्ष के हिसाब-किताब पर विचार होगा। इन दोनों सभाओं में किसी काम की प्रगति पर दिये गये विवरण तथा आगामी वर्ष या अर्द्धवर्ष के कार्यक्रम पर भी विचार किया जायेगा। ग्राम-पंचायत की किसी सभा में तबतक कोई कार्यवाही नहीं होगी, जबतक कुल सदस्यों का कम-से-कम चौथाई भाग उपस्थित नहीं रहे।

ग्राम-पंचायत के शासन-सम्बन्धी कार्य, कार्यकारिणी समिति द्वारा सम्पादित होंगे, जिसका प्रधान 'मुखिया' कहलायेगा। वह पंचायत के सदस्यों में से एक होगा और उन्हीं के द्वारा निर्वाचित किया जायगा। कार्यकारिणी समिति के सदस्य ग्राम-पंचायत के सदस्यों में से मुखिया द्वारा नियुक्त किये जायँगे। इस समिति में मुखिया को लेकर कम-से-कम ७ और अधिक-से-अधिक १५ सदस्य रहेंगे। नियुक्त या निर्वाचित होने की तारीख से प्रत्येक सदस्य अपने पद पर तीन वर्षों के लिए रहेगा। लेकिन ग्राम-पंचायत, इसके पहले भी, किसी सभा में जो इसी प्रयोजन के लिए बुलाई गई हो, उपस्थित सदस्यों के बहुमत से मुखिया को हटा सकती है। ऐसी अवस्था में या अन्य किसी कारण से जब कभी मुखिया की जगह खाली हो, ग्राम-पंचायत जल्द-से-जल्द अपने किसी दूसरे सदस्य को मुखिया निर्वाचित करेगी। जब कोई मुखिया अपने पद से

इस प्रकार हटा दिया जांय तो, उसके द्वारा नियुक्त कार्यकारिणी समिति भी विघटित समझी जायगी और नया मुखिया फिर से उसके सदस्यों को नियुक्त करेगा।

प्रत्येक ग्राम-पंचायत के लिए एक ग्राम-सेवक रहेगा। वह सरकार द्वारा नियुक्त किया जायगा और पंचायत का कार्यालय उसीके अधीन रहेगा। वह किसी विशेष वर्ष में लागू की जानेवाली योजनाओं और कामों का कार्यक्रम तैयार करेगा और उसे कार्यकारिणी समिति के सामने उसकी स्वीकृति के लिए पेश करेगा। यदि कार्यकारिणी समिति, किसी योजना या काम को, इस तरह से स्वीकृत कार्यक्रम में निश्चित समय के भीतर पूरा करवाने में या उसमें उचित प्रगति लाने में असफल रहे तो ग्राम-सेवक को यह अधिकार प्राप्त है कि निर्धारित अधिकारी की आज्ञा लेकर वह खुद ही उस योजना या काम को ग्राम-पंचायत-कोष के रुपये से पूरा करवावे।

आवश्यकता पड़ने पर दो या दो से अधिक ग्राम-पंचायतों की एक संयुक्त समिति भी संगठित की जा सकती है। इसके लिए एक लिखित दस्तावेज होगा जिसमें सभी पक्षों के यथाविधि हस्ताक्षर रहेंगे। इस समिति में शामिल होने-वाले प्रतिनिधियों की नियुक्ति ग्राम-पंचायतों द्वारा की जायगी। ऐसी समिति के निर्माण, उसके सदस्यों के पद पर रहने की अवधि, कार्यप्रणाली तथा पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में भी ये पंचायतें नियम बना सकती हैं तथा संशोधन कर सकती हैं। इस समिति के जिम्मे वे सब काम रहेंगे जिनमें उन पंचायतों का पारस्परिक स्वार्थ हो। यदि कभी इन पंचायतों में इस तरह काम करते हुए कोई मतभेद पैदा हो जाय, तो उसे निर्धारित अधिकारी के पास भेज दिया जायगा और उसपर उसका निर्णय अन्तिम होगा।

ग्राम-पंचायत का सम्बन्ध जिला-बोर्ड से भी रहेगा। प्रत्येक जिला-बोर्ड, जिसकी सीमा के भीतर एक या एक से अधिक ग्राम-पंचायत हों, एक ग्राम-पंचायत-समिति नियुक्त करेगा। इस समिति में जिला के स्वास्थ्य-अफसर, जिला-इञ्जीनियर और बोर्ड के अधिक-से-अधिक तीन सदस्य रहेंगे। इस समिति को ग्राम-पंचायत से कोई ब्योरा, विवरण, अनुमान-पत्र, आँकड़े या अन्य किसी विषय-सम्बन्धी सूचना,—ऐसे किसी विषय पर रिपोर्ट अथवा

किसी दस्तावेज की प्रतिलिपि माँगने का अधिकार रहेगा। कुछ अपवादों को छोड़कर और ग्राम-पंचायत की राय से कोई जिला-बोर्ड ऐसी पंचायत को कोई भी काम सौंप दे सकता है। इन कामों को करते हुए ग्राम-पंचायत जिला-बोर्ड के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करेगी। जब कभी कोई ऐसी योजना बने; जिसमें पाँच सौ से अधिक का खर्च हो, तो उसे शुरू करने के पहले ग्राम-पंचायत-समिति की स्वीकृति ले लेना जरूरी होगा। अगर स्वीकृति के बाद उस योजना में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया जाय तो उसे भी उस समिति की स्वीकृति के बिना कार्यरूप में परिणत नहीं किया जायगा।

ग्राम-पंचायत के अधिकार और कर्तव्य

गाँव के लोगों के रोजमर्रे के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी बातों पर ग्राम-पंचायत का नियंत्रण और शासन रहेगा। ये बातें हैं—स्वास्थ्य-रक्षा और सफाई; चिकित्सा और प्राथमिक उपचार; पानी का प्रबन्ध और उसकी सफाई तथा विशुद्धि; सरकार की आवश्यकतानुसार फसल, पशु और जन्म-मरण का शुद्ध विवरण रखना; महामारी और संक्रामक रोगों का नियंत्रण तथा निवारण; जन-मार्गों का निर्माण तथा निर्वाह तथा गाँव की सड़कों और रास्तों का संरक्षण; जन-मार्गों, जन-स्थानों और पंचायत की अधिकृत सम्पत्ति पर अनधिकारपूर्ण प्रवेश रोकना और उसके विरुद्ध रिपोर्ट करना; पंचायत के मकान या सम्पत्ति की देखभाल और मरम्मत; आग बुझाना तथा आग, अकाल, सेंधमारी और डकैती का सामना करना; सार्वजनिक भूमि (गैर मजरुआ आम जमीन), सार्वजनिक चारागाह, श्मशानघाट, कब्रिस्तान तथा गाँव की जनता के सार्वजनिक लाभ की भूमि की व्यवस्था और देखरेख; ग्रामोन्नति-सम्बन्धी उन योजनाओं को कार्यान्वित करना, जिनके लिए सरकार आदेश दे; गाँव में सिंचाई के कामों की रक्षा और उन्नति। इनमें सरकार विशेष या साधारण आज्ञा द्वारा अपवाद भी कर सकती है।

इन कर्तव्यों के साथ-साथ ग्राम-पंचायतों के कुछ पूरक कर्तव्य हैं। कार्यकारिणी समिति के बहुमत के निर्णय पर, ग्राम-पंचायत, यदि चाहे तो, और सरकार यदि आदेश दे तो अनिवार्य रूप से, कई अन्य विषयों का भी

प्रबन्ध करेगी। ये विषय हैं—जन-मार्गों पर प्रकाश का प्रबन्ध; प्राथमिक शिक्षा; जन्म, मृत्यु और विवाह की रजिस्ट्री; बाल-विवाह-नियंत्रण-विधान, सन् १९२९ के अन्तर्गत मुकदमा दायर करना; पशु-प्रजनन (नस्ल) और पशु-चिकित्सा की उन्नति तथा पशु-रोगों का अवरोध; कुएँ, तालाब तथा पोखरों का निर्माण; कृषि, वाणिज्य और उद्योग के विकास में सहायता; सम्मिलित कृषि, सहयोग-भंडार तथा अन्य वाणिज्य और व्यवस्थाओं का प्रारम्भ और विकास; पुस्तकालयों तथा वाचनालयों का संस्थापन और निर्वाह; मातृत्व और शिशु-कल्याण; अखाड़े तथा क्रीड़ा-स्थल का संगठन और निर्वाह; खाद संग्रह करने के लिए स्थानों की नियुक्ति; रेडियो और ग्रामोफोन; निराश्रयों और रोगियों की सहायता; किसी सार्वजनिक घाट का प्रबन्ध, यदि बंगाल फेरिज ऐक्ट १८८५ के अनुसार वह ग्राम-पंचायत के अधिकार में दिया गया हो; ऐसे कार्यों का सम्पादन जो कैटल ट्रेसपास ऐक्ट की धारा ३७ के अन्तर्गत ग्राम-पंचायत को सौंपे जायँ; कृषि-धन एवं ग्रामीण ऋण तथा दरिद्रता दूर करने के साधनों की उन्नति; अस्वास्थ्यकर गड़हों को भरवाना, तथा अस्वास्थ्यकर स्थानों का पुनरुद्धार; गृह-शिल्पों की उन्नति, विकास और प्रोत्साहन; छूटे तथा स्वामिहीन कुत्तों का विनाश; आपत्तिजनक व्यवसायों और प्रथाओं का नियंत्रण या ह्रास; निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार बस्तियों का विस्तार और मकानों की व्यवस्था; सराय, धर्मशाला और विश्राम-गृहों का निर्माण एवं निर्वाह; लावारिस मुर्दे एवं मरे हुए तथा लावारिस पशुओं की उचित व्यवस्था; मनुष्य और पशु-टीका का प्रोत्साहन; सार्वजनिक शौचालयों तथा हाटों का निर्माण एवं निर्वाह; सार्वजनिक उपयोगिता का कोई अन्य स्थानीय कार्य, जिससे जनता के स्वास्थ्य, सुख, सुगमता या भौतिक उन्नति में सहायता की सम्भावना हो और जिसका समावेश पंचायत-राज-विधान में न हो। इनमें भी सरकार द्वारा कोई अपवाद किया जा सकता है। साथ-ही-साथ ऊपर लिखी गई किसी बात से यह नहीं समझा जायेगा कि ऐसी किसी बात के सम्बन्ध में जो सरकार के किसी विभाग के या स्थानीय अधिकारी के सीधे नियंत्रण में हो, ग्राम-पंचायत के ऊपर कर्तव्य-भार दे दिया गया है, या उसे अधिकार मिल गया है, जबतक कि सरकार की या स्थानीय अधिकारी की आज्ञा से, जैसी अवस्था हो,

पंचायत को ऐसा कर्तव्य-भार या अधिकार नहीं दिया गया या नहीं सौंपा गया हो।

ऊपर दिये गये विषयों के सम्बन्ध में अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सकने के लिए बिहार-पंचायत-राजविधान के अनुसार ग्राम-पंचायत को कई तरह के अधिकार दिये गये हैं। चिकित्सा और प्राथमिक उपचार के लिए दो या दो से अधिक ग्राम-पंचायत मिलकर आयुर्वेदिक, यूनानी, एलोपैथिक या होमियोपैथिक औषधालय की स्थापना और निर्वाह कर सकती है। ग्राम-पंचायत की स्थानीय सीमा के भीतर के किसी गाँव में यदि हैजा या पानी द्वारा फैलनेवाला कोई संक्रामक रोग हो जाय, तो मुखिया या उससे अधिकार-प्राप्त कोई व्यक्ति जबतक महामारी वहाँ रहे, बिना सूचना दिये किसी भी समय कोई कुआँ, तालाब या किसी अन्य जगह का, जहाँ से पीने का पानी लिया जाता हो या लिया जानेवाला हो, निरीक्षण कर सकता है और उसे दवा इत्यादि डालकर शुद्ध कर सकता है तथा इसके अतिरिक्त और भी ऐसी कार्रवाई कर सकता है जो वह वहाँ से पानी लेना बन्द करने के लिए उचित समझे।

सफाई-सम्बन्धी सुधार के लिए कार्यकारिणी समिति को अधिकार होगा कि वह ग्राम-पंचायत को दिये गये या सौंपे गये कार्यों के संपादन में उन सभी कामों को करे जो उन कार्यों के लिए आवश्यक हों या जिन्हें प्रसंगवश करना पड़े। इसके सिलसिले में वह ग्रामवासियों को तरह-तरह का आदेश दे सकती है। अगर कोई व्यक्ति किसी आदेश को मानने से इनकार करे तो वह किसी बात में २५ रुपये तक और किसी में ५० रुपये तक के अर्थदंड का भागी होगा। साथ-ही-साथ यदि कोई कार्य, जिसके करने की आज्ञा सूचना द्वारा दी गई हो, सूचना में निश्चित अवधि के भीतर पूरा न किया जाय, तो कार्यकारिणी समिति, उस कार्य को पूरा करवा सकती है और जिसको पहले यह कार्य करने की आज्ञा दी गई थी उससे उस कार्य को करवाने का खर्च वसूल करने के लिए सर्टिफिकेट जारी कर सकती है। इसी तरह गृहनिर्माण पर भी कार्यकारिणी समिति का नियंत्रण रहेगा। यह समिति गाँव के लिए एक आदर्श नक्शा तैयार कर लेने के बाद गाँव के लोगों को मकान बनाने इत्यादि के सम्बन्ध में आवश्यक आदेश दे सकती है। अगर

कोई उस आदेश को नहीं माने तो इसकी रिपोर्ट सब डिवीजनल मैजिस्ट्रेट को दी जायेगी। इसके बाद मैजिस्ट्रेट जो आज्ञा दे उसको नहीं मानने पर किसी अवस्था में १०० रुपये तक और किसी में २५ रुपये तक का अर्थदंड दिया जा सकता है।

ऊपर बताये गये अवसरों पर या अन्य किसी अवसर पर कार्यकारिणी समिति द्वारा लगाये जानेवाले सभी जुर्माने समिति के सदस्यों द्वारा सभा में यथा-विधि बहुमत द्वारा पास किये गये प्रस्ताव द्वारा स्वीकृत होंगे और सार्वजनिक माँग की तरह वसूल किये जायँगे। लेकिन कार्यकारिणी समिति कभी भी अभियुक्त को प्रमाण देने या सुने जाने के लिए पूर्ण अवसर दिये बिना ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं स्वीकार करेगी। साथ-ही-साथ कुछ अवसरों पर कार्यकारिणी समिति के निर्णय के विरुद्ध सब डिवीजनल मैजिस्ट्रेट या उसके द्वारा इस काम के लिए अधिकृत अन्य किसी पदाधिकारी के सामने उक्त निर्णय की तारीख से तीस दिन के भीतर अपील की जा सकती है।

साधारण चौकसी और पहरे के लिए तथा अगलगी, बाँध या पुल का टूटना, महामारी का प्रसार और सेंधमारी तथा डकैती-जैसी आकस्मिक घटनाओं का सामना करने के लिए कार्यकारिणी समिति अपने द्वारा नियुक्त एक चीफ अफसर की प्रधानता में एक ग्राम-स्वयंसेवक-दल संगठित कर सकती है। गाँव के १८ और ३० वर्ष के भीतर के सभी समर्थ पुरुष इस दल के सदस्य होंगे। उसके सदस्यों के शिक्षण, अनुशासन और सदाचरण के लिए तथा उसके संगठन-सम्बन्धी अन्य बातों के लिए सरकार नियम बना सकती है। आपत्ति के अवसर पर मुखिया, चीफ अफसर तथा स्वयंसेवक-दल के अन्य पदाधिकारी द्वारा कई तरह के विशेष अधिकारों का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, ऐसे किसी अवसर पर आवश्यकता पड़ने पर इनमें से कोई किसी भी अहाते को तोड़कर प्रवेश कर सकता है या उसे ढाह दे सकता है। ये लोग साधारणतः जान और माल की रक्षा के लिए सभी तरह का आवश्यक प्रबन्ध कर सकते हैं। चीफ अफसर या अन्य कोई अफसर जिसके अधीन ग्राम-स्वयं-सेवक-दल हो या दल का कोई भी सदस्य किसी भी कार्य के सम्पादन में क्षति का देनदार नहीं होगा यदि उसे निष्कपट विश्वास हो कि उक्त कार्य का सम्पादन

उसके कर्तव्यपालन के लिए आवश्यक था। गाँव में किसी आपत्ति के अवसर पर ग्राम-स्वयंसेवक-दल का चीफ अफसर जल्द-से-जल्द उस घटना की जाँच कर उसकी पूरी रिपोर्ट सब डिवीजनल मैजिस्ट्रेट के यहाँ भेजेगा।

साधारण शासन में ग्राम-पंचायत द्वारा सहायता दी जाने की भी व्यवस्था की गई है। यदि सरकार ने उसे अधिकार दिया हो, तो कोई भी सरकारी सेवक, अपने अधिकारक्षेत्र की स्थानीय सीमा के अन्तर्गत किसी भी मुखिया से अपने कर्तव्यपालन में सहायता की माँग कर सकता है। मुखिया को यथाशक्ति उसकी सहायता करनी चाहिए। अपनी अधिकार-सीमा में रहनेवाले लोगों के कल्याण के लिए कार्यकारिणी समिति उचित अधिकारी के पास अपनी ओर से सिफारिश भेज सकती है। यदि कोई व्यक्ति, सरकार की नौकरी करनेवाले किसी ग्राम-अफसर, सिपाही, टीका देनेवाले, पटवारी, नहर चौकीदार या चपरासी के सरकारी कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में दुराचरण का दोषारोपण करे, तो पर्याप्त प्रमाण पाने पर मुखिया उचित अधिकारी के पास इसकी रिपोर्ट भेज सकता है। वह अधिकारी उसकी पूरी जाँच करेगा और आवश्यक होने पर उचित कार्यवाही करेगा। मुखिया को भी उसकी सूचना भेज दी जायगी। कार्यकारिणी समिति अपनी अधिकार-सीमा के लिए सरकार या किसी स्थानीय अधिकारी के सभी या किसी वर्ग के कर या बकाये की तहसील के लिए ठीका ले सकती है। इसके लिए पंचायत को उस कर या बकाये का एक निर्धारित प्रतिशत अंश दिया जायगा।

ग्राम-पंचायत की सम्पत्ति और आमदनी

अगर कभी कोई ग्राम-पंचायत अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किसी भूमि की आवश्यकता महसूस करे तो वह उस भूमि के मालिक से बातचीत कर उसे पंचायत के लिए ले सकती है। अगर बातचीत में कोई समझौता नहीं हो सके तब कार्यकारिणी समिति उस जिले के कलक्टर के पास इसके लिए लिख सकती है और कलक्टर चाहे तो लैंड एक्वीजीशन ऐक्ट, १८९४ के अनुसार भूमि प्राप्त करने की कार्रवाई कर सकता है। ग्राम-पंचायत के इलाके की कुल सार्वजनिक सम्पत्ति, ग्राम-पंचायत की सम्पत्ति होगी और उसपर उसका अधिकार होगा। वह तथा अन्य सम्पत्ति जो पंचायत को मिले, पंचायत के निर्देश, प्रबन्ध तथा नियंत्रण में रहेगी।

प्रत्येक पंचायत के लिए एक ग्राम-पंचायत-कोष रहेगा। पंचायत द्वारा लिये गये ऐसे कर की आमदनी और अन्य रुपये, जो निर्धारित किये जायँ, इसी कोष में रखे जायँगे। कार्यकारिणी समिति द्वारा, सभी हाटों और मेलों का या उनके ऐसे भागों का जो सार्वजनिक भूमि पर लगते हों, प्रबन्ध और नियंत्रण किया जायगा। इनपर टैक्स के रूप में लगाये गये सभी रुपये ग्राम-पंचायत-कोष में जमा किये जायँगे। ग्राम-पंचायत को अपने किसी ध्येय की पूर्ति के लिए रुपया कर्ज लेने का भी अधिकार है। लेकिन उसे ऐसा करते समय निर्धारित अधिकारी से स्वीकृति ले लेनी होगी और उन शर्तों के अधीन रहना पड़ेगा जो निर्धारित किये जायँ।

ग्राम-पंचायत द्वारा दो तरह का अनिवार्य कर लगाया जायगा—एक श्रमकर और दूसरा उस क्षेत्र की अचल सम्पत्ति के मालिकों द्वारा देय एक निर्धारित दर से नकद कर। श्रमकर में निर्धारित आयु के सभी नीरोग पुरुष ग्राम-पंचायत के लिए शारीरिक परिश्रम करेंगे। इस परिश्रम की इकाई-संख्या निर्धारित की जायगी। लेकिन एक साल में किसी व्यक्ति से लिये जानेवाले परिश्रम की इकाई-संख्या बारह से कभी भी कम नहीं होगी। यहाँ एक इकाई-संख्या के श्रम का अर्थ होगा चार घंटा श्रम। अगर कोई व्यक्ति अपने ऊपर किसी साल लगाये गये श्रमकर से बचना चाहे, तो वह उस वर्ष के प्रारम्भ से दो महीने के भीतर उस गाँव में प्रचलित तथा मुखिया द्वारा निश्चित मजदूरी की दर से ग्राम-पंचायत-कोष में उतने श्रम के बराबर रुपया जमा कर उससे बच सकता है।

इन अनिवार्य करों के अलावे ग्राम-पंचायत और भी कई तरह का कर लगा सकती है। ये कर हैं—व्यवसायी-ग्राहक, दलाल, आढ़तिया, तौलने और नापनेवाले पर लाइसेंस-फीस; सरकार की पूर्व स्वीकृति से, ग्राम-पंचायत की अधिकार-सीमा में खेती को छोड़कर अन्य किसी वृत्ति, व्यवसाय, या व्यापार करनेवालों पर कर; गाँव में बिक्री के लिए माल लानेवाली गाड़ियों, लद्दू जानवरों और बोझ ढोनेवाले आदमियों पर कर; ग्राम-पंचायत के अधिकृत या नियंत्रित किसी हाट या अन्य स्थान में बिक्री के लिए पसारे हुए मालों पर फीस; गाँव की सीमा के भीतर बिके हुए जानवरों की रजिस्ट्री पर फीस; ग्राम-पंचायत से अधिकृत सराय, धर्मशाला, विश्रामगृह या पड़ाव डालने की भूमि

को काम में लाने पर फीस; जलकर—जहाँ ग्राम-पंचायत ने पानी देने का प्रबन्ध किया हो; पाखाना-कर—जहाँ ग्राम-पंचायत ने पाखाना साफ करवाने का प्रबन्ध किया हो; प्रकाश-कर—जहाँ ग्राम-पंचायत ने जन-मार्गों, स्थानों और मकानों के लिए प्रकाश का प्रबन्ध किया हो; पानी-निकास की फीस—जहाँ पानी-निकास की योजना ग्राम-पंचायत ने आरम्भ की हो; गाँव के पूजा और तीर्थ-स्थानों पर यात्री-कर, यदि सरकार अनुमति दे; और अन्य कर, चुंगी, फीस, या महसूल जिसे सरकार ने स्वीकार किया हो।

यदि कभी किसी व्यक्ति के मुखिया या कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहने के समय की असावधानी या दुराचरण के प्रत्यक्ष परिणाम-स्वरूप ग्राम-पंचायत के रुपये या किसी सम्पत्ति की हानि, क्षति या दुरुपयोग हो, तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से उसके लिए उत्तरदायी होगा। ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध ग्राम-पंचायत या ग्राम-सेवक की ओर से, निर्धारित अधिकारी की पूर्व स्वीकृति से, क्षतिपूर्ति के लिए नालिश या विश्वासभंग का मुकदमा दायर किया जा सकता है। इस निर्धारित अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध सम्बन्धित सदस्य या ग्राम-पंचायत की ओर से सरकार के पास अपील की जा सकती है। सरकार स्वयं भी ऐसे किसी अवसर पर नालिश या मुक़दमा दायर कर सकती है।

ग्राम-कचहरी

प्रत्येक ग्राम-पञ्चायत में एक ग्राम-कचहरी रहेगी। इस कचहरी के पन्द्रह सदस्य रहेंगे, जो ग्राम-पञ्चायत द्वारा चुने जायँगे। ये पंच कहलायेंगे। प्रत्येक पञ्च अपने चुने जाने की तारीख से तीन साल तक अपने पद पर रहेगा। पञ्च लोग अपने में से ही एक व्यक्ति को सरपञ्च निर्वाचित करेंगे। यह सरपञ्च ग्राम-कचहरी और उसके इजलासों का प्रधान होगा। कोई भी सरपञ्च या पञ्च दुराचरण, अयोग्यता, कर्तव्योपेक्षा या अन्य पर्याप्त कारण के लिए सरकार द्वारा अपने पद से हटाया जा सकता है। कोई भी सरपञ्च या पञ्च जो इस प्रकार अपने पद से हटा दिया गया हो, अपने हटाये जाने के बाद फिर पाँच साल तक उस पद के लिए चुने जाने का पात्र नहीं होगा। कोई सरपञ्च या पञ्च कभी भी

मुखिया को लिखित सूचना द्वारा अपने पद से इस्तीफा दे सकता है। जब किसी सरपञ्च या पञ्च की जगह उसके हटाये जाने, इस्तीफा देने या मृत्यु के कारण खाली हो, तो एक नया सरपञ्च या पञ्च, जैसी अवस्था हो, चुना जायगा। यह नया सरपञ्च या पञ्च उस अवधि तक अपने पद पर रहेगा, जिस अवधि तक, जिसकी जगह पर वह चुना गया है, रहने का अधिकारी होता, यदि उसका स्थान रिक्त नहीं हुआ होता। कोई भी मुखिया या कार्यकारिणी समिति का सदस्य पञ्च नहीं चुना जा सकता। कोई सरपञ्च या पञ्च किसी ऐसी कार्यवाही में भाग नहीं लेगा जिसमें उसका व्यक्तिगत स्वार्थ हो।

बिहार-पञ्चायत-राज-विधान के अनुसार ग्राम-कचहरी में दायर किये जाने लायक सभी नालिश और मुकदमे सरपञ्च के यहाँ दायर किये जायँगे। इस तरह के प्रत्येक नालिश या मुकदमे की सुनवाई और निर्णय ग्राम-इजलास में होगा, जिसमें सरपञ्च और कचहरी के पंचों में से नालिश या मुकदमे के क्रमशः दोनों पक्षों द्वारा मनोनीत दो पंच रहेंगे। यदि कोई पक्ष निर्धारित समय के भीतर पंच नहीं मनोनीत करे, तो सरपंच पंचों की सूची से एक पञ्च मनोनीत कर लेगा। ग्राम-कचहरी का इजलास, जहाँ तक सम्भव हो सके, किसी झगड़े का मैत्रीपूर्ण निबटारा करवाने की कोशिश करेगा। यदि मैत्रीपूर्ण निबटारा नहीं हो सके, तो ग्राम-पञ्चायत का इजलास झगड़े की जाँच, सुनवाई और निर्णय करेगा। ग्राम-कचहरी के इजलास का निर्णय लिखित होगा और उसपर सभी सदस्यों के हस्ताक्षर रहेंगे। अगर इजलास के सदस्यों में मतभेद हो, तो बहुमत का निर्णय ही मान्य होगा। लेकिन किसी सदस्य को, ऐसे निर्णय के विरुद्ध, अपना मत, लिखकर प्रकट करने में कोई रुकावट नहीं होगी।

ग्राम-कचहरी को फौजदारी और दीवानी दोनों तरह के मुकदमों की सुनवाई करने की शक्ति दी गई है। फौजदारी-क्षेत्र में ग्राम-कचहरी को इंण्डियन पेनल कोड, बङ्गाल पब्लिक गैम्बिलिंग ऐक्ट १८६७, तथा कैट्ल ट्रेस पास ऐक्ट १८७१ की कई धाराओं के अधीन किये गये अपराधों पर विचार करने का अधिकार होगा। इनके अलावे अन्य किसी विधान के अन्तर्गत अपराध पर भी विचार किया जा सकता है यदि सरकार इस सम्बन्ध में अधिकार दे। इस तरह के मुकदमों के विचार के लिए ग्राम-कचहरी के इजलास को तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट का अधिकार प्राप्त समझा जायगा। अगर कभी सरपंच को

यह विश्वास हो जाय कि शान्तिभंग की शीघ्र संभावना है, तो वह झगड़े के दोनों पक्षों को आज्ञा दे सकता है कि वे कारण बतायें कि क्यों न उनसे शान्ति रखने के लिए जमानत के साथ या बिना जमानत के मुचलका लिया जाय। इस तरह किसी से अधिक-से-अधिक पन्द्रह दिनों के लिए मुचलका लिया जा सकता है। ऐसी सूचना के बाद शीघ्र ही उस मामले की कार्रवाइयाँ सरपंच द्वारा सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट के यहाँ भेज दी जायँगी। मैजिस्ट्रेट यदि आवश्यक समझे तो झगड़े से सम्बन्धित पक्षों की सुनवाई करेगा और या तो उस आज्ञा को बहाल रखेगा या सूचना को रद्द कर देगा।

दीवानी-क्षेत्र में ग्राम-कचहरी के इजलास को ठीके के बकिऔते के लिए, चल सम्पत्ति या ऐसी सम्पत्ति के मूल्य की वसूली के लिए, मालगुजारी और किराये की वसूली के लिए और अनुचित रूप से चल सम्पत्ति प्राप्त करने या उसे हानि पहुँचाने के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति के लिए या पशुओं द्वारा नष्ट की गई सम्पत्ति के लिए किये गये नालिशों को सुनने और निर्णय करने की शक्ति होगी। लेकिन इसके साथ एक शर्त यह है कि नालिश का मूल्य एक सौ रुपये से अधिक नहीं होना चाहिए। अगर किसी इजलास को सरकार ने विशेष अधिकार दे रखा हो, तो वह ऐसे नालिशों की भी सुनवाई और निर्णय कर सकता है जिनका मूल्य एक सौ रुपये से अधिक हो पर दो सौ रुपये से अधिक न हो। लेकिन अगर किसी झगड़े के दोनों पक्षों का इसके लिए लिखित निश्चय प्राप्त हो, तो ग्राम-कचहरी के इजलास को बिना मूल्य का विचार किये हुए, दीवानी कचहरी के साथ-साथ, किसी नालिश को सुनने और निर्णय करने का अधिकार होगा। कुछ नालिशें ऐसी भी हैं जिनकी सुनवाई ग्राम-कचहरी के इजलास में नहीं हो सकती।

ग्राम-कचहरी के इजलास की किसी आज्ञा या निर्णय के विरुद्ध अपील उस कचहरी के पूर्ण इजलास में की जा सकती है, जिसमें सरपंच और सभी पंच बैठेंगे। ऐसी अपील आज्ञा या निर्णय दिये जाने के तीस दिनों के भीतर होनी चाहिए। इसपर पूरे इजलास का निर्णय अन्तिम होगा। ग्राम-कचहरी के इजलास द्वारा ग्राह्य मुकदमों या नालिशों में अन्य कोई कचहरी हस्तक्षेप नहीं करेगी। लेकिन यदि सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट या मुंसिफ स्वतः या सूचना

मिलने पर यह समझे कि ग्राम-कचहरी के इजलास में विचाराधीन कोई मुकदमा या नालिश पेचीदा है या अन्य किसी कारण से इजलास द्वारा विचार या सुनवाई के योग्य नहीं है, तो वह उसे वापस ले सकता है। इसके बाद वह या तो उसपर स्वयं विचार करेगा या किसी समर्थ मजिस्ट्रेट या मुंसिफ के यहाँ उचित कार्रवाई के लिए भेज देगा। यदि सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट या मुंसिफ यह समझे कि किसी मुकदमे या नालिश में न्याय की हत्या हुई है या होने का भय है, तो वह किसी पक्ष के निवेदन पर या स्वतः, किसी मुकदमे या नालिश की विचाराधीन अवस्था में किसी भी समय और डिग्री या आज्ञा की तारीख से ६० दिन के भीतर ग्राम-कचहरी के इजलास से मिसिल तलब कर सकता है। साथ-ही-साथ वह इजलास की उस मुकदमे या नालिश-सम्बन्धी अधिकार-सीमा को, या इजलास की किसी भी कार्रवाई को, या इजलास द्वारा दी गई किसी डिग्री या आज्ञा को रद्द कर दे सकता है। जब किसी मुकदमे या नालिश में किसी मजिस्ट्रेट या मुंसिफ द्वारा इस तरह की आज्ञा दी जाय, तो अभियोजक या वादी उचित अधिकार प्राप्त सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट या मुंसिफ के इजलास में नये सिरे से मुकदमा या नालिश दायर कर सकता है। ऊपर दी गई दोनों अवस्थाओं के अतिरिक्त अन्य सभी अवस्थाओं में, किसी मुकदमे या नालिश में ग्राम-कचहरी के इजलास द्वारा दी गई आज्ञा या डिग्री अन्तिम होगी और उसकी अपील या पुनर्विचार किसी भी कचहरी में नहीं हो सकेगा।

कोई कानूनी पेशा करनेवाला व्यक्ति या कोई व्यक्ति जो घोषित या ग्राम-कचहरी का जाना हुआ दलाल हो, किसी मुकदमे या नालिश में किसी पक्ष की ओर से न उपस्थित होगा, न पैरवी करेगा और न प्रतिनिधित्व करेगा। इस शर्त के अधीन रहते हुए किसी मुकदमे या नालिश का कोई पक्ष ग्राम-कचहरी के इजलास में स्वयं उपस्थित हो सकता है या अपनी जगह पर किसी ऐसे कर्मचारी, सम्बन्धी या मित्र के जरिए उपस्थित हो सकता है, जिसे उसने इस सम्बन्ध में यथाविधि अधिकार दे रखा हो और जिसे इजलास स्वीकार करें कि वह उसका प्रतिनिधित्व करने के योग्य है। जिला-जज, जिला-मजिस्ट्रेट और सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट सभी समय ग्राम-कचहरी या उसके इजलासों की कार्रवाइयों और मिसिलों का निरीक्षण कर सकते हैं।

ग्राम-पंचायत के पदाधिकारियों की अयोग्यताएँ

कोई भी व्यक्ति मुखिया, कार्यकारिणी समिति का सदस्य, सरपञ्च, पञ्च या ग्राम-सेवक निर्वाचित, मनोनीत, वा नियुक्त नहीं हो सकता यदि वह पञ्चायत-राज-विधान में उल्लिखित अयोग्यताओं में से किसी से युक्त हो। ये अयोग्यताएँ हैं—भारत का नागरिक नहीं रहना; सरकार या किसी स्थानीय अधिकारी का कर्मचारी होना; किसी समर्थ न्यायालय द्वारा विकृत-मस्तिष्क का करार दिया जाना; पचीस वर्ष से कम की आयु का होना; सरकार या किसी स्थानीय अधिकारी की नौकरी से दुराचरण के लिए बर्खास्त किया जाना; और किसी सरकारी नौकरी के लिए अयोग्य घोषित किया जाना; भारत के भीतर या बाहर किसी फौजदारी कचहरी द्वारा, राजनीतिक अपराध को छोड़कर और किसी अपराध के लिए छः मास से अधिक कारावास या देश-निर्वासन का दंड पाना या दंड-विधि-संग्रह, सन् १८९८ की धारा १०९ या ११० के अन्तर्गत 'अच्छी चाल-चलन के लिए मुचलका का माँगा जाना और इस तरह के दंड या आज्ञा का बाद में रद्द नहीं होना या माफ नहीं किया जाना या अपराधी को क्षमादान नहीं मिलना; किसी कानून के अनुसार जो उस समय लागू हो, किसी स्थानीय अधिकारी का सदस्य निर्वाचित होने के योग्य नहीं होना; किसी ग्राम-पञ्चायत के दान या प्रबन्ध में कोई वेतन पानेवाली नौकरी या नफा उठानेवाली जगह पर होना; ग्राम-पञ्चायत के साथ, द्वारा या उसकी ओर से ठीके में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई हिस्सा या स्वार्थ रखना; कोढ़ी होना; ऐसी अवधि के लिए, जो निर्धारित हो, ग्राम-पञ्चायत के कर, चुंगी, फीस, या महसूल के बकिऔते में होना; भ्रष्टाचार का दोषी पाया जाना; ग्राम-पञ्चायत की सीमा के भीतर निवास नहीं करना।

ऊपर दी हुई अयोग्यताओं में से नागरिकता, मस्तिष्क, आयु, किसी स्थानीय अधिकारी के सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता, कोढ़, बकिऔते, भ्रष्टाचार, और निवास-सम्बन्धी अयोग्यताओं को छोड़कर अन्य अयोग्यताएँ सरकार द्वारा हटाई जा सकती हैं। जो व्यक्ति भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया हो, उसकी अयोग्यता आगामी साधारण निर्वाचन के बाद खतम हो जायेगी।

कोई व्यक्ति किसी कम्पनी का हिस्सेदार या सदस्य होने के कारण ही उस कम्पनी और ग्राम-पञ्चायत के बीच के किसी ठीके में स्वार्थ-निहित नहीं समझा जायगा। यदि कोई व्यक्ति निर्वाचन या नियुक्ति के साल से पूर्वगामी साल में ग्राम-पञ्चायत-सीमा के भीतर कुल मिलाकर कम-से-कम १८० दिन तक रहा हो, तो वह 'निवासी' की योग्यता प्राप्त किया हुआ समझा जायेगा।

ग्राम-पंचायत के नियम

बिहार-पञ्चायत-राज-विधान के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए राज्य की सरकार द्वारा नियम बनाये जा सकते हैं। इन नियमों द्वारा ग्राम-पञ्चायतों के संगठन के लिए सभी आवश्यक विषयों के सम्बन्ध में व्यवस्था की जायेगी। अगर जिला-बोर्ड चाहे तो अपने अधिकारक्षेत्र में स्थित ग्राम-पञ्चायत के स्थानीय क्षेत्रों में रहनेवाले लोगों की स्वास्थ्य-रक्षा तथा सुविधा के साधनों की उन्नति के लिए उप-नियम बना सकता है। सरकारी आदेश होने पर जिला-बोर्ड के लिए इस तरह का उपनियम बनाना अनिवार्य होगा। जो उप-नियम इस प्रकार बनाये जायेंगे उन्हें बिहार-पञ्चायत-राज के उपबन्धों और उनके अन्तर्गत बने हुए नियमों के अनुकूल होना चाहिए। पञ्चायत-राज-विधान के उपबन्धों तथा उनके अन्तर्गत बनाये गये नियमों और उप-नियमों के अधीन रहते हुए जिला-बोर्ड की ग्राम-पञ्चायत-समिति भी कुछ विषयों के सम्बन्ध में उप-नियम बना सकती है। इन उप-नियमों को बनाते समय ग्राम-पञ्चायत की कार्यकारिणी समिति की सिपारिशों पर भी विचार किया जायगा। ग्राम-पञ्चायत-समिति द्वारा बनाये गये उपनियम जिला-बोर्ड के सामने उसकी पुष्टि के लिए रखे जायँगे तथा पुष्टि प्राप्त हो जाने पर लागू होंगे।

ग्राम-पंचायत के इजलास का प्रत्येक सदस्य मुखिया और ग्राम-सेवक 'जन-सेवक' समझे जायँगे। यदि कोई काम पंचायत-राज-विधान या उसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों तथा उप-नियमों के अनुसार कानूनी तरह से ईमानदारी और पूरी सावधानी एवं सतर्कता के साथ किया गया हो, तो उसके लिए ग्राम-कचहरी के इजलास तथा कार्यकारिणी समिति के किसी सदस्य, ग्राम-

सेवक या उसके किसी कर्मचारी या पदाधिकारी और इन सबोंके आदेश से कार्य करनेवाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध नालिश नहीं चलाया जा सकता।

सरकार सूचना देकर पंचायत-राज-विधान के अन्तर्गत सभी या कोई अधिकार किसी उपयुक्त अधिकारी को सौंप सकती है। लेकिन इस तरह के अधिकारों में नियम बनाने का अधिकार नहीं शामिल रहेगा।

ग्राम-पंचायतों का भविष्य

बिहार-पंचायत-राज-विधान की मुख्य धाराओं को ऊपर संक्षेप में दिया जा चुका है। इस विधान में बहुत-से प्रशंसनीय उपबन्ध हैं। इसमें स्थानीय स्वशासन और सरकारी नियंत्रण का समन्वय है। ग्राम-पंचायत को काफी शक्तियाँ दी गई हैं। लेकिन साथ-ही-साथ ऊपर से देखभाल की भी व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त ग्राम-सेवक के सम्बन्ध में जो व्यवस्था है, वह इस दृष्टि से बहुत अच्छी है। श्रमकर की व्यवस्था भी बहुत प्रशंसनीय है। हाँ, रुपया देकर इससे बचना संभव करके अच्छा नहीं किया गया है। इसका परिणाम यह होगा कि धनी व्यक्ति रुपया देकर इससे बराबर बचते रहेंगे और धनी गरीब का भेद इस क्षेत्र में भी रहेगा। इसलिए यह व्यवस्था रहनी चाहिए कि इससे सिर्फ वही लोग बच सकते हैं जो शारीरिक अस्वस्थता के कारण श्रम करने के योग्य नहीं हों; और तब इसके बदले में रुपया देना भी आवश्यक नहीं रहना चाहिए। इसी तरह यह व्यवस्था भी बहुत प्रशंसनीय है कि ग्राम-कचहरी में कोई वकील किसी व्यक्ति की तरफ से नहीं उपस्थित हो सकता है। इससे देहात के लोग कम-से-कम ग्राम-कचहरी के सामने आनेवाले मुकदमों में वकीलों के शोषण से बचेंगे और न्याय पाना रुपये के बल पर आश्रित नहीं रहेगा। लेकिन ग्राम-सेवक की तरह ग्राम-कचहरी में भी एक सरकार द्वारा नियुक्त पदाधिकारी के रखे जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। ऐसा पदाधिकारी कानून की योग्यता से युक्त हो, जिसमें वह सरपंच या पंच को कानूनी बातों में आवश्यक परामर्श दे सके। इस तरह कुछ और त्रुटियाँ भी दिखाई जा सकती हैं। लेकिन उससे यहाँ कोई लाभ नहीं होगा। इतना स्पष्ट है कि जो विधान बना हुआ है अगर उसे भी ठीक से

समूचे राज्य में लागू कर दिया जाय, तो गाँवों की वर्तमान अवस्था में आमूल-परिवर्तन लाया जा सकता है।

यहीं पर कठिनाइयाँ सामने आती हैं। बिहार-सरकार ने इस सम्बन्ध में जो यह नीति अपनाई है कि सभी गाँव में एक ही साथ पञ्चायत नहीं कायम कर इस काम में धीरे-धीरे प्रगति की जाय, वह ठीक है; यह ध्यान अवश्य रखना होगा कि यह प्रगति इतनी धीरे-धीरे नहीं की जाय, कि निकट-भविष्य में काम ही नहीं पूरा हो। लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अब तक जो प्रगति हुई है, वह सन्तोषजनक है। यहाँ संख्या की बात नहीं कही जा रही है; हालाँकि यह भी महत्त्वपूर्ण है, विशेष कर इसलिए कि बिहार के गाँवों की कुल संख्या इतनी अधिक है कि जिस हिसाब से प्रगति हो रही है, उससे तो पता नहीं, समूचे राज्य में पञ्चायतों का गठन कबतक पूरा हो। असल प्रश्न यह है कि जहाँ पञ्चायतें कायम की गई हैं, वहाँ उनकी अवस्था सन्तोष-जनक है या नहीं। इस प्रश्न का बिलकुल सही उत्तर तो तभी दिया जा सकता है जब बिहार के सभी पञ्चायतों का निरीक्षण किया जाय। लेकिन जो कुछ आम तौर पर सुनने में आता है और अखबारों में निकलता रहता है, उसके आधार पर वर्तमान अवस्था को सन्तोषजनक मान लेने में कठिनाई होती है। पञ्चायतों के चुनाव में झगड़ों की खबरें बराबर आती रहती हैं। वर्तमान अवस्था के कारणों का अन्दाज लगाना कठिन नहीं है। गाँवों में दलबन्दी जोरों पर है। एक-एक जाति की अपनी-अपनी जमायतें हैं। कहीं-कहीं पर बड़ी जाति और छोटी जाति के आधार पर भी दलबन्दी है। धनी-गरीब के भी अलग-अलग वर्ग हैं। धनी व्यक्तियों में भी आपस में एकता नहीं है। कहीं-कहीं से सरकारी अफसरों द्वारा पक्षपात और दलबन्दी में शामिल होने की भी खबरें मिली हैं। निश्चयपूर्वक यह कहना कठिन है कि ये खबरें कहाँ तक सच हैं। लेकिन अगर ये सच हैं, तो ये बहुत बड़े रोग की तरफ संकेत करती हैं। वैसे तो जबतक गाँवों से वर्ग और वर्ण की दीवारें बिलकुल तोड़कर मिटा नहीं दी जातीं, तबतक ग्राम-पञ्चायतों के पूरी तरह से विकसित होने लायक अनुकूल परिस्थिति नहीं पैदा की जा सकती। लेकिन अगर सरकारी अफसर भी पक्षपात करना शुरू कर दें, तब तो शायद

इसकी नींव भी नहीं पड़ सकेगी; कमजोर-से-कमजोर नींव भी नहीं।

लेकिन एकदम निराश होने लायक परिस्थिति नहीं है। कई जगहों पर ग्राम-पञ्चायतों की अवस्था काफी सन्तोषजनक है और उनके द्वारा नव-निर्माण के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। इस सम्बन्ध में बिहार-सरकार द्वारा कई योजनाएँ भी तैयार की गई हैं। "एक योजना यह है कि राष्ट्र-निर्माण की सभी कार्रवाइयाँ पञ्चायत में सम्मिलित कर ली जायँ। अबतक लाखों रुपये की क़ीमत के रचनात्मक कार्य हो चुके हैं। चालीस लाख रुपये वार्षिक खर्च पर एक त्रैवार्षिक योजना स्वीकृत हुई है।"[1] अगर ये सब योजनाएँ सफलतापूर्वक लागू हो सकीं, तो यह निस्सन्देह एक बहुत बड़ा काम होगा। निराश होने से कोई लाभ भी नहीं है। ग्राम-पञ्चायतों का संगठन एक अत्यावश्यक कार्य है; इसके बिना देश की उन्नति पूरी नहीं हो सकती। रास्ते में कठिनाइयाँ अवश्य हैं। लेकिन शायद ही निर्माण का कोई ऐसा कार्य है, जिसके रास्ते में कठिनाइयाँ नहीं हैं। इसलिए इन कठिनाइयों से हार मानने के बजाय उनको दूर करते हुए ग्राम-पञ्चायतों के संगठन के काम को आगे बढ़ाते जाना चाहिए। इन्हीं पञ्चायतों की नींव पर नये भारत की सुदृढ़ और भव्य इमारत खड़ी की जा सकती है।

१—प्रगति की ओर बिहार : १९४९-५०।

परिशिष्ट (क)

संघ और राज्यों में विधायिनी शक्तियों का वितरण

सूची १—संघ-सूची

१. भारत की तथा उसके प्रत्येक भाग की प्रतिरक्षा जिसके अन्तर्गत प्रतिरक्षा के लिए तैयारी तथा सारे ऐसे कार्य भी हैं, जो युद्ध-काल में युद्ध को चलाने और उसकी समाप्ति के पश्चात् सफलतापूर्वक सैन्य-नियोजन (Demobilisation) में सहायक हों।

२. नौ, स्थल और विमान-बल; संघ के कोई अन्य सशस्त्र बल।

३. कटक-क्षेत्रों का परिसीमन (Delimilation of cantonment areas), ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्त-शासन, ऐसे क्षेत्रों के भीतर कटक-प्राधिकारियों का गठन और शक्तियाँ, तथा ऐसे क्षेत्रों में गृह-वासन (Accomodation) का विनियमन (जिसके अन्तर्गत किराये का नियंत्रण भी है)।

४. नौ, स्थल और विमान-बल की कर्मशालायें।

५. शस्त्रास्त्र, अग्न्यस्त्र, युद्धोपकरण और विस्फोटक।

६. अणुशक्ति तथा उसके उत्पादन के लिए आवश्यक खनिज सम्पत्।

७. संसद-निर्मित विधि द्वारा प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए अथवा युद्ध चलाने के लिए आवश्यक घोषित किये गये उद्योग।

८. केन्द्रीय गुप्त वार्ता और जाँच-विभाग।

९. भारत की प्रतिरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा-सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध (Preventive detention) इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति।

१०. विदेशीय कार्य; सब विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है।

११. राजनयिक, वाणिज्य-दूतिक और व्यापारिक प्रतिनिधित्व।

१२. संयुक्त राष्ट्र-संघटन।

१३. अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संस्थाओं और अन्य निकायों (Bodies) में भाग लेना तथा उनमें किये गये निश्चयों को लागू करना।

१४. विदेशों से संधि और करार करना तथा विदेशों से की गई संधियों, करारों और अभिसमयों (Conventions) को लागू करना।

१५. युद्ध और शान्ति।

१६. विदेशीय क्षेत्राधिकार।

१७. नागरिकता, देशीयकरण (Naturalisation) और अन्यदेशीय (Aliens)।

१८. प्रत्यर्पण (Extradition)।

१९. भारत में प्रवेश और उसमें से उत्प्रवासन और निर्वासन (Emigration and Expulsion), पार-पत्र और दृष्टांक (Passports and visas)।

२०. भारत के बाहर के स्थानों की तीर्थयात्राएँ।

२१. महा-समुद्र या वायु में की गई बलदस्युता (Piracy) और अपराध, स्थल या महासमुद्र या वायु में राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध।

२२. रेल।

२३. राज-पथ जिन्हें संसद-निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय राज-पथ घोषित किया गया है।

२४. यंत्र-चालित जल-यानों (Mechanically propelled vessels) के विषय में ऐसे अन्तर्देशीय जल-पथों में नौ-वहन और नौ-परिवहन (Shipping and Navigation) जो संसद निर्मित विधि द्वारा राष्ट्रीय जल-पथ घोषित किये गये हैं; तथा ऐसे जल-पथों के पथ-नियम।

२५. समुद्र-नौ-वहन और नौ-परिवहन जिसके अन्तर्गत ज्वार-जल नौ-वहन और नौ-परिवहन भी हैं; वणिक्पोतीय (Mercantile marine) शिक्षा और प्रशिक्षण (Training) के लिए उपबन्ध तथा राज्यों और

अन्य अभिकरणों (Agencies) द्वारा दी जानेवाली ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन ।

२६. प्रकाशस्तम्भ (Lighthouses), जिनके अन्तर्गत प्रकाशपोत, आकाशदीप (Beacons) तथा नौवहन और विमानों की सुरक्षितता के लिए अन्य उपबन्ध भी हैं ।

२७. वे बन्दरगाह जिनको संसद-निर्मित विधि या वर्तमान विधि के द्वारा या अधीन महा-बन्दरगाह घोषित किया गया है, जिसके अन्तर्गत उनका परिसीमन, तथा उनमें बन्दरगाह-अधिकारियों का गठन और शक्तियाँ भी हैं ।

२८. बन्दरगाह-निरोध (Port quarantine), जिसके अन्तर्गत उससे सम्बद्ध चिकित्सालय भी हैं; नाविक और समुद्रीय चिकित्सालय ।

२९. वायु-पथ; विमान और विमान-परिवहन, विमानक्षेत्र के उपबन्ध; विमान-यातायात और विमान-क्षेत्रों का विनियमन और संघटन ; वैमानिक शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए उपबन्ध तथा राज्यों और अन्य अभिकरणों द्वारा दी गई ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन ।

३०. रेल-पथ, समुद्र या वायु से अथवा यंत्रचालित यानों में राष्ट्रीय जल-पथों से यात्रियों और वस्तुओं का वहन ।

३१. डाक और तार; टेलीफोन, वायरलेस, ब्रॉडकास्टिंग और इसी तरह के अन्य संचार ।

३२. संघ की सम्पत्ति और उससे आनेवाला राजस्व, किन्तु प्रथम अनुसूची के भाग (क) या (ख) में उल्लिखित किसी राज्य में स्थित सम्पत्ति के विषय में, जहाँ तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे वहाँ तक, उस राज्य के विधान के अधीन रहते हुए ।

३३. संघ के प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण (Requisitioning) ।

३४. देशी राज्यों के शासकों की सम्पत्ति के लिए प्रतिपालक-अभिकरण (Courts of wards) ।

३५. संघ का लोक-ऋण ।

३६. करेन्सी, सिक्का और विधिमान्य (Legal tender); विदेशीय विनिमय ।

३७. विदेशीय ऋण ।

३८. रिजर्व बैंक आफ इण्डिया (भारत का रक्षित बैंक) ।

३९. डाकघर बचत (Savings) बैंक ।

४०. भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा संघटित लाटरी ।

४१. विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य; शुल्क-सीमान्तों (Customs frontiers) को पार करनेवाले आयात और निर्यात; शुल्क-सीमान्तों की परिभाषा ।

४२. अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य ।

४३. व्यापारिक निगमों (Trading Corporations) का, जिनके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी हैं, किन्तु सहकारी संस्थाएँ नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन (Incorporation, reguletion and winding up) ।

४४. विश्वविद्यालयों को छोड़कर ऐसे निगमों का, चाहे वे व्यापारिक हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन ।

४५. महाजनी (Banking) ।

४६. विनिमय-पत्र (Bills of exchange), चेक, वचन-पत्र (Promissory notes) तथा ऐसी अन्य लिखतें (Instruments) ।

४७. बीमा ।

४८. श्रेष्ठिचत्वर (Stock exchanges) और वादा बाजार (Futures markets) ।

४९. एकस्व (Patents), आविष्कार और रूपांकन (Designs); कॉपीराइट (Copyright-प्रतिलिप्यधिकार); व्यापार-चिह्न और पण्य चिह्न (Merchandise marks) ।

५०. नाप और तौल का मानस्थापन (Establishment of Standards) ।

५१. भारत के बाहर निर्यात की जानेवाली अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जानेवाली वस्तुओं के गुणों का मानस्थापन।

५२. वे उद्योग जिनके लिए संसद् ने विधि द्वारा घोषणा की है कि लोक-हित के लिए उनपर संघ का नियंत्रण इष्टकर है।

५३. तैल-क्षेत्रों और खनिज तैल-सम्पत् का विनियमन और विकास; पेट्रोलियम और पेट्रोलियम-उत्पाद (Petroleum products); संसद से विधि द्वारा भयानक रूप से ज्वालाग्रही (Inflammable) घोषित अन्य तरल और द्रव्य (Liquids and substances)।

५४. उस सीमा तक खानों का विनियमन और खनिजों का विकास जहाँ तक संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद् विधि द्वारा लोक-हित के लिए इष्टकर घोषित करे।

५५. श्रम का विनियमन तथा खानों और तैल-क्षेत्रों में सुरक्षितता।

५६. उस सीमा तक अन्तर्राज्यिक नदियों और नदी-दूनों (River valleys) का विनियमन और विकास जहाँ तक संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद् विधि द्वारा लोक-हित के लिए इष्टकर घोषित करे।

५७. जलप्रांगण (Territorial waters) से परे मछली पकड़ना और मीन-क्षेत्र (Fisheries)।

५८. संघ-अभिकरणों द्वारा नमक का निर्माण, सम्भरण (Supply), और वितरण; अन्य अभिकरणों द्वारा नमक के निर्माण, सम्भरण और वितरण का विनियमन और नियंत्रण।

५९. अफीम की खेती, निर्माण तथा निर्यात के लिए विक्रय।

६०. प्रदर्शन के लिए चल-चित्रों की मंजूरी।

६१. संघ के नौकरों से सम्बन्धित औद्योगिक झगड़े।

६२. इस संविधान के प्रारम्भ पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्धसंग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक, भारतीय युद्ध-स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएँ तथा भारत-सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्त-पोषित (Financed) तथा संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित ऐसी कोई अन्य संस्था।

६३. इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय, अलीगढ़-मुस्लिम-विश्वविद्यालय और दिल्ली-विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएँ तथा संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित कोई अन्य संस्था।

६४. भारत-सरकार से पूर्णतः या अंशतः वित्त-पोषित तथा संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित वैज्ञानिक या शिल्पिक शिक्षा-संस्थाएँ।

६५. संघ-अभिकरण और संस्थाएँ जो—

(क) वृत्तिक, व्यावसायिक या शिल्पि-प्रशिक्षण (Professional, vocational or technical training) जिनके अन्तर्गत पुलिस पदाधिकारियों का प्रशिक्षण भी है, के लिए हैं, अथवा

(ख) विशेष अध्ययनों या गवेषण की उन्नति के लिए हैं, अथवा

(ग) अपराध के अनुसंधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या शिल्पिक सहायता के लिए हैं।

६६. उच्चतर शिक्षा या गवेषणा की संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और शिल्पिक संस्थाओं में एकसूत्रता लाना (co-ordination) और मानों का निर्धारण।

६७. संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व के घोषित प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और अभिलेख तथा पुरातत्त्वीय स्थान और अवशेष।

६८. सर्वे आफ इंडिया, जिओलोजिकल, बोटैनिकल, जुओलोजिकल और एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वेज़ आफ इण्डिया, अन्तरिक्ष-शास्त्रीय (Meteorological) संस्थाएँ।

६९. जनगणना।

७०. संघ-लोक-सेवाएँ, अखिलभारतीय सेवाएँ, संघ-लोक-सेवा—आयोग।

७१. संघ—पेंशन, अर्थात् भारत-सरकार द्वारा या भारत की संचित निधि में से दिये जानेवाले पेंशन।

७२. संसद् और राज्यों के विधान—मंडलों के लिए तथा राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचन, निर्वाचन-आयोग।

७३. संसद् के सदस्यों, राज्य-परिषद् के सभापति और उप-सभापति तथा लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते।

७४. संसद् के प्रत्येक सदन की तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ; संसद् की समितियों अथवा संसद् द्वारा नियुक्त आयोगों के सामने गवाही देने या दस्तावेज पेश करने के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति बाध्य करना।

७५. राष्ट्रपति और राज्यपालों की उपलब्धियाँ, भत्ते, विशेषाधिकार तथा अनुपस्थिति–छुट्टी के बारे में अधिकार; संघ के मन्त्रियों के वेतन और भत्ते; नियंत्रक–महालेखा-परीक्षक के वेतन, भत्ते और अनुपस्थिति–छुट्टी के बारे में अधिकार तथा अन्य सेवा–शर्तें।

७६. संघ के और राज्यों के लेखाओं की लेखा-परीक्षा।

७७. उच्चतम न्यायालय का गठन, संघटन, क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ (जिसके अन्तर्गत उस न्यायालय का अवमान भी है) तथा उसमें ली जानेवाली फीसें; उच्चतम न्यायालय के सामने विधि-व्यवसाय करने का हक रखने-वाले व्यक्ति।

७८. उच्चन्यायालयों के पदाधिकारियों और नौकरों के बारे में उपबन्धों को छोड़कर उन न्यायालयों का गठन और संघटन; उच्चन्यायालयों के सामने विधि-व्यवसाय का हक रखनेवाले व्यक्ति।

७९. किसी राज्य में मुख्य स्थान रखनेवाले किसी उच्चन्यायालय के क्षेत्राधिकार का उस राज्य से बाहर किसी क्षेत्र में विस्तार तथा ऐसे किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का ऐसे किसी क्षेत्र से अपवर्जन (Exclusion)।

८०. किसी राज्य के पुलिस-फोर्स के सदस्यों की शक्तियों और क्षेत्राधिकार का उस राज्य में न होनेवाले किसी क्षेत्र पर विस्तार, किन्तु इस प्रकार नहीं कि एक राज्य की पुलिस, उस राज्य में न होनेवाले किसी क्षेत्र में बिना उस राज्य की सरकार की सम्मति के जिसमें कि ऐसा क्षेत्र स्थित है, शक्तियों और क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सके, किसी राज्य के पुलिस-फ़ोर्स के सदस्यों की शक्तियों और क्षेत्राधिकार का उस राज्य से बाहर रेल-क्षेत्रों पर विस्तार।

८१. अन्तर्राज्यीय प्रवर्जन (Migration) अन्तर्राज्यीय निरोधा।

८२. कृषि-आय को छोड़कर अन्य आय पर कर।

८३. सीमा-शुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात-शुल्क भी हैं।

८४. भारत में निर्मित या उत्पादित तम्बाकू तथा—

(क) मान-उपभोग के लिए मद्यसारिक पानों (Alcoholic liquors);

(ख) अफीम, भाँग और अन्य पिनक लानेवाली औषधियों तथा स्वापकों (Narcotic drugs and narcotics) को छोड़कर, किन्तु ऐसी औषधीय और प्रसाधनीय सामग्री को अन्तर्गत करके जिनमें मद्यसार अथवा (ख) में का कोई पदार्थ अन्तर्विष्ट हो, अन्य सब वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क।

८५. निगम-कर (Carproetion tax)।

८६. व्यक्तियों या कम्पनियों की आस्ति (Assets) में से कृषि-भूमि को छोड़कर, उसके मूलधन-मूल्य Capital value) पर कर, कम्पनियों के मूल-धन पर कर।

८७. कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के बारे में सम्पत्ति-शुल्क (Estate duty)।

८८. कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क।

८९. रेल या समुद्र या वायु से ले जाये जानेवाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा-कर (Terminal taxes), रेल के जन-भाड़े और वस्तु-भाड़े पर कर।

९०. मुद्रांक-शुल्क (Stamp duties) को छोड़कर भेष्टिचत्वर और वादा-बाजार के सौदों पर कर।

९१. विनिमय-पत्रों, चेकों, वचन-पत्रों, वहन-पत्रों (Bills of lading) प्रत्यय-पत्रों (Letters of credit), बीमा-पत्रों (Policies of insurance), अंशों (Shares) के हस्तान्तरण, ऋण-पत्रों, प्रति-पत्रियों और प्राप्तियों (Debentures, proxies and receipts) के सम्बन्ध में लगनेवाले मुद्रांक शुल्क की दर।

९२. समाचार-पत्रों के क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों पर कर।

९३. इस सूची के विषयों में से किसी से सम्बद्ध विधियों के विरुद्ध अपराध।

९४. इस सूची के विषयों में से किसी के प्रयोजनों के लिए जाँच, परिमाप (Surveys) और सांख्यकी (statistics)।

९५. उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों के इस सूची में के विषयों में से किसी के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ; नावाधिकरण-क्षेत्राधिकार (Admiralty jurisdiction)।

९६. किसी न्यायालय में ली जानेवाली फीसों को छोड़कर इस सूची में के विषयों से किसी के बारे में फीस।

९७. सूची (२) या (३) में से किसी में अवर्णित किसी कर के सहित उन सूचियों में अप्रगणित कोई अन्य विषय।

सूची २—राज्य सूची

१. सार्वजनिक व्यवस्था (किन्तु असैनिक (civil) शक्ति की सहायता के लिए संघ के नौ, स्थल या विमान-बलों या किन्हीं अन्य बलों के प्रयोग को अन्तर्गत न करते हुए)।

२. पुलिस, जिसके अन्तर्गत रेलवे और ग्राम-पुलिस भी है।

३. न्याय-प्रशासन; उच्चतम न्यायालय और उच्चन्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का गठन और संघटन; उच्च न्यायालय के पदाधिकारी और सेवक; किराया और राजस्व न्यायालयों की प्रक्रिया; उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों में ली जानेवाली फीसें।

४. जेल, सुधारालय (Reformatories), बोरस्टल (Borstal) संस्थाएँ तथा इस तरह की अन्य संस्थाएँ और उनमें रखे गये व्यक्ति; जेलों और अन्य संस्थाओं के उपयोग के लिए अन्य राज्यों से प्रबन्ध।

५. स्थानीय शासन, अर्थात् म्युनिसिपल कौरपोरेशन, इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट, जिला-बोर्ड, खनिज-वसिति-प्राधिकारियों (mining settlement auhorities) तथा स्थानीय स्वशासन या ग्राम-प्रशासन के प्रयोजन के लिए अन्य स्थानीय प्राधिकारियों का गठन और शक्तियाँ।

६. सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता; चिकित्सालय और औषधालय।

७. भारत के बाहर के स्थानों की तीर्थ-यात्राओं को छोड़कर अन्य तीर्थ-यात्राएँ।

८. मादक पानों अर्थात् मादक पानों का उत्पादन, निर्माण, कब्जा, परिवहन (Transport), क्रय और विक्रय।

९. अंगहीनों और नौकरी के लिए अयोग्य व्यक्तियों की सहायता।

१०. शवगाड़ना और कब्रस्थान ; शवदाह और श्मशान।

११. सूची १ की प्रविष्टियों ६३,६४,६५ और ६६ तथा सूची ३ की प्रविष्टि २५ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए शिक्षा, जिसके अन्तर्गत विश्व-विद्यालय भी हैं।

१२. राज्य से नियंत्रित या वित्त-पोषित पुस्तकालय, संग्रहालय या इस तरह की अन्य संस्थाएँ ; संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व के घोषित से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और अभिलेख।

१३. यातायात अर्थात् सड़कें, पुल, नौका घाट तथा यातायात के अन्य साधन जो सूची १ में उल्लिखित नहीं हैं ; ट्राम-पथ ; रज्जु-पथ (Ropeways), अन्तर्देशीय जल-पथ और वैसे जल-पथों के विषय में सूची १ और सूची ३ में के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उनपर यातायात; यंत्र-चालित यानों को छोड़कर अन्य यान।

१४. कृषि, जिसके अन्तर्गत कृषि-शिक्षा और गवेषणा, मरकों (Pests) से रक्षा तथा उद्भिद् रोगों का निवारण भी है।

१५. पशु के नस्ल का परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति तथा पशुओं के रोगों का निवारण ; वेटनरी ट्रेनिंग और प्रैक्टिस्।

१६. पश्वरोध (Pounds) और पशुओं के अनाचार (Cattle trespass) का निवारण।

१७. जल, अर्थात् सूची १ की प्रविष्टि ५६ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए जल-सम्भरण, सिंचाई, और नहरें, जल का निकास और बाँध, जल-संग्रह और जल-शक्ति।

१८. भूमि, अर्थात् भूमि में या पर अधिकार, भूधृति (Land tenures) जिसके अन्तर्गत जमीन्दार और किसान का सम्बंध भी है, तथा किराये

का वसूलना; कृषि-भूमि का हस्तान्तरण और अन्य संक्रामण (Alienation) ; भूमि-सुधार और कृषि-सम्बन्धी सुधार; उपनिवेषण (Colonisation) ।

१९. वन ।

२०. वन्य प्राणियों और पक्षियों की रक्षा ।

२१. मीन-क्षेत्र ।

२२. सूची १ की प्रविष्टि ३४ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए प्रतिपालक अधिकरण (Courts of wards) ; भारग्रस्त और कुर्क सम्पदाएँ ।

२३. संघ के नियंत्रण के अधीन विनियमन और विकास के सम्बन्ध में सूची १ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए खानों का विनियमन तथा खनिजों का विकास ।

२४. सूची १ की प्रविष्टि ६४ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उद्योग ।

२५. गैस, गैस-कर्मशालाएँ ।

२६. सूची ३ की प्रविष्टि ३३ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के अन्दर व्यापार और वाणिज्य ।

२७. सूची ३ की प्रविष्टि ३३ में के उपबन्धों के अधीन रहते. हुए वस्तुओं का उत्पादन, सम्भरण और वितरण ।

२८. बाजार और मेले ।

२९. मान-स्थापन को छोड़कर नाप और तौल ।

३०. महाजनी और महाजन ; कृषि-ऋण का उद्धार ।

३१. पान्थशाला और पान्थशाला-पाल (Inns and inn-keepers) ।

३२. सूची १ में उल्लिखित निगमों से भिन्न निगमों का और विश्व-विद्यालयों का निगमन, विनियमन और समापन; व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक और अन्य अनिगमित (Union corporated) परिषदें और संस्थाएँ ।

३३. नाट्यशाला, नाटक-अभिनय, प्रथम अनुसूची की प्रविष्टि ६० के उपबन्धों के अधीन रहते हुए चल-चित्र, क्रीड़ा-प्रमोद और विनोद ।

३४. बाजी लगाना और जूआ ।

३५. राज्य में निहित।

३६. सूची ३ की प्रविष्टि ४२ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संघ के प्रयोजनों के अतिरिक्त संपत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।

३७. संसद्-निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के विधान-मंडल के लिए निर्वाचन।

३८. राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के, विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के तथा, यदि विधान-परिषद् है तो, उसके सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते।

३९. विधान-सभा और उसके सदस्यों और समितियों की तथा यदि विधान-परिषद् हो तो, उस परिषद् और उसके सदस्यों और समितियों की शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ, राज्य के विधान-मंडल की समितियों के सामने साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति बाध्य करना।

४०. राज्य के मंत्रियों के वेतन और भत्ते।

४१. राज्य-लोक-सेवाएँ, राज्य-लोक-सेवा-आयोग।

४२. राज्य-निवृत्ति-वेतन अर्थात् राज्य द्वारा अथवा राज्य की संचित निधि में से देय निवृत्ति-वेतन।

४३. राज्य का लोक-ऋण।

४४. निखात-निधि।

४५. भूराजस्व जिसके अंतर्गत राजस्व का निर्धारण और संग्रहण, भू-अभिलेखों का बनाये रखना, राजस्व प्रयोजनों के लिए और स्वत्व-अभिलेखों के लिए परिमाप और राजस्व का अन्य संक्रामण भी है।

४६. कृषि-आय पर कर।

४७. कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क।

४८. कृषि-भूमि के विषय में संपत्ति-शुल्क।

४९. भूमि और भवनों पर कर।

५० संसद् से, विधि द्वारा, खनिज-विकास के संबंध में लगाई गई परिसीमाओं के अधीन रहते हुए खनिज-अधिकार पर कर।

५१. राज्य में निर्मित या उत्पादित निम्नलिखित वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क तथा भारत में अन्यत्र निर्मित या उत्पादित तत्सम वस्तुओं पर उसी या कम दर से प्रतिशुल्क।

(क) मानव-उपयोग के लिए मद्यसारिक पान।

(ख) अफीम, भांग और अन्य पिनक लानेवाली औषधियाँ और स्वापक किन्तु ऐसी औषधीय और प्रसाधनीय सामग्रियों को छोड़कर जिनमें मद्यसार अथवा उपर्युक्त वस्तुओं में से कोई पदार्थ शामिल हो।

५२. किसी स्थानीय क्षेत्र में उपयोग, प्रयोग या विक्रय के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर।

५३. विद्युत् के उपभोग या विक्रय पर कर।

५४. समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर।

५५. समाचार-पत्रों में प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर।

५६. सड़कों या अन्तर्देशीय जल-पथों पर ले जानेवाली वस्तुओं और यात्रियों पर कर।

५७. सड़कों पर, उपयोग के योग्य यानों पर चाहे वे यंत्रचालित हों या न हों तथा जिनमें सूची ३ की प्रविष्टि ३५ के उपबन्धों के अधीन ट्राम-गाड़ियाँ भी अंतर्गत हैं, कर।

५८. पशुओं और नौकाओं पर कर।

५९. पथ-कर।

६०. वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर।

६१. प्रतिव्यक्ति-कर।

६२. विलास-वस्तुओं पर कर, जिनके अन्तर्गत आमोद-विनोद, पण लगाने और जूआ खेलने पर भी कर है।

६३. मुद्रांक-शुल्क की दरों के संबंध में सूची (१) के उपबन्धों में उल्लिखित दस्तावेजों को छोड़कर अन्य दस्तावेजों के बारे में मुद्रांक-शुल्क की दर।

६४. इस सूची के विषयों में से किसी से सम्बद्ध विधियों के विरुद्ध अपराध।

६५. इस सूची के विषयों में से किसी बारे में उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ।

६६. किसी न्यायालय में लिये जानेवाले शुल्कों को छोड़कर इस सूची के विषयों से किसी के बारे में शुल्क।

सूची ३—समवर्ती सूची

१. दंड-विधि जिसके अन्तर्गत वे सब विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर भारत-दंड-संहिता के अन्तर्गत हैं, किन्तु सूची १ या सूची २ में उल्लिखित विषयों में से किसी से सम्बद्ध विषयों के विरुद्ध अपराधों को छोड़कर तथा असैनिक शक्ति की सहायतार्थ नौ, स्थल और विमान-बलों के प्रयोग को छोड़कर।

२. दंड-प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत वे सब विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर दंड-प्रक्रिया-संहिता के अन्तर्गत हैं।

३. राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से अथवा समुदाय के लिए अत्यावश्यक संभरणों और सेवाओं को बनाये रखने से संसक्त कारणों के लिए निवारक निरोध; ऐसे निरुद्ध व्यक्ति।

४. कैदियों, अभियुक्तों तथा इस सूची की प्रविष्टि ३ में उल्लिखित कारणों से निवारक-निरोध में किये गये व्यक्तियों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना।

५. विवाह और विवाह-विच्छेद; शिशु और वयस्क; दत्तक-ग्रहण; इच्छापत्र; इच्छापत्रहीनत्व और उत्तराधिकार, अविभक्त कुटुम्ब और विभाजन, वे सब विषय जिनके संबंध में न्यायिक कार्यवाहियों में पक्ष इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले अपनी स्वीय विधि (Personal law) के अधीन थे।

६. कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों का हस्तान्तरण; विलेखों और दस्तावेजों (Registration and deeds) की रजिस्ट्री।

७. संविदा जिनके अन्तर्गत भागिता, अभिकरण, परिवहन संविदा (Partnership, agency, Contracts or Carriage) और अन्य विशेष प्रकार की संविदाएँ नहीं हैं।

८. अभियोज्य दोष (Actionable wrongs)
९. दिवाला और शोधाक्षमता (Bankruptcy and insolvency)
१०. न्यास और न्यासी (Trust and Trustees)
११. महाप्रशासक और राज्यन्यासी ।
१२. साक्ष्य और शपथें; विधि, सार्वजनिक कार्यों और अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों का अभिज्ञान ।
१३. व्यवहार—प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत वे सब विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर व्यवहार—प्रक्रिया-संहिता के अन्तर्गत हैं, परिसीमाएँ और मध्यस्थ-निर्णय ।
१४. न्यायालय-अवमान, किन्तु जिसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय का अवमान नहीं है ।
१५. आहिण्डन (Vagrancy), अस्थिरवासी और प्रव्राजी आदिम जातियाँ ।
१६. उन्माद और मनोवैकल्य जिसके अन्तर्गत उन्मत्तों और मनोविकलों के रखने या उपचार के स्थान भी हैं ।
१७. पशुओं के प्रति निर्दयता का निवारण ।
१८. खाद्यपदार्थों और अन्य वस्तुओं में अपमिश्रण ।
१९. अफीम-विषयक सूची १ की प्रविष्टि ५९ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए औषधि और विष ।
२०. आर्थिक और सामाजिक योजना ।
२१. वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिपत्य, गुट्ट और न्यास ।
२२. व्यापारसंघ, औद्योगिक और श्रमिक विवाद ।
२३. सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, नौकरी और बेकारी ।
२४. श्रमिकों का कल्याण जिसके अन्तर्गत कार्य की शर्तें, भविष्य निधि, नियोजक-उत्तरवादिता, कर्मकार-प्रतिकार, असमर्थता और वार्धक्य-निवृत्ति-वेतन और प्रसूति-सुविधाएँ भी हैं ।
२५. श्रमिकों का व्यावसायिक और शिल्पी-प्रशिक्षण ।
२६. विधि-वृत्तियाँ, वैद्यक-वृत्तियाँ और अन्य वृत्तियाँ ।

२७. भारत और पाकिस्तान की डोमीनियनों के स्थापित होने के कारण अपने मूल निवासस्थान से स्थानान्तरित हुए व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास।

२८. पूर्त और पूर्त-संस्थाएँ, पूर्त और धार्मिक, धर्मस्व और धार्मिक संस्थाएँ।

२९. मानवों, पशुओं और उद्भिदों पर प्रभाव डालनेवाले संक्रामिक और सांसर्गिक रोगों और मारकों के एक राज्य से दूसरे में फैलने का निवारण।

३०. जीवन संबंधी सांख्यकी, जिसके अन्तर्गत जन्म और मृत्यु की रजिस्ट्री।

३१. संसद्-निर्मित विधि या वर्तमान विधि के द्वारा या अधीन महापत्तन-घोषित पत्तनों से भिन्न पत्तन (पत्तन = बन्दरगाह)।

३२. राष्ट्रीय जल-पथों के विषय में सूची १ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए अन्तर्देशीय जल-पथों पर यंत्र-चालित यानों, विषयक नौ-वहन और नौ-परिवहन तथा ऐसे जल-पथों पर पथ-नियम, तथा अन्तर्देशीय जल-पथों पर यात्रियों और वस्तुओं का परिवहन।

३३. जहाँ संसद से विधि द्वारा किन्हीं उद्योगों का संघ द्वारा नियंत्रण लोक-हित में इष्टकर घोषित किया गया है उन उद्योगों में व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, संभरण और वितरण।

३४. मूल्य-नियंत्रण।

३५. यंत्र-चालित यान जिसके अन्तर्गत वे सिद्धांत भी हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर लगाया जाता है।

३६. कारखाने।

३७. वाष्पयंत्र।

३८. विद्युत्।

३९. समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय (प्रेस)।

४०. संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व के घोषित से भिन्न पुरातत्त्व-संबंधी स्थान और अवशेष।

४१. विधि द्वारा निष्क्राग्य घोषित संपत्ति की कृषि-भूमि-सहित अभिरक्षा, प्रबंध और व्ययन।

४२. संघ के या राज्य के या किसी अन्य सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अर्जित या अधिगृहीत सम्पत्ति के लिए प्रतिकर-निर्धारण करने के सिद्धांत तथा वैसे प्रतिकर के दिये जाने का रूप और रीति।

४३. किसी राज्य में, उस राज्य से बाहर पैदा हुए कर-विषयक दावों तथा अन्य सार्वजनिक अभियाचनाओं की, जिसके अन्तर्गत भूराजस्व, बकाया और इस प्रकार वसूल किया जानेवाला बकाया भी है, वसूली।

४४. न्यायिक मुद्रांकों-द्वारा संगृहीत शुल्कों या फीसों को छोड़कर अन्य मुद्रांक-शुल्क, किन्तु इसके अन्तर्गत मुद्रांक-शुल्क की दरें नहीं हैं।

४५. सूची २ या सूची ३ में उल्लिखित विषयों में से किसी के प्रयोजनों के लिए जाँच और सांख्यकी।

४६. उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ।

४७. इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में फीसें किन्तु इनके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जानेवाली फीसें नहीं हैं।

परिशिष्ट (ख)

संविधान की नवीं अनुसूची में रखे गये अधिनियम

(1) The Behar Land Reforms Act 1950.

(2) The Bombay Tenancy and Agricultural Lands Act, 1948.

(3) The Bombay Maleki Tenure Abolition Act, 1949.

(4) The Bombay Taluqdari Tenure Abolition Act, 1949.

(5) The Panch Mahals Mahwassi Tenure Abolition Act, 1949 (Bombay).

(6) The Bombay khoti Abolition Act, 1950.

(7) The Bombay Paragana and Kulkarni Watan Abolition Act, 1950.

(8) The Madhya Pradesh Abolition of Proprietary Rights Act, 1950.

(9) The Madras Estates Act, 1948.

(10) The Madras Estates Amendment Act, 1950.

(11) The Uttar Pradesh Zamindari Abolition and Land Reforms Act, 1950.

(12) The Hyderabad (Abolition of Jagirs) Regulation.

(13) The Hyderabad Jagirs (Commutation) Regulation.

परिशिष्ट (ग)

पारिभाषिक-शब्दावली-कोष

अक्षम—Incompetent

अक्षमता—Incompetency

अग्रिम धन—Advance

अतिक्रमण—Violation

अतिरिक्त न्यायाधीश—Judge, extra

अतिरिक्त लाभ—Excess profit

अधिकरण—Tribunal

अधिकार—Right

अधिकार पृच्छा—Quo warrants

अधिनियम (n)—Act

अधिवक्ता—Advocate

अधिसूचना—Notification

अधीक्षण—Superintendence

अधीन—Subject

अधीन अधिकारी—Subordinate Officer

अधीन न्यायालय—Subordinate Court

अध्यक्ष—Speaker

अध्यादेश—Ordinance

अनन्य क्षेत्राधिकार—Exclusive Jurisdiction

अनुदान—Grant

अनुन्मुक्त—Undischarged

अनुपाती प्रतिनिधित्व—Proportional representation

अनुपूरक—Supplementary

अनुमति—Assent

अनुमोदन (n)—Approval

अनुसूचित क्षेत्र—Scheduled area

अनुसूचित जनजाति—Scheduled Tribe

अनुसूचित जाति—Scheduled Caste

अनुसूची—Involve

अन्तर्ग्रस्त—Involved

अपमान लेख—Libel

अपमान वचन—Slander

अपर-न्यायाधीश—Additional-judge

अपवर्जन—Exclusion

अभिकरण—Agency

अभिलेख—Record

अभिलेख न्यायालय—Court of record

अमान्य—Invalid

अर्थ दंड—Fine

अल्पसंख्यकवर्ग—Minority

असैनिक—Civil

आ

आकस्मिकता निधि—Contingency Fund

आज्ञप्ति—Decree

आदेश—Order

आपात—Emergency

आय-कर—Income tax

आयुक्त—Commissioner

उ

उच्चतम न्यायालय—Supreme Court

उच्च न्यायालय—High Court

उत्तराधिकार—Succession

उत्तराधिकार शुल्क—Succession duty

उत्पादन शुल्क—Excise duty

उद्घोषणा—Proclamation

उन्मुक्ति—Immunity

उपबन्ध—Provision

उपलब्धि—Emolument

उपाध्यक्ष—Deputy Commissioner

ऋ

ऋण ग्रस्तता—Indebtedness

ए

एकक—Unit

एकल संक्रमणीय मत—Single transfeable vote

क

कदाचार—Misbehaviour

करार—Agreement

कर्मचारी वृन्द—Staff

कार्यकारी—Acting

कार्यपालिका—Executive

कालदान—Adjourn

कृत्य—Function (कार्य)

क्ष

क्षेत्राधिकार—Juridiction

ग

गणनानुदान—Account

गणपूर्ति—Quorum

च

चित्त विकृति—Unsoundness of mind

ज

जनजाति—Tribe

जनजाति क्षेत्र—Tribal area

जनजाति परिषद—Tribal Council

त

तत्समय—For the time being

तत्स्थानीय—Corresponding

द

दंड न्यायालय—Criminal Court

दंड विधि—Criminal law

दंडादेश—Sentence

दायित्व—Liability

द्विग्रही—Bi-cameral (दो सदनों का)

ध

धन विधेयक—Money-Bill

न

नागरिकता—Citizenship
नाम निर्देशन—Nomination (नामजद करना)
निगम—Corporation
निदेश—Direction
नियंत्रक महालेखापरीक्षक—Controller and Auditor-General
नियंत्रण—Control
नियम—Rule
निरसन—Repeal (रद्द करना)
निर्णय—Judgment
निर्यात—Export
निर्वचन—Interpretation
निर्वाचक गण—Electoral College
निर्वाचक नामावली—Electoral rolls
निर्वाचन-अधिकार—Election Tribunal
निर्वाचन-आयुक्त—Election Commissioner
निर्वाचन-क्षेत्र—Constituency
निलम्बन (n)—Suspension
निवारक-निरोध—Preventive detention
निवृत्ति—Retrement
निवृत्ति-वेतन—Pension
न्यायपालिका—Judiciary
न्यायाधिकरण—Tribunal
न्यायाधिपति—Justice
न्यायाधीश—Judge
न्यायालय अवमान—Contempt of Court
न्यायालय-कार्यरीति—Judicial Proceeding
न्यायिक-कार्यवाही—Judicial Proceeding
न्यास—Trust

प

पद--Post

पदच्युत करना—Dismiss

पद त्याग—Resignation

पदाधिकारी—Officer

पदावधि—Tenure

पदावास—Official residence

पदेन—Ex-officio

परमादेश—Mandamus

परामर्श—Consultation

परिषद—Council

परिसीमन—Delimitation

परोक्ष-निर्वाचन—Indirect election

पंजीबन्धन—Registration

पात्र—Eligible

पारित—Passed

पीठासीन होना—Preside

पुनरीक्षण—Revision

पुनर्विचार न्यायालय--Court of Appeal

पुनर्विलोकन--Review

पुरःस्थापन--Introduce

पूर्व मंजूरी—Previous sanction

पूर्व सम्मति—Previous Consent

पेशगी—Advance

पोषण—Maintenance

प्रक्रिया—Procedure

प्रख्यापन—Promulgate

प्रतिकर -Compensation (मुआवजा)

प्रतिकूल प्रभाव—Prejudice

प्रतिरक्षा—Defence

प्रतिवेदन—Report

प्रतिषेध—Prohibition

प्रत्यक्ष निर्वाचन—Direct election

प्रत्यानुदान—Votes of Credit

प्रथम पठन—First reading

प्रपत्र—Form

प्रभुता—Sovereignty

प्रविष्टि—Entry

प्रशासन—Administration

प्रस्ताव—Motion

प्रस्तावना—Preamble

प्रस्थापना—Proposal

प्राक्कलन—Estimate

प्रादेशिक आयुक्त—Regional Commissioner

प्रादेशिक क्षेत्राधिकार—Territorial jurisdiction

प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र—Territorial Constituency

प्रादेशिक परिषद—Regional council

प्राधिकार—Authority (ab.)

प्राधिकारी—Authority (con)

प्राधिकृत—Authorised

प्राप्ति—Receipt

फ

फारम—Form

फीस—Fees

फेडरल न्यायालय—Federal court

ब

बँटवारा—Allocation

बनाये रखना—Maintain (V)
बंदी प्रत्यक्षीकरण—Habeas corpus
बहुमत—Majority
बिल—Bill
बैठक—Sitting

भ

भार—Charge
भारित करना—Charge

म

मताधिकार—Suffrage
मंत्रणापरिषद्—Advisory Council
मंत्रि परिषद्—Council of ministers
महाधिवक्ता—Advocate-General
महान्याय वादी—Attorney-General
महालेखा परीक्षक—Auditor-General
महाभियोग—Impeachment
मंजूरी—Sanction
मुख्य-न्यायाधिपति—Chief justice
मुख्य-न्यायाधीश—Chief judge
मुख्य मंत्री—Chief minister

र

रक्षण—Reservation
रक्षा कवच—Safeguard
राजनय—Diplomacy
राज्य—State
राज्य परिषद्—Council of State
राज्यपाल—Governor
राज्य-सूची—State-list

राष्ट्रपति—President

राष्ट्रपति प्रसाद पर्यन्त—During the pleasure of the President

रिक्तता—Vasancy

रुकावट—Bar

लम्बित—Pending

लेख—Writ

लेखा—Account

लेखा-परीक्षा—Audit

लेखानुदान—Votes on accounts

लोक अधिसूचना—Public notification

लोक-सभा—House of the People

लोक-सेवाएँ—Public Services

लोक-सेवायोग—Public Service Commission

व

वयस्क मताधिकार—Adult Suffrage

वाक्-स्वातन्त्र—Freedom of Speech

वार्षिक-वित्त-विवरण—Annual financial Statement

विकृत-चित्त—Unsound mind

विघटन—Dissolution

विचारार्थ प्रस्ताव—Motion for Consideration

वित्त—Finance

वित्त-विधेयक—Finance Bill

वित्तायोग—Finance Commission

वित्तीय—Financial

वित्तीय विवरण—Financial Statement

विदेशीय कार्य—Foreign Affairs

विधान—Legislation

विधान परिषद--Legislative Council

विधान मंडल—Legislature

विधान सभा—Legislative Assembly

विधायिनी शक्ति—Legislative Power

विधि—Law

विधि प्रश्न—Question of law

विधियों का समान संरक्षण—Equal protection of law

विधि संबंधी—Legal

विधेयक—Bill

विनियम—Regulation

विनियमन—Regulate

विनियोग—Appropriation

विनियोग-विधेयक—Appropriation bill

विमति—Dissent

विरुद्ध—Repugnant

विरोध—Repugnance

विवाद—Dispute

विशेषाधिकार—Privilege

वृत्ति—Profession

वैदेशिक कार्य—External Affairs

व्यपगत होना—Lapse

व्यवहार न्यायालय—Civil Court

व्यवहार प्रक्रिया—Civil Procedure Code

व्यवहार लाना—Sue

व्यवहार-वाद—Civil Suit

श

शक्ति—Power

शर्त—Condition

स

सत्र—Session (अधिवेशन)

सत्रावसान—Prorogue

सदन—House

सभापति—Chairman

समवाय—Company

समागम—Intercourse

समिति—Committee

सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गण राज्य—Sovereign Democratic Republic

सरकार—Government

सशस्त्र बल—Armed forces

सहमति—Concurrence

सहायक अनुदान—Grants-in-aid

संकल्प—Resolution (प्रस्ताव)

संघ—Union

संघटन—Organisation

संघ सूचि—Union list

संचार—Communication

संविदा—Contract

संविधान—Constitution

संविधान-सभा—Constituent Assembly

संशोधन—Amendment

संसद—Parliament

संस्था—Institution

साधारण निर्वाचन—General Election

सार्वजनिक व्यवस्था—Public order

सिपारिश—Recommendation

सुधार-प्रन्यास—Improvement Trust

सूचना —Notice

सेना-न्यायालय—Court martial

सेवा—Service

सेवा-शर्त—Condition of Service

स्थगन—Adjournment

स्थगित करना—Adjourn

स्थानीय शासन—Local Government

स्थानीय स्वशासन—Local Self-Government

स्थायी समिति—Standing Committee

स्वायत्तता—Autonomy

ह

हक्क होना—Entitled

हटाना—Removal

सहायक पुस्तकों और पत्रिकाओं की संक्षिप्त सूची

(क) भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(1) Majumdar, Raychaudhary and Dutta-Advanced History of India.

(2) Sarkar & Dutta—Text Book of Modern Indian History Vol II. Parts I & II.

(3) A. B. Keith—A Constitutional History of India.

(4) Palande—Indian Administration.

(5) G. N. Singh—Landmarks in Indian Constitutional and National Development. Vol I.

(6) Jawahar Lal Nehru—Discovery of India.

(7) K. K. Dutta—India's March to Freedom.
(8) Montagu—Chelmsford Report.
(9) Simon Commission Report Vol I.
(10) Government of India Act, 1935.
(11) A. C. Banerjee—Indian Constitutional Documents Vols I & II.
(12) A. C. Banerjee—Making of the Indian Constitution Vol I.

(ख) संविधान सम्बन्धी सिद्धान्त

(13) Laski—A Grammar of politics.
(14) Mac Iver—The Modern State.

(ग) तुलनात्मक संविधान

(15) Finer—The Theory and Practice of Mode. Government.
(16) Strong—Modern Political Constitutions.
(17) Ogg—European Governments and Politics.
(18) Munro—Government of the U. S. A.

(घ) भारतीय संविधान

(19) Constitution of the Indian Republic. (Govt. of India Publication.)
(20) भारत का संविधान Do.

(ङ) भारतीय संविधान की समीक्षा

(21) Constituent Assembly Debates.
(22) Draft Constitution of Indian Republic—(Socialist Party).
(23) जयप्रकाश नारायण—प्रजातंत्र और समाजवाद.
(24) मुकुट बिहारीलाल—भारतीय संविधान की समीक्षा.

(25) Modern Review—(Issues of 1950 & '51).

(26) Statesman—Republic Day Supplement (26th January, 1950).

(27) Amrit Bazar Patrika—Do.

(च) संविधान में संशोधन

(28) Statesman—(Issues of May, 1951).

(छ) स्थानीय स्वशासन और ग्राम-पंचायत

(29) The Behar and Orissa Local Self-Government Act, 1885.

(30) The Behar and Orissa Municipal Act. 1922.

(31) Gyanchand—Local Finance in India.

(32) बिहार पंचायत राजविधान, १९४७.

(33) प्रगति की ओर : बिहार १९४९-५०.

(ज) पारिभाषिक-शब्दावली-कोष

(34) भारत की संविधान-सभा के अध्यक्ष द्वारा निमंत्रित अखिल-भारत-भाषा-विशेषज्ञ-सम्मेलन द्वारा स्वीकृत—भारत के संविधान का पारिभाषिक-शब्दावली-कोष.

[भारत का संविधान—भारत सरकार द्वारा प्रकाशित]

AN OPINION

Sri Bimla Prasad presents in this volume a critical and interesting study of the Constitution of New India. He has carefully incorporated points of comparison on some salient features from the constitutions of some other important countries. To enable the students to be properly initiated into the study of the framework and mechanism of the constitution as we have it to day, the author has given a background of the past in a well written historical introduction dealing briefly with the successive stages in India's constitutional development and national movement. The volume contains a chapter each on the Integretion of Indian States, Local Self-Government and Village Panchayats. The new amendments to the constitution have also been included and dealt with at some length in a separate chapter. I congratulate Prof. Bimla Prasad on writing this book which would prove to be of much use to students of Indian History and Constitution.

K. K. Dutta.
M. A., Ph. D., P. R. S.
Professor and Head of the Department of History.
Patna College, Patna.

श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड

पटना ४